HAL open science

भगाणा की निर्भयाएं: दलित उत्पीड़न के अनवरत सिलसिले का दृष्टांत

Dusadh Hl, Pramod Ranjan, Yadav Jitendra

▶ To cite this version:

Dusadh Hl, Pramod Ranjan, Yadav Jitendra (Dir.). भगाणा की निर्भयाएं: दलित उत्पीड़न के अनवरत सिलसिले का दृष्टांत. 2014, 9788187618461. ⟨10.17613/8ajd-kf67⟩. ⟨hal-03939024⟩

HAL Id: hal-03939024

https://hal.science/hal-03939024

Submitted on 14 Jan 2023

HAL is a multi-disciplinary open access archive for the deposit and dissemination of scientific research documents, whether they are published or not. The documents may come from teaching and research institutions in France or abroad, or from public or private research centers.

L'archive ouverte pluridisciplinaire **HAL**, est destinée au dépôt et à la diffusion de documents scientifiques de niveau recherche, publiés ou non, émanant des établissements d'enseignement et de recherche français ou étrangers, des laboratoires publics ou privés.

Distributed under a Creative Commons Attribution - NonCommercial 4.0 International License

आज के भारत की ज्वलंत समस्यायें-16

भगाणा की निर्भयाएं

दलित उत्पीड़न के अनवरत सिलसिले का दृष्टांत

संपादक

एच.एल. दुसाध • प्रमोद रंजन • जितेन्द्र यादव

Hkxk.kk dh fuHkZ;k,i

(दलित उत्पीड़न के अनवरत सिलसिले का दृष्टांत)

सम्पादक

एच एल दुसाध-प्रमोद रंजन-जितेन्द्र यादव

प्रथम संस्करण : 2014

ISBN : 978-81-87618-46-1

बहुजन डाइवर्सिटी मिशन के लिए
द्वारा
प्रकाशक : **दुसाध प्रकाशन**
प्लाट नं. 23/बी, मकान नं. 2/1467
डाइवर्सिटी हाउस, वार्ड-शंकरपुरवा
आदिल नगर, कल्याणपुर, लखनऊ-226022
E-mail : hl.dusadh@gmail.com
मो. : 9313186503, 9696252469

प्रशासनिक कार्यालय
एफ-196, आया नगर एक्स, फेज-6, नई दिल्ली-110047,
मो. : 9313186503

© **लेखक**

मूल्य : 200.00 रुपये

रचना	:	**भगाणा बलात्कार काण्ड**
संपादक	:	एच एल दुसाध—प्रमोद रंजन—जितेन्द्र यादव
आवरण	:	शशिकान्त
शब्दांकन	:	कम्प्यूटेक सिस्टम, शाहदरा, दिल्ली-32
मुद्रक	:	क्विक ऑफसेट, दिल्ली-94

समर्पण

हरियाणा में दलित उत्पीड़न के खिलाफ संघर्ष के
अनन्य सहयोगी भाई ***वेदपाल तंवर*** *को*

अनुक्रम

अध्याय-1
दलित उत्पीड़न का अनंत सिलसिला

दलित बनाम दबंग!	*—राजेश कश्यप*	29
यह गाँव मेरा भी है		33
एक और मिर्चपुर	*—कल्पना शर्मा*	58
हरियाणा न्याय की मुहिम में छात्र-शिक्षक भी शामिल हैं	*—स्वतंत्र मिश्र*	64
भगाणा काण्ड, मीडिया, मध्यवर्ग, सत्ता की राजनीति और न्याय-संघर्ष की चुनौतियाँ	*—कविता कृष्णापल्लवी*	67
हरियाणा में निराशा के विरुद्ध जलती आशा की एक किरण	*—विद्या भूषण रावत*	70
साथी, भगाणा की दलित बच्चियां जंतर-मंतर पर अब भी आपकी राह देख रही हैं!	*—प्रमोद रंजन*	75

अध्याय-2
दिल्ली की निर्भया

सिर्फ बातों की सरकार	*—नीलू रंजन*	79
दिल्ली की निर्भया और बुद्धिजीवी	*—सी. उदय भाष्कर*	87
कुछ जिम्मेदारी हमारी भी	*—नदीम*	90
परत दर परत	*—राजकिशोर*	92
इस जनाक्रोश को अंजाम का इंतजार	*—किरण बेदी*	94
स्त्री का चरित्र किसी घटना से न आंका जाए	*—उदित राज*	97
अधिकारों के लिए लड़नी होगी चौतरफा जंग	*—अनिल शुक्ल*	100
इस आंदोलन से कितनी उम्मीद	*—योगेंद्र यादव*	103
मीडिया के सरोकार पर उठते सवाल	*—राममोहन पाठक*	106
बजट तक पहुंची 'निर्भया' की गूंज	*—अंजलि सिन्हा*	109
क्योंकि हिंदी पट्टी आज भी मध्ययुग में वास करती है	*—एच. एल. दुसाध*	112

भारतीय राज्य पर कब्जा जमाने का भयावह मंसूबा	*—एच. एल. दुसाध*	118
एक ऐतिहासिक प्रायश्चित की जरूरत	*—एच. एल. दुसाध*	121

अध्याय-3
भगाणा की निर्भयायें

उग्र हिन्दूवाद के द्वारा किये जा रहे दमन का निवारण	*—बुद्धशरण हंस*	127
एक ही रास्ता	*—श्रवण कुमार*	135
दलितों को शक्ति के स्रोतों में लेनी होगी हिस्सेदारी	*—देश दीपक दुसाध*	137
दलित अत्याचार का माकूल जबाब : आर्थिक सशिक्तकरण	*—डॉ. विजय कुमार त्रिशरण*	139
आखिर क्यों चुप हो, भगाणा की लड़कियां भी इसी देश की बेटियां हैं, ना!	*—हरिशंकर शाही*	148
जंतर-मंतर पर भगाणा की बलात्कार पीड़िताएं	*—सरोज कुमार*	151
भगाणा रेप : कुछ सवाल	*—वीर भारत तलवार*	158
दलित सशक्तिकरण एवं अत्याचार प्रतिकार हेतु सकारात्मक पहल की आवश्यकता	*—ई. बृजपाल भारती*	160
खामोश! दलित महिलाओं पर अत्याचार जारी है	*—सुरेश पंडित*	171
बस्स, बहुत हो चुका, अब और नहीं	*—सुदेश तनवर*	175
भगाणा की उपेक्षित निर्भयाएँ	*—डॉ. कमलेश कुमारी*	178
हरियाणा का दलित आंदोलन और वेदपाल तंवर	*—प्रमोद रंजन*	182
गांव की पूरी संरचना बदलनी होगी	*—अरुण कुमार त्रिपाठी*	186
जातिय शोषण के उन्मूलन में विविधता की भूमिका	*—शीलबोधि*	190
भगाणा बलात्कार कांड : मीडिया के विवेक के समक्ष चुनौती	*—एच एल दुसाध*	195
दलित उत्पीड़न का कैसे हो प्रतिकार!	*—एच एल दुसाध*	198
दिल्ली बनाम भगाणा गैंग रेप कांड	*—एच एल दुसाध*	202
मानवेतरों को तब्दील करना होगा सबसे शक्तिशाली कौम में	*—एच एल दुसाध*	205
हिन्दू पराक्रम का कैसे हो प्रतिकार	*—एच एल दुसाध*	210

सम्पादकीय

प्रबुद्ध पाठको!

बहुजन डाइवर्सिटी द्वारा 2007 से शुरू की गयी आज के भारत की ज्वलंत समस्याएं श्रृंखला की यह नवीनतम व 16 वीं किताब आपके हाथों में हैं। इस श्रृंखला की शुरुआत के पीछे संगठन सगठन की यह सोच रही है कि समय-समय पर उद्‌भव होने वाली कुछ खास समस्याओं, जिनसे राष्ट्र का जीवन बुरी तरह प्रभावित होता है एवं जिन्हें मीडिया के अल्पकालिक प्रभाव के चलते लोग एक अंतराल के बाद विस्मृत कर समस्यायों के अम्बार में घिरे देश की दूसरी समस्यायों में खो जाते हैं,को यदि पुस्तक के रूप गंभीरता से परोसा जाय तो राष्ट्र उनकी अनदेखी नहीं कर पायेगा। समस्या पर बहस तेज होगी और प्रबुद्ध विचारक, साहित्यकार, सामाजिक कार्यकर्ता तथा देश के नीति-निर्माता उनका समाधान ढूँढने की दिशा में अग्रसर होंगे। इस क्रम में संगठन की ओर से दुसाध प्रकाशन द्वारा भूमंडलीकरण के दौर में विकास के असमान बंटवारे, आरक्षण पर संघर्ष, महिला अशक्तिकरण, मुस्लिम समुदाय की बदहाली, हिंदी पट्टी की बदहाली, जाति जनगणना, नक्सलवाद, ब्राह्मणवाद इत्यादि जैसी अन्य कई गंभीर समस्यायों पर मेरे संपादन में 15 महत्वपूर्ण पुस्तकें आयीं। इस कड़ी की आखरी किताब जाति उन्मूलन जैसी उस समस्या पर थी,जिस पर पता नहीं आज तक कितने पन्ने रंगे जा चुके हैं। 250 पृष्ठों की उस किताब में आंबेडकर और मार्क्सवादीय नजरिये से जाति उन्मूलन की परियोजना प्रस्तुत की गयी थी। गत नवम्बर में उस पुस्तक के प्रकाशित होने के बाद हमने बिल्कुल ही नहीं सोचा था कि जाति-जनित एक ऐसी समस्या पर हमें इतनी जल्दी एक और किताब निकालनी पड़ेगी जिसके कारण 21वीं सदी में भी दुनिया की नजरों में भारत की छवि एक असभ्य व बर्बर राष्ट्र के रूप में अटूट है। लेकिन भगाणा दुष्कर्म कांड के बाद 'दलित उत्पीड़न के अनवरत सिलसिले'पर संगठन को एक और किताब लाने के लिए बाध्य होना पड़ा।

भगाणा दुष्कर्म का संपर्क दलित उत्पीड़न से है

जी हाँ, भगाणा सामूहिक दुष्कर्म कांड का संपर्क प्रधानतः बलात्कार से नहीं,दलित उत्पीड़न से है, यही तथ्य इस पुस्तक में प्रकाशित तमाम रिपोर्टों और लेखों में उभर

कर सामने आया है। 2012 की सर्दियों में जब दिल्ली निर्भया दुष्कर्म कांड को लेकर उतप्त थी उन दिनों उस पर जब,' क्योंकि हिंदी पट्टी आज भी मध्य युग में वास करती'है नामक लेख लिखा तो गाँव देहात के अबला महिलाओं के बलात्कार के पीछे मैंने दलित उत्पीड़न को ही चिन्हित किया था। मैंने उसमें लिखा था—'शहरों से दूर दराज के इलाकों में बलात्कार और यौन शोषण की जो भूरि-भूरि घटनाएँ रोजमर्रा की चीज बन गयीं हैं, उसके पीछे एक भिन्न मानसिकता क्रियाशील रहती है। वहां दिल्ली जैसी घटनाओं को अंजाम देने वाले लोग सिर्फ यौन-कुंठा के शिकार नहीं हैं। वे ऐसी घटनाओं को अंजाम देकर एक उभरते हुए समाज का मनोबल तोड़ने और अपने टूटते प्रभुत्व को नए सिरे से स्थापित करना चाहते हैं। भगाणा कांड के पीछे कारणों की तफ्तीश करते हुए न सिर्फ मुझे 2012 वाली बातों को ही दोहराना पड़ा है बल्कि इस पुस्तक में प्रकाशित सभी रिपोर्टो और लेखों में भी कमोबेश वही बात दोहराई गयी हैं। 'जंतर-मंतर पर भगाणा की बलात्कार पीड़ितायें' शीर्षक से सरोज कुमार ने घटना स्थल का भ्रमण करने के बाद अपना निष्कर्ष देते हुए लिखा है, 'यह कहानी महज बलात्कार तक सीमित नहीं रहती। यह हरियाणा में दलितों के लगतार जारी उत्पीड़न की कहानी बन जाती है।' उनकी उसी रिपोर्ट में बलात्कार के खिलाफ संघर्ष चला रही डाबड़ा की बलात्कार पीड़ित लड़की ने बताया है-'जाट दलितों के प्रतिरोध को कुचलने, उन्हें सबक सिखाने और अपमानित करने के लिए बलात्कार को हथियार की तरह इस्तेमाल कर रहे हैं। वे चाहते हैं कि दलित चुपचाप उनकी बात मानते रहें,'

'दलित बनाम दबंग' नामक अपनी रिपोर्ट में राजेश कश्यप ने लिखा है-'ये पीड़ितायें उन दलित परिवारों से हैं ,जिनका गाँव के दबंग लोगों ने 2011से जमीन के विवाद को चलते सामाजिक बहिष्कार कर रखा है और न्यायालय, मानवाधिकार आयोग एवं अनुसूचित जाति आयोग के निर्देशों के बावजूद इस बहिष्कार को समाप्त नहीं किया गया है। पीड़ित परिवार ने बहिष्कार के बावजूद गाँव नहीं छोड़ा तो गुस्से से भन्नाये दबंगों ने दलित परिवारों को सबक सिखाने के लिए उनकी चार बेटियों के साथ गैंग रेप के कुकृत्य को अंजाम दे डाला।' उस रिपोर्ट में उन्होंने इन घटनाओं पर दलित दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए लिखा है-'दलितों का मानना है कि दबंग जातियां अपनी पुरानी जमीन को खिसकते हुए नहीं देखना चाहतीं। उनको लगता है ये जातियां हमारी गुलामी करती थीं। आज इनका जीवन क्यों बदल रहा है? यही कुढन इनको दलितों पर अत्याचार करने के लिए प्रोत्साहित करती हैं।' प्रोफेसर वीरभारत तलवार ने भी इस घटना के कारणों की तफ्तीश करते हुए अपने लेख 'भगाणा रेप : कुछ सवाल' में लिखा है-'दलित परिवारों ने गाँव में डटे रहने का संकल्प किया तो उनको सबक सिखाने के लिए दबंगों ने इन परिवारों की चार नाबालिग लड़कियों का अपहरण किया और दो दिनों तक उनके साथ सामूहिक बलात्कार किया।' अरुण कुमार त्रिपाठी

की राय भी प्रो.तलवार व अन्य रिपोर्टरों से भिन्न नहीं है। बहरहाल जब इस पुस्तक में छपे तमाम रिपोर्टर,लेखक,एक्टिविस्ट ही इस घटना के पृष्ठ में घुमा-फिराकर लगभग एक सा ही कारण बता रहे हैं तब मान लेना होगा कि भगाणा दुष्कर्म काण्ड दिल्ली गैंग रेप की तरह रेप की आम घटना न हो कर दलित उत्पीड़न की घटना है, जिसका लक्ष्य एक उभरते समाज के मनोबल को ध्वस्त करना तथा अपने टूटते वर्चस्व को अटूट रखना है।

देश का हर इलाका छोटा-बड़ा भगाणा

लेकिन हरियाणा में जन्मे चर्चित नेता पी.एल.पूनिया द्वारा हरियाणा को 'बलात्कार प्रदेश' और केन्द्रीय मंत्री कुमारी शैलजा द्वारा 'हरियाणा में दलित होना पाप है' कहे जाने के बावजूद ऐसा नहीं कि दूसरे प्रदेश ऐसी घटनाओं से अछूते हैं। नहीं! कमोबेश देश का चप्पा-चप्पा ही छोटा-बड़ा भगाणा है, जहाँ दलित उत्पीड़न का अनवरत सिलसला जारी है। फर्क हो सकता है, तो सिर्फ मात्रा का। भारतमय ही दलित उत्पीड़न का अनवरत सिलसिला देखते हुए कह सकता हूँ कि सीधे तौर पर यह पुस्तक भगाणा की निर्भयायों को संबोधित होने के बावजूद यह देश भर में फैले असंख्य भगाणाओं की निर्भायायों को संबोधित है। हमने इसमें देश में सदियों से अनवरत जारी दलित उत्पीड़न के कारणों की समझने और उसका समाधान देने का प्रयास किया है।

भगाणा कांड के बाद कुछ सवाल

बहरहाल दिल्ली के निर्भया कांड से भी कई गुना गंभीर भगाणा काण्ड की जिस तरह अन्ना-केजरी के भ्रष्टाचार और दिल्ली गैंग रेप विरोधी आन्दोलन के पीछे लामबंद मीडिया, न्यायपालिका सिविल सोसाइटी ,युवा मध्यम वर्ग पूरी तरह अनदेखी कर रहे हैं, इसे लेकर तमाम संवेदनशील लोग आहत व अचंभित हैं। ऐसे लोग दिल्ली के निर्भया समर्थकों की बेरुखी देखकर तरह-तरह के सवाल उठा रहे है। ऐसे लोगो की भावनाओं का सठिक प्रतिबिम्बन इस पुस्तक में प्रो. वीरभारत तलवार के लेख 'भगाणा रेप : कुछ सवाल' में हुआ है। उन्होंने लिखा है—'इसी दिल्ली में निर्भया काण्ड के समय उत्पीड़न और अन्याय के खिलाफ गुस्से से उमड़ी हजारों-हजार की भीड़ इस दलित परिवार के साथ कहीं नहीं दिखाई देती। क्या यह शर्मनाक नहीं है? क्या यह घटना हमें अपनी सारी व्यवस्था पर फिर से सोचने के लिए मजबूर नहीं कर देती? इन दलित परिवारों का मुट्ठी भर लोगों के सहयोग से लड़ाई को लड़ना और बाकी समाज का निष्क्रिय रहना किस मानसिकता को सूचित करता है? निर्भया काण्ड के बाद स्त्रियों के खिलाफ हिंसा और बलात्कार सम्बन्धी इतने कड़े कानून के बन जाने के बावजूद हरियाणा में दलित स्त्रियों से बलात्कार की इतनी घटनाएँ और अपराधियों के बेखौफ घूमना कैसे संभव हुआ? जनतंत्र, प्रशासन, पुलिस,

न्यायालय और इतने सारे बड़े कानूनों के होने के बावजूद, इन सबका दलितों को कोई लाभ नहीं मिल रहा है और उनपर अत्याचार जारी हैं ऐसा क्यों है? क्यों हमारे राजनीतिक दल इस घटना पर निष्क्रिय बने रहे? सुप्रीम कोर्ट में यह मामला दर्ज तो है लेकिन सुप्रीम कोर्ट की ओर से भी इस घटना पर अभी तक कोई तत्परता नहीं दिखाई गई है। ऐसा क्यों है? क्यों चारो ओर चुप्पी और निष्क्रियता है?क्यों इन उत्पीड़ित परिवारों के लिए एक शक्तिशाली आन्दोलन खड़ा नहीं किया गया?क्यों इन्हें लड़ने के लिए असहाय छोड़ दिया गया?अखबारों टीवी चौनलों और पत्रकारों की इस नितांत संवेदनहीनता की क्या वजह हो सकती है?इन सवालों का कोई जवाब नहीं मिलता सिवाय इसके की हमारे समाज और जनतंत्र की सभी महत्वपूर्ण संस्थाओं और शक्तियों की संवेदनशीलता उनके वर्गीय और जातिगत स्वार्थों की संकीर्ण सीमाओं से बाहर आने में असमर्थ है। यह बड़ी निराशापूर्ण स्थिति है जो एक हताशापूर्ण स्थिति को जन्म दे रही है। इस बेचैनी का परिणाम क्या निकलेगा?

हिन्दुओं के शस्त्रागार का मुख्य हथियार : आर्थिक शक्ति

भगाणा काण्ड को लेकर प्रोफेसर तलवार ने ढेरों सवाल उठाये हैं और उसका निर्भूल जवाब भी उन्होंने खुद ही ढूंढ लिया है। वह जवाब यह है कि भारतीय लोकतंत्र की सभी महत्वपूर्ण संस्थाएं अपने वार्गीय और जातिगत स्वार्थ के संकीर्ण दायरे से निकलने में व्यर्थ हैं। यही बात 1936 में डॉ. आंबेडकर ने 'जाति के विनाश' में इन शब्दों में व्यक्त की थी कि हिन्दुओं में समग्र वर्ग की चेतना नहीं है, उनकी जो भी चेतना है वह स्व-जाति और स्व-वर्ण के स्वार्थ की परिधि के मध्य घूर्णित होती रहती है। इस स्व-जाति व स्व-वर्णीय चेतना के कारण भगाणा की निर्भयायों के प्रति असंवेदनशील है। दूसरे शब्दों में कहा जाय तो भगाणा में चार बच्चियों के साथ दुष्कर्म व परवर्ती चरणों में उन बच्चियों व उनके परिवारजनों के प्रति हिन्दू समाज की असंवेदनशीलता आंख में अंगुली करके यह सत्योद्घाटन करती है कि हजारों साल से दलितों पर जुल्म ढाने वाला यह समाज आधुनिक मानवताबोध से लैस होने के बावजूद 21 वीं सदी में भी इतना नहीं बदला है कि वह दलितों के साथ समता पूर्ण व्यवहार कर सके। दलितों के प्रति उनकी सोच में बदलाव लाने में न तो कोई कानून पूरी तरह सफल हो सकता और न ही कोई अन्य उपाय। उसका कारण यह है की यह समाज हिन्दू धर्म-शास्त्रों के प्रति आस्थाशील रहने के कारण खुद को बदलने में पूरी तरह असमर्थ है। वह एक मानसिक व्याधि के हाथों मजबूर होकर दलितों पर जुल्म करने के लिए बाध्य है। इसका खुलासा करते हुए डॉ. अम्बेडकर ने कहा है—'हिन्दू जाति भेद इसलिए नहीं मानते कि वे क्रूर हैं या उनके मस्तिष्क में कोई विकार है। वे जाति-भेद इसलिए मानते हैं कि उनका धर्म उन्हें ऐसा करने के लिए विवश करता है अतः कसूर उन धर्म शास्त्रों का है जिन्होंने उनकी ऐसी

मनोवृत कर दी है।' ऐसे बाबा साहेब ने दलितों को उनके अत्याचार से बचने के लिए हिन्दू धर्म-शास्त्रों को डायनामाईट से उड़ाने की धमकी दिया था। किन्तु बाबा साहेब भी जानते थे डायनामाइट से उड़ाकर हिन्दू धर्म शास्त्रों का वजूद खत्म करना असंभव है, इसलिए उन्होंने दलितों को सामर्थ्यवान बनाने पर जोर दिया था। ऐसे में जबकि हिन्दू धर्म-शास्त्रों को ध्वस्त कर हिन्दुओं को दलितों के प्रति समानता के व्यवहार के लिए बाध्य करना असंभव है इसलिए ले देकर एक ही उपाय बंचता है कि राष्ट्र दलितों को सशक्त व सामर्थ्यवान बनाने के एक सूत्रीय कार्यक्रम पर विचार करे। इसकी जरुरत का अहसास कराते हुए उन्होंने 'राज्य और अल्पसंख्यक' में कहा है-'हिन्दुओं द्वारा अछूतों को दबाने-कुचलने में बहुधा सफल होने के कई कारण हैं। पुलिस और न्यायालय हिन्दुओं के पक्षधर हैं। हिन्दुओं और अछूतों के बीच लड़ाई झगडा होने पर अछूतों को पुलिस से संरक्षण और मजिस्ट्रेट से न्याय कभी नहीं मिलेगा। पुलिस और मजिस्ट्रेट लोगों को स्वाभाविक रूप से अपने कर्तव्य के बजाय अपना वर्ग और बिरादरी अधिक प्रिय है। लेकिन हिन्दुओं के शस्त्रागार में मुख्य हथियार है आर्थिक शक्ति।'

दलित उत्पीड़न : आर्थिक और सामाजिक गैर-बराबरी का उत्पाद

यह सही है कि धर्म-शास्त्रों द्वारा निर्मित सोच हिन्दुओं को दलितों पर अत्याचार के लिए उकसाती है किन्तु उनके दलितों पर हमलावर होने के लिए उनकी आर्थिक शक्ति ही इंधन जुटाती रही है। भगाणा में ही दलितों के उत्पीड़ित होने का मुख्य कारण यह है कि वे आर्थिक रूप से पूरी तरह जाटों पर निर्भर हैं। उनके पास न भूमि है या न आय का अन्य कोई स्रोत। यदि वहां के दलित भी आर्थिक रूप से सक्षम होते, हरियाणा कतई बलात्कार प्रदेश नहीं बन पाता। दलितों पर भारतमय सदियों से जो उत्पीड़न-दमन का अनवरत सिलसिला जारी है उसमें वही दलित इस का शिकार होता है जो आर्थिक रूप से विपन्न रहा। डॉ. त्रिशरण के शब्दों में आर्थिक गैर-बराबरी दलितों को सामंती जालिमों द्वारा होने वाले जुल्म सहन करने को विवश करती है। उनके अनुसार इसी दलित समाज में जन्मे बाबू जगजीवन राम, मायावती, राम विलास पासवान, छेदी पासवान इत्यादि का चरण छूने के लिए ब्राह्मण तक इसलिए लाइन में खड़े रहते हैं क्योंकि ये आर्थिक रूप से पर्याप्त सक्षम रहे हैं। अतः थोड़े से शब्दों में कहा जाय तो दलित उत्पीड़न की समस्याएं आर्थिक और सामाजिक गैर-बराबरी का उत्पाद हैं। इस आर्थिक और सामाजिक गैर बराबरी के कारण ही प्राचीन रोम में प्लेबियन, यूरोप के मध्य युग में सेर्फो; अमेरिका की दास-प्रथा में नीग्रो एवं सर्वत्र ही महिलाओं और अल्पसंख्यकों को शोषण-उत्पीड़न का शिकार बनना पड़ा। दुनिया में सर्वत्र ही महिलाओं को शारीरिक शोषण इत्यादि का शिकार बनना पड़ा तो उसके मूल में ही यह आर्थिक और सामाजिक गैर-बराबरी है जिसके कारण

बलात्कार, शोषण-उत्पीड़न, भूख-कुपोषण, आतंकवाद, विच्छिन्नतावाद इत्यादि तरह-तरह की समस्यायों की सृष्टि होती रही है। आर्थिक और सामाजिक विषमता के खात्मे के साथ ही दुनिया में धर्म, लिंग, नस्ल इत्यादि के आधार पर वंचित किये गए मानव समूहों को शोषण-उत्पीड़न से राहत मिली। दलितों की दुर्दशा के मूल में दुनिया के अन्य शोषित-उत्पीड़ित मानव समूहों की भांति आर्थिक और सामाजिक विषमता को प्रधान कारण मानते हुए ही डॉ. आंबेडकर ने राष्ट्र को संविधान सौपने के एक दिन पूर्व अर्थात 25 नवम्बर, 1949 को चेतावनी देते हुए कहा था कि हमें निकटतम भविष्य के मध्य आर्थिक और सामाजिक विषमता का खात्म कर लेना होगा नहीं तो विषमता से पीड़ित जनता लोकतंत्र के ढांचे को विस्फोटित कर सकती है। क्या यह सन्देश देने के पीछे डॉ. आंबेडकर जैसे दलित हितैषी का मुख्य लक्ष्य दलित समाज को शोषण-उत्पीड़न से उबारना नहीं था?क्या यह सन्देश उन्होंने खासकर दलित-मुक्ति को ध्यान में रखकर नहीं दिया था?

तो वर्तमान में हरियाणा के हिसार के भगाणा और अतीत में साबर बांडा के नवलपुर, परभणी के पिंट्री देशमुख, बिहार के पिपरा, बेल्छी, राजस्थान के कुम्हेर इत्यादि में मानवता को शर्मसार करने वाले जो कांड हुए उसके पीछे प्रधान कारण आर्थिक और सामाजिक विषमता रही। सिर्फ आर्थिक विषमता नहीं जैसा कि मार्क्सवादी कहते हैं। अतः आर्थिक और सामाजिक विषमता के उत्पत्ति के कारणों का सठिक पहचान एवं तदनुरूप निराकरण का सठिक उपाय करके ही दलितों को सदियों से जारी शोषण-उत्पीड़न से निजात दिलाया जा सकता था,जो नहीं हुआ।

आर्थिक और सामाजिक विषमता कारणःशक्ति के स्रोतों में सामाजिक और लैंगिक विविधता का असमान प्रतिबिम्बन

बहरहाल पूरी दुनिया में आर्थिक और सामाजिक विषमता की उत्पत्ति समाज में शक्ति के स्रोतों का विभन्न सामाजिक समूहों और उनकी महिलाओं के मध्य असमान बंटवारे से होती रही है। ध्यान देने की बात है कि सदियों से ही समाज जाति, नस्ल, लिंग, भाषा इत्यादि के आधार पर कई समूहों में बंटा रहा है, मर्क्सवादियों के अनुसार सिर्फ आमिर-गरीब में नहीं। जहां तक शक्ति का सवाल है, सदियों से समाज में इसके तीन प्रमुख स्रोत रहे हैं-आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक। शक्ति के ये स्रोत जिस समूह के हाथों में जितना ही संकेंद्रित रहे, वह उतना ही शक्तिशाली, विपरीत इसके जो जितना ही इनसे दूर व वंचित रहा, वह उतना दुर्बल व अशक्त रहा। सदियों से समतामूलक समाज निर्माण के लिए जारी संघर्ष और कुछ नहीं, शक्ति के स्रोतों में वंचित तबकों को उनका प्राप्य दिलाना ही रहा है।

समताकामियों द्वारा धार्मिक-शक्ति की उपेक्षा

जहाँ तक शक्ति का प्रश्न है सामाजिक परिवर्तन की लड़ाई लड़ने वाले तमाम चिंतक, विशेषकर मार्क्सवादी धार्मिक-शक्ति की बुरी तरह उपेक्षा करते रहे हैं। यह डॉ. आंबेडकर थे जिन्होंने इसकी अहमियत को समझा और साबित किया कि धर्म भी शक्ति का स्रोत होता है और धन-सम्पति की तुलना में 'धर्म' की शक्ति अधिक नहीं, तो किसी प्रकार कम भी नहीं। वास्तव में धर्म का मनुष्य के हृदय पर शासन रहने'के कारण यह समाज में शक्ति का एक विराट केन्द्र रहा है। चूंकि हर धर्म के अनुयायियों का लक्ष्य लौकिक-पारलौकिक सुख के लिए ईश्वर-कृपा लाभ करना रहा है और पोप-पुरोहित-मौलवी ईश्वर और भक्तों के बीच मध्यथ का रोल निभाते रहे हैं इसलिए धार्मिक-शक्ति का लाभ ये ही उठाते रहे हैं। धार्मिक शक्ति से लैश होने के कारण ही प्राचीन रोमन गणराज्य में प्लेबीयन बहुसंख्यक हो कर भी अल्पजन पैट्रिशियनों के समक्ष लाचार बने रहे। इस कारण ही भारत के ब्राह्मण तो साक्षात् 'भूदेवता' ही बन गए और समाज में इतनी शक्ति अर्जित कर लिए कि 70 वर्ष के क्षत्रिय भी दस वर्ष के ब्राहमण बालक तक के समक्ष सर झुकाने के लिए बाध्य रहे। इन्होंने देवालयों में इतनी धन-सम्पति इकट्ठी कर ली थी कि विदेशी लुटेरे खुद को भारत पर हमला करने से न रोक सके। इस शक्ति से समृद्ध मध्ययुग के योरप में पोप-पुजारियों की जीवन शैली वहां के राजे-महाराजाओं के लिए भी इर्ष्या की वस्तु बन गई थी। इस शक्ति से पूरी दुनिया की महिलाएं और भारत के दलित-पिछड़ों जैसे कई सामाजिक समूहों को पूरी तरह दूर रखा गया। धार्मिक शक्ति का महत्त्व इक्कीसवीं सदी में कम हो गया है, ऐसा दावा कोई नहीं कर सकता।

सामाजिक-आर्थिक विषमता के खात्मे के लिएःशक्ति के केन्द्रों में सामाजिक और लैंगिक विविधता का प्रतिबिम्बन

यह सही है कि हजारों वर्षों से दुनिया के हर देश का शासक-वर्ग ही कानून(धर्माधारित)बना कर शक्ति का वितरण करता रहा है। पर, यदि हम यह जानने की कोशिश करें कि सारी दुनिया के शासक जमातों ने अपनी स्वार्थपरता के तहत कौन सा रास्ता अख्तियार कर सामाजिक और आर्थिक विषमता को जन्म दिया; शक्ति का असमान वितरण किया तो हमें विश्वमय एक विचित्र एकरूपता का दर्शन होता है। हम पाते हैं कि सभी ने शक्ति के केन्द्रों में सामाजिक(social)और लैंगिक (gender) विविधता (diversity) का असमान प्रतिबिम्बन करा कर ही मानव जाति की सबसे बड़ी समस्या को जन्म दिया। अगर हर जगह शक्ति के स्रोतों का बंटवारा विभिन्न तबकों और उनकी महिलाओं की संख्यानुपात में किया गया होता तो क्या दुनिया में आर्थिक और सामाजिक गैर-बराबर की स्थिति पैदा होती? यह मानव-जाति का बड़ा दुर्भाग्य

है कि समाज परिवर्तन का महान रूपकार मार्क्स इस तथ्य की उसी तरह अनदेखी कर गया, जैसा कि उसने नीग्रो-स्लेवरी के मामले में किया।

शक्ति के असमान बंटवारे से पैदा हुआ : क्रांतियों का सैलाब

बहरहाल प्राचीन काल से लेकर आधुनिक विश्व के उदय के पूर्व तक सर्वत्र ही सामाजिक और लैंगिक विविधता की अनदेखी हुई तो इसलिए कि राजतंत्रीय व्यवस्था के दैविक अधिकार (divine right) सम्पन्न शासक वर्गों में 'जीओ और जीने दो' की भावना ही विकसित नहीं हुई थी। विभिन्न तबकों और उनकी महिलाओं को शक्ति में शेयर देना उनकी सोच से परे था। धर्माधिकारियों के प्रचंड प्रभाव से दैविक गुलाम (divine slave) में परिणत वंचित तबकों के स्त्री-पुरुषों में भी शक्ति-भोग की आकांक्षा पैदा नहीं हुई थी। किन्तु बहुत देर से ही सही, 1096 में नारमंडी के राजा विलीयम ने स्व-हित में सामंतों का अधिकार संकुचित करने के लिए जब 'ओथ सालिसबरी' के रास्ते जन साधारण से सहयोग मांगा, वह मानव जाति के इतिहास की एक युगांतरकारी घटना साबित हुई। तब कृषक बहुजन ने सामंतों के बजाय सीधे राजा के प्रति अपनी वफादारी की शपथ ली और विनिमय में राजा ने उन्हें शक्ति के केंद्रों में कुछ हिस्सेदारी देने का वादा किया। राजा के साथ सशर्त समझौते से जनसाधारण ने शक्ति(अधिकार)का जो स्वाद चखा वह राजतंत्रीय-व्यवस्था के लिए काल साबित हुआ। इससे वंचितों में अधिकाधिक शक्ति-भोग की लालसा तीव्रतर होती गयी जो 1215 में 'मैग्नाकार्टा' (स्वाधीनता का पहला मुक्ति-पत्र)अर्जित करते हुए 1689 में 'बिल ऑफ राइट्स' हासिल करने के बाद ही कुछ शांत हुई। मैग्नाकार्टा से बिल ऑफ राइट्स अर्जित करने तक, सुदीर्घ पांच सौ वर्षों का अंग्रेज बहुजन के संग्राम का पथ कांटों भरा रहा। इस दौरान हॉब्स, लॉक जैसे बुद्धिजीवियों ने लोगों में शक्ति-अर्जन की भूख बढ़ाने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ी। परिणामस्वरूप वंचितों को शक्ति के स्रोतों से जोड़ने के लिए फ्रांस, अमेरिका, रूस, चीन सहित दुनिया के अन्यान्य देशों में क्रांतियों का सैलाब उठा। इनसे प्रेरणा लेकर आज भी आर्थिक और सामाजिक गैर-बराबरी के खात्मे का संघर्ष दुनिया के विभिन्न अंचलों में जारी है।

शक्ति-वितरण के लिए : लोकतांत्रिक व्यवस्था

बहरहाल ब्रितानी जनगण ने पांच सौ सालों तक अधिकार अर्जन के लिए खुद को जो बार-बार गृह-युद्ध में झोका उससे प्रेरणा लेकर दूसरे देशों के वंचितों ने सिर्फ क्रांतियों का सैलाब ही पैदा नहीं किया, बल्कि शक्ति के सम्यक बंटवारे के लिए उन्होंने राजतंत्रीय-व्यवस्था को पलट कर जो गणतांत्रिक-व्यवस्था दी उसका भी नकल किया। यही कारण है दुनिया के सारे देशों में एक-एक करके राजतंत्र का ध्वंस और लोकतंत्र की स्थापना होते गया। लोकतंत्र के धीरे-धीरे परिपक्व होने के साथ बीसवीं सदी के

उतरार्द्ध में अधिकांश लोकतान्त्रिक देशों ने उपलब्धि किया कि तमाम तबकों और महिलाओं के मध्य शक्ति का न्यायोचित बंटवारा किये बिना लोकतंत्र को सलामत नहीं रखा जा सकता। ऐसे में उन्होंने समस्त आर्थिक गतिविधियों, शिक्षण संस्थाओं, फिल्म-मीडिया, राजनीति की समस्त संस्थाओं इत्यादि में सामाजिक और लैंगिक विविधता अर्थात 'जिसकी जितनी संख्या भारी-उसकी उतनी भागीदारी' लागू करने का उपक्रम चलाया। इसका परिणाम यह हुआ कि दुनिया भर में महिलाओं, नस्लीय भेदभाव के शिकार अश्वेतों इत्यादि विभिन्न वंचित समूहों को लोकतांत्रिक देशों में शक्ति में शेयर मिलने लगा। ऐसा होने पर उन देशों में आर्थिक-सामाजिक विषमता के खात्मे और लोकतंत्र के सुदृढ़ीकरण कि प्रक्रिया तेज हुई। शक्ति के स्रोतों में सामाजिक और लैंगिक विविधता के रास्ते विषमता की समस्या से निपटने में जिन देशो ने उल्लेखनीय सफलता अर्जित की उनमे विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं कनाडा, अमेरिका, योरोपीय देश, न्यूजीलैंड, आस्ट्रेलिया, मलेशिया और सबसे बढ़कर दक्षिण अफ्रीका।

विविधता नीति के सहारे विषमता के खात्मे का सर्वोत्तम मिसाल : दक्षिण अफ्रीका

दक्षिण अफ्रीका भारत की तरह ही विविधतामय देश है, जहाँ 79.6 प्रतिशत मूलनिवासी काले, 9.1 प्रतिशत गोरों, 8.9 प्रतिशत कलर्ड और 2.5 प्रतिशत एशियाई व अन्य श्रेणी का वास है। नेल्सन मंडेला के सत्ता में आने के पूर्व वहां गोरों ने सामाजिक विविधता की भयावह अनदेखी करते हुए शक्ति के स्रोतों पर 80-85 प्रतिशत कब्जा जमा रखा था। मंडेला के सत्ता में आने के बाद जब वहां लोकतंत्र स्थापित हुआ, सरकार ने संविधान में सामाजिक विविधता लागू करने का प्रावधान सुनिश्चित किया। परिणामस्वरूप वहां के चारों प्रमुख सामाजिक समूहों को संख्यानुपात में समस्त आर्थिक गतिविधियों, राजनीतिक संस्थाओं इत्यादि में भागीदारी का मार्ग प्रशस्त हुआ। इससे वहां जिन गोरों का शक्ति स्रोतों पर 80-85 प्रतिशत कब्जा था, वे 9-10 प्रतिशत पर सिमटने के लिए बाध्य हुए। ऐसे में उनके हिस्से की 70-75 प्रतिशत सरप्लस शक्ति शेष वंचित समूहों में बंटनी शुरू हो गयी। अब गोरों की निहायत ही लोकतंत्र विरोधी नीति के चलते भयंकर आर्थिक और सामाजिक विषमता की खाई में फंसा दक्षिण अफ्रीका तेजी से इससे उबरने की राह पर चल पड़ा है। उल्लेखनीय है कि आज संख्यानुपात में सिमटने के कारण गोरे दक्षिण अफ्रीका छोड़ कर भागने लगे हैं।

भारत में सामाजिक और लैंगिक विविधता का प्रतीकात्मक प्रदर्शन

भारत समाज असंख्य जातियों और धार्मिक समुदायों से गठित है। इसे कुछ सामान्य विशेषताओं के आधार पर चार मुख्य सामाजिक समूहों-(1) सवर्ण, (2) ओबीसी, (3) एससी/एसटी और (4) धार्मिक अल्पसंख्यक- में वर्गीकृत किया गया है। यह

वर्गीकरण ही भारत की सामाजिक विविधता है। अगर आजाद भारत के शासकों की मंसा सही होती तो वे वे इन चारों समूहों और उनकी महिलाओं के संख्यानुपात में आर्थिक-राजनीतिक और धार्मिक क्षेत्र के अवसरों का बंटवारा कराते। इसके लिए वे उन देशों से प्रेरणा लेते, जिनसे लोकतंत्र का प्राथमिक पाठ पढ़ा है। लेकिन हर बात में विदेशियों की नकल करने वाले हमारे शासक वर्ग ने विविधता नीति का अनुसरण करने में पूरी तरह परहेज रखा। हालाँकि यह कहना ज्यादती होगी कि बिलकुल ही प्रेरणा नहीं लिया। लिया मगर प्रतीकात्मक, जैसे मौजूदा संप्रग सरकार में महिला राष्ट्रपति, मुस्लिम उप- राष्ट्रपति, अल्पसंख्यक प्रधानमंत्री, दलित स्पीकर और आदिवासी डीप्टी स्पीकर बनाया गया है। उच्च पदों पर सामाजिक -लैंगिक विविधता के ऐसे सतही प्रतिबिम्बन को हमारे बुद्धिजीवी भारतीय लोकतंत्र की मजबूती का सूचक मान कर खूब खुश होते रहे हैं। स्वाधीन भारत की तमाम सरकारें भी ऐसा ड्रामा करके ही अपने लोकतंत्र पर गर्वित होती रहीं, पर शक्ति के असल केन्द्रों में विविधता के प्रतिबिम्बन से परहेज किया। परिणामस्वरूप विश्व में सर्वाधिक गैर-बराबरी का साम्राज्य भारत में कायम हुआ।

यहां के विशेषाधिकार युक्त चिरसुविधाभोगी 15 प्रतिशत अल्पजनों का शक्ति स्रोतों पर लगभग 80-85 प्रतिशत कब्जा है। विविधता की अनदेखी के कारण ही हम महिला सशक्तिकरण के मोर्चे पर बांग्लादेश जैसे पिछड़े राष्ट्र से भी पिछड़े हैं। इस कारण ही सच्चर रिपोर्ट में उभरी मुस्लिम समुदाय की बदहाली राष्ट्र को सकते में डाल दी है। इस कारण ही एससी/एसटी और ओबीसी की उद्योग-व्यापार, फिल्म-मिडिया में नगण्य तो देवालयों में शून्य भागीदारी है। इतनी गैर-बराबरी किसी भी देश में क्रांति को आमंत्रण दे देती, लेकिन भारत में वैसा कुछ नहीं हो रहा है तो क्यों, इसका खुलासा कोई समाज-मनोविज्ञानी ही कर सकता है। पर, ऐसा नहीं कि इसका कोई असर ही नहीं हो रहा है। हो रहा है, तभी तो विषमता से पीड़ित एक तबके ने 2050 तक बन्दूक के बल पर लोकतंत्र के मंदिर पर कब्जा जमा लेने की खुली घोषणा कर दिया है। पर क्या हमारा शासक वर्ग इससे परेशान है? बहरहाल अगर गैर-बराबरी के दुष्परिणामों को जानते हुए भी शासक वर्ग सामाजिक और लैंगिक विविधता की बुरी तरह उपेक्षा किये जा रहा है तो उसके पृष्ठ में क्रियाशील है वर्णवादी मानसिकता।

सामाजिक और लैंगिक विविधता की सबसे बड़ी दुश्मन : वर्ण-व्यवस्था

हमारे शासकों की सामाजिक-लैंगिक विविधता विरोधी मानसिकता का सम्बन्ध उस वर्ण-व्यवस्था से है, जिसे उनके महान आदर्श विवेकानंद ने मानव-जाति को ईश्वर-प्रदत सर्वश्रेष्ठ उपहार कहा है। महात्मा गाँधी जैसे राष्ट्रपिता और इ एस नम्बूदरीपाद जैसे महान मार्क्सवादी भी विवेकान्द की भांति ही वर्ण-व्यवस्था की प्रशंसा में पंचमुख रहे। पर, आर्यों द्वारा प्रवर्तित वर्ण-व्यवस्था दुनिया की ऐसी पहली व अनुपम सामाजिक

व्यवस्था थी, जिसमें किसी देश की बहुसंख्यक आबादी को शक्ति (आर्थिक-राजनीतिक-धार्मिक) में एक कतरा भी न देने की चिरस्थाई व्यवस्था की गयी। यह दुनिया की पहली व्यवस्था थी जिसमें किसी समाज को चार भागों (ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य और शूद्रातिशूद्र) में बांटकर एक अपरिवर्तनीय सामाजिक विविधता को जन्म दिया गया। इसमें अध्ययन-अध्यापन, पौरोहित्य, राज्य-संचालन, सैन्य-वृति, भूस्वामित्व, व्यवसाय-वाणिज्य इत्यादि के सारे अवसर जन्मसूत्र से सिर्फ ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्यों से युक्त सवर्ण-पुरुषों के लिए आरक्षित रहे। इसके प्रवर्तकों ने खुद स्व-वर्ण की महिलाओं तक को शक्ति के केन्द्रों में स्वतन्त्र भागीदारी नहीं दिया। उन्होंने शूद्रातिशूद्रों को आर्थिक-राजनीतिक के साथ धार्मिक शक्ति से पूरी तरह दूर कर दिया। धार्मिक स्रोतों से दूर रखने के लिए जहां शूद्रातिशूद्रों को तीन उच्चतर वर्णों(सवर्णों)की निष्काम सेवा में मोक्ष संधान करने का कानून बनाया, वहीं सभी स्त्रियों को पति-चरणों में स्वर्ग ढूढ़ने का प्रावधान दिया। शूद्रातिशूद्रों और नारियों के लिए किसी भी किस्म की शक्ति का भोग अधर्म था। इस व्यवस्था द्वारा पूरी तरह शक्तिहीन बने शूद्रातिशूद्रों के लिए अच्छा नाम तक रखना वर्जित रहा। चूँकि वर्ण- व्यवस्था ईश्वरकृत रूप में प्रचारित रही इसलिए सवर्ण शक्ति के स्रोतों का भोग अपना दैविक -अधिकार मानने की मानसिकता से पुष्ट रहे। विपरित इसके दैविक-गुलाम बने शूद्रातिशूद्र और महिलायें खुद को पूरी तरह शक्ति के अनाधिकारी समझते रहे। वर्ण-व्यवस्था के कानूनों के तहत शक्ति के बंटवारे का कार्य आईपीसी, (भारतीय दंड संहिता) जिसके तहत बौद्धोत्तर भारत में पहली बार कानून कि नजरों में एक बराबर किया गया, के लागू होने के एक दिन पूर्व तक चलता रहा। पर आईपीसी भी शक्ति के स्रोतों को सवर्णों के चंगुल से मुक्त कराने में आंशिक रूप से ही सफल हो पाई। इसलिए आजाद भारत को विरासत में जहां भयावह आर्थिक और सामाजिक गैर-बराबरी मिली, वहीं दुर्भाग्य से सत्ता की बागडोर उन्ही लोगों के हाथ में आई जो शक्ति के सभी स्रोतों पर पूर्ण रूपेण कब्जा रखना अपना दैविक-अधिकार मानते रहे।

स्वाधीन भारत के सुपर-स्टार नेताः लोकतंत्र-विरोधी

संविधान निर्माता बाबा साहेब डॉ आंबेडकर को स्वाधीन भारत के शासकों की मानसिकता का अहसास था। इसलिए उन्होंने संविधान सौपने के पूर्व राष्ट्र को सावधान करते हुए कहा था कि हमें निकटतम समय के मध्य आर्थिक और सामाजिक विषमता का खात्मा कर लेना होगा नहीं तो विषमता से पीड़ित जनता लोकतंत्र के परखचे उड़ा देगी। लेकिन पंडित नेहरु, इंदिरा गाँधी, राजीव गाँधी, ज्योति बसु, अटल बिहारी वाजपेयी, जय प्रकाश नारायण जैसे राजनीति के सुपर-स्टार तक भी लोकतंत्र की सलामती की दिशा में कोई ठोस कदम नहीं उठा सके। फलतः विषमता की खाई बढ़ती और बढ़ती गयी। हालात यहाँ तक पहुँच गये कि 2009 में विषमता से पीड़ित

एक तबके द्वारा 2050 तक लोकतंत्र के मंदिर पर बंदूक के जोर पर कब्जा जमाने का एलान कर दिया गया। यदि लोकतंत्र की सलामती की कसौटी पर इन बड़े नेताओं की भूमिका का सही तरह से आकलन किया जाय तो वे लोकतंत्र विरोधी ही नजर आयेंगे।

बहुजन डाइवर्सिटी मिशन का उदय

स्वाधीन भारत के शासकों की लोकतंत्र-विरोधी नीतियों के चलते आर्थिक और सामाजिक गैर-बराबरी का जो बेइंतहां विस्तार हुआ उसके खात्मे के लिए गाँधीवादी, मार्क्सवादी, राष्ट्रवादी, लोहियावादी और आंबेडकरवादी विचारधारा से जुड़े ढेरों राजनीतिक व सामाजिक संगठन 'समतामूलक समाज की स्थापना', सामाजिक परिवर्तन और आर्थिक मुक्ति', 'सामाजिक विषमता का खात्मा' जैसे आकर्षक नारों के साथ वजूद में आये, पर लक्ष्य से दूर रहे। इसका खास कारण यह रहा कि सामाजिक और आर्थिक विषमता की उत्पत्ति का सुस्पष्ट चित्र उनके पास नहीं था। इसलिए वे टुकड़ों-टुकड़ों में शक्ति अर्जन की लड़ाई लड़ते रहे। कोई भूमि में बंटवारे की तो कोई मजदूरी बढ़वाने की; कोई दलितों के लिए तो कोई पिछडों के लिए; कोई मुसलमानों की तो कोई महिलाओं के हितों की लड़ाई लड़ता रहा। आज की तारीख में कोई पिछडों और मुसलमानों को नौकरियों में तो कोई महिलाओं को राजनीति में आरक्षण दिलाने की लड़ाई लड़ रहा है। इनमें किसी के पास भी ऐसा प्रोग्राम नहीं रहा जिससे मानव-जाति की सबसे बड़ी समस्या का मुकम्मल हल; लोकतंत्र का सुदृढीकरण तथा सभी समुदायों का समान सशक्तिकरण किया जा सके। ऐसी स्थिति में ही 15 मार्च 2007 को हम कुछ अम्बेडकरवादी लेखक-एक्टिविस्टों ने मिलकर 'बहुजन डाइवर्सिटी मिशन' की स्थापना किया। चूंकि मिशन से जुड़े लोगों का यह दृढ विश्वास रहा है कि आर्थिक और सामाजिक गैर-बराबरी ही मानव-जाति की सबसे बड़ी समस्या है तथा शक्ति के स्रोतों का विभिन्न तबकों और महिलाओं के मध्य असमान बंटवारे से ही सारी दुनिया सहित भारत में भी इसकी उत्पत्ति हुई है, इसलिए ही हमने शक्ति के सभी स्रोतों में सामाजिक और लैंगिक विविधता का प्रतिबिम्बन कराने की कार्य योजना बनाया। ऐसे में मिशन के तरफ से निम्न क्षेत्रों में सामाजिक और लैंगिक विविधता का प्रतिबिम्बन कराने अर्थात विविधतामय भारत के चार सामाजिक समूहों-सवर्ण, ओबीसी, एससी/एसटी और धार्मिक अल्पसंख्यकों- के स्त्री-पुरुषों की संख्यानुपात में अवसरों के बंटवारे की निम्न दस सूत्रीय कर्मसूची स्थिर किया।

1. सेना व न्यायालयों सहित सरकारी और निजीक्षेत्र की सभी स्तर की, सभी प्रकार की नौकरियों व धार्मिक प्रतिष्ठानों;
2. सरकारी और निजी क्षेत्रों द्वारा दी जानेवाली सभी वस्तुओं की डीलरशिप;
3. सरकारी और निजी क्षेत्रों द्वारा की जानेवाली सभी वस्तुओं की खरीददारी;

4. सड़क-भवन निर्माण इत्यादि के ठेकों, पार्किंग, परिवहन;
5. सरकारी और निजी क्षेत्रों द्वारा चलाये जानेवाले छोटे-बड़े स्कूलों, विश्वविद्यालयों, तकनीकि-व्यावसायिक शिक्षण संस्थाओं के संचालन, प्रवेश व अध्यापन;
6. सरकारी और निजी क्षेत्रों द्वारा अपनी नीतियों, उत्पादित वस्तुओं इत्यादि के विज्ञापन के मद में खर्च की जानेवाली धनराशि;
7. देश विदेश की संस्थाओं द्वारा गैर-सरकारी संस्थाओं (एनजीओ) को दी जानेवाली धनराशि;
8. प्रिंट व् इलेक्ट्रोनिक मिडिया एवं फिल्म-टीवी के सभी प्रभागोंय
9. रेल-राष्ट्रीय मार्गों की खाली पड़ी भूमि सहित तमाम सरकारी और मठों की खली पड़ी जमीन व्यावसायिक इस्तेमाल के लिए अस्पृश्य-आदिवासियों में वितरित हो एवं
10. ग्राम-पंचायत, शहरी निकाय, संसद-विधासभा की सीटों राज्य एवं केन्द्र की कैबिनेट; विभिन्न मंत्रालयों के कार्यालयों; विधान परिषद-राज्यसभा; राष्ट्रपति, राज्यपाल एवं प्रधानमंत्री व मुख्यमंत्री के कार्यालयों इत्यादि।

आर्थिक और सामाजिक गैर-बराबरी के खात्मे के मुक्कमल सूत्रों से लैसः बीडीएम का दस सूत्रीय एजेंडा

अगर विभिन्न तबकों और उनकी महिलाओं के मध्य शक्ति के स्रोतों का असमान बंटवारा ही आर्थिक और सामाजिक विषमता की सृष्टि का मूल कारण है तो बीडीएम के दस सूत्रीय एजेंडे उसके निवारण में पूरी तरह सक्षम हैं। इनमें एक वैश्विक अपील है। इसे लागू कर किसी भी देश में समतामूलक समाज की स्थापना किया जा सकता है। जहाँ तक भारत का सवाल है यहां विषमता इसलिए है क्योंकि 15 प्रतिशत सवर्णों का शक्ति के तमाम स्रोतों पर 80-85 प्रतिशत वर्चस्व है। 15 प्रतिशत कहना ज्यादती होगी, क्योंकि इसमें उनकी महिलाओं की भागीदारी अति न्यून है। ऐसे में कहा जा सकता है कि बमुश्किल 8-9 प्रतिशत विशेषाधिकारयुक्त लोगों का ही शक्ति केन्द्रों पर दक्षिण अफ्रीका के गोरों की भांति ही 80-85 प्रतिशत कब्जा है। देश के योजनाकारों की बहुत बड़ी कमी रही की इस विषमताकारी वर्चस्व को नियंत्रित किये बिना, वे वंचित समुदायों की बेहतरी की योजनाएं बनाते रहे। यह योजनाएं भी हिस्सेदारीमूलक नहीं, बहुधा राहतकारी। बहरहाल बीडीएम का दस सूत्रीय एजेंडा लागू होने पर 80-85 प्रतिशत कब्जा जमाने लोग अपनी संख्यानुपात पर सिमटने के लिए बाध्य होंगे, जैसे दक्षिण अफ्रीका के गोरे हुए। ऐसा होने पर उनके हिस्से की अतिरक्त (surplus) शक्ति के बाकी तीन वंचित समुदायों के मध्य बंटने के दरवाजे स्वतः खुल जायेंगे। शक्ति के उपरोक्त केन्द्रों में सामाजिक और लैंगिक विविधता लागू होने पर सवर्ण, ओबीसी, एससी/एसटी और धार्मिक-अल्पसंख्यकों के मध्य व्याप्त विषमता का

धीरे-धीरे विलोप हो जायेगा। बीडीएम के दस सूत्रीय एजेंडे के लागू होने से आर्थिक और सामाजिक विषमता का तो खात्मा होगा ही राष्ट्र दूसरी समस्याओं से भी उबरने में सक्षम हो उठेगा।

अस्पृश्यों को हिन्दुओं के अत्याचार से बचाने के लिए : डाइवर्सिटी

जो हिन्दू दलितों पर तरह-तरह का जुल्म करने से जरा भी नहीं हिचकते, उनकी एक मनोवैज्ञानिक दुर्बलता है। वे सख्त का भक्त होते हैं। सख्त का भक्त होते हैं इसलिए बन्दर, भालू, सांप, गदहा, पेड़-पौधा, ईट-पत्थरों को देवता मानकर पूजते रहते हैं। हिन्दुओं की इस दुर्बलता से ही भारत में 33 करोड़ देवता पैदा हो गये। हिन्दू सख्त का भक्त होते हैं इसलिए विदेशागत शासकों का कृपालाभ पाने के लिए शर्मनाक हद तक समझौते करते रहे। वे सख्त का भक्त हैं इसलिए जो दलित धन-बल, शिक्षा बल इत्यादि से सम्पन्न हैं उनकी मित्रता जीतने के लिए सदा तत्पर रहते हैं। वे उन्हीं दलितों पर अपना पराक्रम दिखाते हैं जो भूमिहीन, धनहीन और शिक्षाहीन हैं। डाइवर्सिटी लागू होने पर दलित उद्योगपति, व्यापारी, ठेकेदार, अखबारों-चैनलों के मालिक बनने लगेंगे। इस तरह डाइवर्सिटी के रास्ते धीरे-धीरे वे शक्तिहीन से शक्तिमान में तब्दील हो जायेंगे। ऐसा होने पर दलित समाज के प्रति गैर-दलितों के नजरिये में आमूल बदलाव आ जायेगा। तब जो हिन्दू उन पर अत्याचार करते हैं, वे ही उनकी निकटता पाने के लिए तरह-तरह का उपाय ढूंढ़ने लगेंगे।

मुकम्मल महिला सशक्तिकरण के लिए : डाइवर्सिटी

सारी दुनिया में सदियों से महिलाओं को शक्ति के सभी केंद्रों से दूर रखकर ही, अशक्त बनाया गया। उन्हें मुकम्मल रूप से सशक्त सिर्फ शक्ति के सभी केंद्रों में 50 प्रतिशत हिस्सेदारी देकर ही बनाया जा सकता। और ऐसा तभी हो सकता है जब बीडीएम के पूर्व उल्लिखित दस सूत्रीय एजेण्डे में लैंगिक विविधता लागू हो। शक्ति के सभी केंद्रों में सामाजिक विविधता के साथ लैंगिक विविधता भी लागू करने से महिला सशक्तिकरण के लक्ष्य को शत प्रतिशत हासिल कर सकते हैं। ऐसा होने पर सदियों से अबला के रूप में चिन्हित आधी आबादी सबला हो जायेगी फिर तो आधी आबादी के साथ बलात्कार व यौन शोषण की हिम्मत जुटाना पुरुषों के लिए आसान नहीं रह जायेगा।

भ्रष्टाचार को कम करने के लिए : डाइवर्सिटी

भ्रष्टाचार पर काबू पाने के लिए इन दिनों जन लोकपाल विधेयक तैयार करने की कवायद चल रही है जिसका जोर भ्रष्टाचार के स्रोतों को बंद करने के बजाय भ्रष्ट नेताओं और नौकरशाहों के विरुद्ध कार्यवाई करने पर ज्यादा है। पर भ्रष्टाचार की

व्याप्ति सर्वव्यापी है। चपरासी, बाबू, फिल्मस्टार से लेकर सीटी बैंक घोटालेबाजों, किडनी चोरों और इच्छाधारी बाबाओं तक यह फैला हुआ है। बहरहाल जिस जन लोकपाल विधेयक को भ्रष्टाचार के विरुद्ध कारगर हथियार मानकर बहुत से लोग काफी आशावादी हो चले हैं वह विभिन्न देशों में भिन्न-भिन्न नामों से लागू ओम्बड्समैन का ही भारतीय संस्करण है। ट्रान्सपरेंसी इंटरनेशनल की रिपोर्ट से पता चलता है कि विदेशों में, जहाँ भारत से कहीं ज्यादा नैतिकता है, ओम्बड्समैन भ्रष्टाचार रोकने में विफल साबित हुआ है। यही कारण है कुछ बुद्धिजीवी यह कहने लगे हैं कि बिना सामाजिक, सांस्कृतिक सवालों से टकराये भ्रष्टाचारविहीन समाज का रास्ता खोलना सम्भव नहीं है। बहरहाल आज की तारीख में जहाँ भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने के लिए तरह-तरह के सुझाव सामने आ रहे है वहाँ इस दिशा में विविधता (Diversity) सिद्धांत लागू करना कारगर साबित हो सकता है

डाइवर्सिटी सिद्धांत लागू होने पर शक्ति के सभी केंद्रों में अवसरों का बँटवारा भारत के चार सामाजिक समूहों-सवर्ण, ओबीसी, एससी/एसटी और धार्मिक अल्पसंख्यकों–के स्त्री-पुरुषों के संख्यानुपात में होगा। इससे जिन सवर्णों का उद्योग, व्यापार, मीडिया, मिलिट्री के उच्च पदों, न्यायपालिका, मंत्रालयों के सचिव आदि पदों पर 80-85 प्रतिशत कब्जा हैं, एवं जहाँ का भ्रष्टाचार ही राष्ट्र के लिए विराट समस्या बन गया है, वहां वे 7-8 प्रतिशत पर सिमटने के लिए बाध्य होंगे। कारण, उपरोक्त सभी क्षेत्रों में लैंगिक विविधता लागू होने पर सवर्णों के कुल 15 प्रतिशत का आधा हिस्सा उनकी महिलाओं के हिस्से में चला जायेगा। हालांकि सवर्ण महिलाओं में भी नीरा राडिया, बरखा दत्त, जैसी महिलायें हैं जिन्हें अपवाद ही माना जायेगा। सामान्यतया सवर्ण महिलाओं में भी दलित-पिछड़ों की भाँति ऐतिहासिक कारणों से आकांक्षा-स्तर और उपलब्धि-अभिप्रेरणा निम्न स्तर की है। इसका आधिक्य सवर्ण पुरुषों में ही हैं। ऐसे में सवर्ण जब डाइवर्सिटी के रास्ते महज 7-8 प्रतिशत अवसरों तक सिमटने के लिए बाध्य होंगे तब निश्चय ही भ्रष्टाचार में मात्रात्मक गिरावट आयेगी।

भ्रष्टाचार कम करने में डाइवर्सिटी एक और रूप में प्रभावी साबित हो सकती है। वह इस तरह कि जब अपराधियों का संरक्षण व बचाव करने वाली संस्थाओं में सवर्णों की उपस्थिति 80-85 प्रतिशत की जगह महज 7-8 प्रतिशत पर सिमटेगी तब सवर्ण भ्रष्टाचारियों में मनोवैज्ञानिक सुरक्षा की कमी आ जायेगी। इस मनोवैज्ञानिक सुरक्षा के अभाव में निश्चय ही भ्रष्टाचर में गिरावट आयेगी।

लोकतंत्र की सलामती के लिए : डाइवर्सिटी

25 नवम्बर 1949 को को संविधान सौपने के पूर्व बाबा साहेब, ने राष्ट्र को सावधान करते हुए कहा था कि *हमें निकटतम समय के मध्य आर्थिक और सामाजिक असमानता*

दूर कर लेनी होगी, नहीं तो विषमता से पीड़ित जनता लोकतंत्र के ढांचे को विस्फोटित कर सकती है। ऐसे में लोकतंत्र की सलामती को ध्यान में रखते हुए, आजाद भारत के तमाम सरकारों की कर्मसूचियां विभिन्न सामाजिक समूहों के मध्य, शक्ति (आर्थिक-राजनीतिक, धार्मिक) के सम्यक बंटवारे पर केन्द्रित होनी चाहिए थीं। पर विगत 64 सालों में ऐसा नहीं किया गया इसलिए विश्व में सबसे ज्यादा आर्थिक-सामाजिक विषमता भारत में है। विषमता से पीड़ित एक तबके ने 2050 तक बन्दूक के बल पर लोकतन्त्र के मंदिर पर कब्जा जमाने का ऐलान कर दिया है। ऐसी घोषणा देर सबेर दूसरे वंचित समूह भी कर सकते हैं। जाहिर है घोर आर्थिक-सामाजिक विषमता के चलते, कल हमारे लोकतंत्र का ढांचा विस्फोटित भी हो सकता है। किन्तु शक्ति के केंद्रों में सामाजिक और लैंगिक विविधता लागू होने पर शर्तिया तौर पर यह खतरा टल सकता है।

सच्चर रिपोर्ट में उभरी मुस्लिम समुदाय की बदहाली की तस्वीर को खुशहाली में बदलने के लिए : डाइवर्सिटी

जैसा कि हम बार-बार कह रहे हैं कि शक्ति के केंद्रों का समाज के विभिन्न तबकों और उनकी महिलाओं के मध्य असमान बंटवारे से ही विषमता पैदा होती है। सच्चर रिपोर्ट में उभरी मुसलिम समाज की बदहाली इसलिए है कि आजाद भारत के काले अंग्रेजों ने उन्हें सुपरिकल्पित तरीके से शक्ति के केंद्रों से दूर रखा। डाइवर्सिटी लागू होने उनकी बदहाली की तस्वीर खुशहाली में बदल सकती है। उनकी बदहाली दूर करने के लिए डाइवर्सिटी से बेहतर और कोई उपाय नहीं हो सकता।

आरक्षण से उपजते गृहयुद्ध के हालात से निजात पाने के लिए : डाइवर्सिटी

आज जाट, गुर्जर, कायस्थ, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य हर किसी को आरक्षण चाहिए। विभिन्न जातियों में आरक्षण की बढ़ती मांग ने धीरे-धीरे गृह युद्ध के हालात पैदा कर दिये हैं। इससे कभी भी विस्फोटक स्थिति पैदा हो सकी है। डाइवर्सिटी लागू होने पर राष्ट्र इस विस्फोटक हालात से निजात पा जायेगा, इसकी पूरी उम्मीद है।

नक्सलवाद के शमन के लिए : डाइवर्सिटी

बड़े से बड़े अर्थशास्त्री हों या सड़क छाप बुद्धिजीवी, हर कोई मानता हे कि नक्सलवाद की जड़ आर्थिक विषमता है। नक्सलवाद को आंतरिक सुरक्षा के लिए सबसे बड़ा खतरा घोषित करने वाली सरकारें भी ऐसा मानकर ही नक्सल प्रभावित इलाकों में करोड़ों-करोड़ों का आर्थिक पैकेज घोषित करती हैं। पर, यह योजनायें इसलिए विफल हो जाती है कि उनमें नक्सलवाद से जुड़ रहे लोगों को अर्थोपार्जन के सभी क्षेत्रों में भागीदारी सुलभ कराने का रत्ती भर भी दम नहीं रहता। डाइवर्सिटी लागू होने पर हर सामाजिक समूह के स्त्री-पुरुषों को उनके संख्यानुपात में, अर्थोपार्जन की हर

गतिविधियों में वाजिब हिस्सा मिलेगा। ऐसा होने पर नक्सलवाद धीरे-धीरे खत्म हो जायेगा, ऐसी कल्पना द्विधामुक्त भाव से की जा सकती है।

बहुराष्ट्रीय कंपनियों को रोकने के लिए : डाइवर्सिटी

भारत में बहुराष्ट्रीय कंपनियां भारतीय कंपनियों की नकल करते हुए अपनी व्यावसायिक गतिविधियों (डीलरशीप, सप्लाई, कर्मचारियों की भर्ती) में डाइवर्सिटी लागू करने से पूरी तरह परहेज करती हैं। जबकि अपने देश में लागू करती है। पिछले एक दशक में कई ऐसे मौके आये जब प्राइवेट सेक्टर में आरक्षण का दबाव सरकारों के तरफ से बनाया गया। तब जहां देशी कंपनियों ने पूरी तरह हाथ उठा दिया, वहीं बहुराष्ट्रीयां कंपनियों ने कह दिया कि ऐसा होनेपर हम अपना कारोबार समेट कर वापस चले जायेंगे। बहुराष्ट्रीय कंपनियों का पुतले फूंककर उन्हें वापस भगाने की परिकलपना करने वालों ने कभी उनकी इस दुर्बलता का फायदा उठाने की कोशिश नहीं किया। डब्ल्यू.टी.ओ. की शर्तों मे बंधे होने के कारण हम उन्हें भारत में कारोबार करने से रोक नहीं सकते पर डाइवर्सिटी की शर्तें थोपने में कोई कानूनी बाधा नहीं है। ऐसी शर्त थोपने पर मुमकिन है कि अपना कारोबार समेट लें। अगर ऐसा होता है तो साम्राज्यवाद विरोधियों की मन मांगी मुरादें पूरी हो जायेगी। लेकिन इस बात की सम्भावना ज्यादा है कि वे डाइवर्सिटी की शर्तें मान जायेगी। ऐसे में डाइवर्सिटी की शर्तें बहुराष्ट्रीय कंपनियों को भगाने या उनके व्यवसाय को मानवीय चेहरा देने में काफी प्रभावी हो सकती हैं।

विविधता में एकता को सार्थकता प्रदान करने के लिए : डाइवर्सिटी

भारत में विविधता में एकता है, यह बात अंग्रेज इतिहासकार विन्सेन्ट स्मिथ ने आज से लगभग 150 साल पहले कही थी। उनकी उस बात का अन्धानुकरण करते हुए, आज भी भारत के तमाम नेता, लेखक, कवि, प्रोफेसर तोते की तरह रटते रहते हैं, 'भारत की विविधता (Diversity) में एकता (unity) है।' किन्तु भारत की विविधता में एकता है इससे बड़ा झूठ कुछ हो ही नहीं सकता। भारत की भाषाई, सांस्कृतिक, धार्मिक, क्षेत्रीय, सामाजिक और लैंगिक इत्यादि तमाम विविधताओं पर ठंडे दिमाग से विचार करने पर यहां विविधता में एकता नहीं, शत्रुता, शत्रुता और सिर्फ शत्रुता का बोलबाला नजर आता है। भाषा के आधार राज्यों का बंटवारा होने के बावजूद भाषा को लेकर झगड़े होते रहते हैं। धार्मिक विविधता में शत्रुता की व्याप्ति है इसलिए रह-रह कर दंगों का सैलाब उठते रहता है। क्षेत्रीय विविधता में कथित एकता के परखचे उस समय उड़ने लगते हैं, जब समय-समय पर राज ठाकरों का उदय होता है। लैंगिक विविधता में भी सौहार्द का अभाव है, इसका पता स्त्री-लेखन में मिलता है। लेकिन राष्ट्र की जो सबसे बड़ी चिन्ता है वह सामाजिक विविधता में शत्रुता

की पुरअसर व्याप्ति है। सामाजिक विविधता में व्याप्त शत्रुता ने भारत की असंख्य जातियों को शत्रुता से लबरेज अलग-अलग राष्ट्रों में बांट कर रख दिया है। इसके मूल में है वर्ण-व्यवस्था जो मुख्यतः शक्ति (आर्थिक-राजनीतिक-धार्मिक) और सामाजिक मर्यादा की वितरण व्यवस्था रही। इसमें विभिन्न समाजों के मध्य शक्ति और मानवीय मर्यादा का ऐसा असमान बंटवारा हुआ कि सदा के लिए शक्ति का असंतुलन पैदा हो गया जिससे राष्ट्र आज तक उबर नहीं पाया है। शक्ति के इस असंतुलन ने विभिन्न समाजों के बीच चिरस्थाई तौर पर शत्रुता पैदा कर दी है। इसलिए यहां सामाजिक समरसता और भ्रातृत्व दूरवीक्षण यंत्र देखने की चीज बनकर रह गई है। शक्ति के सभी केंद्रों में सामाजिक और लैंगिक विविधता लागू होने पर सदियों से चला आ रहा असंतुलन दूर हो जायेगा। ऐसा होने पर ही विविधता में एकता होगी। ऐसा जब तक नहीं होता है, तब तक हमें दिल से नहीं, जबरन कहते रहना पड़ेगा, 'हमारी विविधता में एकता है।'

ब्राह्मणशाही के खात्मे के लिए : डाइवर्सिटी

सामाजिक बदलाव की लड़ाई लड़ने वाले तमाम संगठनों और बुद्धिजीवियों ने धार्मिक गतिविधियों को पूरी तरह नजरअंदाज किया। यह बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर थे जिन्होंने बताया शक्ति के स्रोत के रूप में धर्म का महत्त्व अगर आर्थिक शक्ति से ज्यादा नहीं तो कम भी नहीं। शक्ति के ऐसे महत्वपूर्ण स्रोत पर 3 प्रतिशत जनसंख्या के अधिकारी ब्राह्मणों का शतप्रतिशत कब्जा रहा। इसके कारण ही ब्राह्मण भूदेवता बन गये और उनके दस वर्ष के जाहिल-गंवार बच्चों तक को बड़े से बड़े गैर-ब्राह्मण नेता-विद्वान तक दण्डवत् करने को तत्पर रहे। इस शक्तिशाली स्रोत से पूरी तरह दूर रहने के कारण ही दलित, पिछड़े और महिलायें लगभग मनुष्येतर प्राणी में तब्दील हुईं। इस शक्तिशाली स्रोत के बंटवारे का पहली बार वैचारिक अभियान बीडीएम ने शुरू किया है। अगर पौरोहित्य में सामाजिक और लौगिक विविधता लागू होती तो जिन ब्राह्मणों का इसमें 100% आधिपत्य है वे 1½ प्रतिशत पर सिमटने के लिए बाध्य होंगे। इससे शर्तिया तौर पर ब्राह्मणशाही का खात्मा हो जायेगा।

करो या मरो के मनोभाव के साथ आगे आने की जरुरत

बहरहाल ऐसा नहीं कि भगाणा की हृदय विदारक घटना सामने आने के बाद ही डाइवर्सिटी केन्द्रित यह नया सुझाव दे रहा हूँ। ऐसा ही सुझाव मैंने 2012 में दिल्ली की निर्भया कांड पर लिखे गए तीनों लेखों में दिया था। पर स्व-वर्णवादी मीडिया और बुद्धिजीवियों ने ध्यान ही नहीं दिया। उनका ध्यान तो उस युवा मध्यम वर्ग पर गया जो निहायत ही लोकतंत्र विरोधी है। उस राष्ट्रद्रोही युवा वर्ग को निर्भया कांड में अपनी ताकत का एक्सपेरिमेंट करने के सिवाय कोई लक्ष्य ही नहीं था।

अधकचरा युवा वर्ग ही नहीं अध्याय 2 में छपे मुख्यधारा बुद्धिजीवियों के लेख पढ़ें, दंग रह जायेंगे कि इन्होने बलात्कार की समस्या की गहराई में गए बिना बस पन्ने रंग डाले। खैर अगर राष्ट्रहित को सर्वोपरि महत्त्व देने वाले पाठकों को लगता है कि भगाणा कांड ही नहीं देश की अन्यान्य दर्जन भर समस्यायों से निजात दिलाने में डाइवर्सिटी जैसा कोई प्रभावी सूत्र नहीं है तो डॉ. विजय कुमार त्रिशरण, बृजपाल भारती, श्रवण पासवान, डॉ. कमलेश, देश दीपक दुसाध इत्यादि की भांति अपने स्तर पर डाइवर्सिटी लागू करवाने के लिए कुछ करें। विशेषकर दलित समाज के लोगों को अगर लगता है कि इससे पुरे देश में फैले भगाणाओं में जारी अनवरत उत्पीड़न से समाज को निजात दिलाई जा सकती है तो युद्ध स्तर पर डाइवर्सिटी लागू करवाने के लिए कमर कास लें। याद रहे रहे सुविधासंपन्न तबकों के लिए यह विषमता बने रहने में फायदा है इसलिए वे इसे बरकरार रखने का प्रयास करेंगे, जैसा कि आजाद भारत में उन्होंने अबतक किया है। यह दलितों की विशेष जिम्मेवारी है कि इस विषमता के खात्मे में सर्वशक्ति लगायें।

मुझे यह कहने में संकोच नहीं कि आज के ज्वलंत समस्यायों के सोलहवें खण्ड का भी लक्ष्य अतीत के खण्डों की भांति एक समस्या विशेष को प्रभावशाली तरीके से राष्ट्र के समक्ष लाना है। किन्तु यह ज्वलंत समस्याएं सीरिज की पहली किताब है जो कुछ अतिरिक्त लक्ष्य लेकर इतनी जल्दी तैयार हुई है। पाठकों को यह जानकार सुखद आश्चर्य होगा कि यह किताब सिर्फ दस दिनों के मध्य ही आपके बीच पहुँच रही है। 3 मई को जब मैं पहली बार भगाणा पीड़ितों के बीच पहुंचा, भाई प्रमोद रंजन और जीतेंद्र यादव ने इस किताब की परिकल्पना मेरे समक्ष रखा और इससे जुड़ने का प्रस्ताव रखा। मैं इस से जुड़ने के लिये इस शर्त पर तैयार हो गया कि मेरे ऊपर सिर्फ सम्पादकीय लिखने का बोझ रहेगा। वे तैयार हो गए। इस पुस्तक की सारी परिकल्पना और सामग्री जुटाने काम इन्ही दो प्रतिभावान भाइयों का है। मैंने बस सब कुछ मिल जाने के बाद लेखों, रिपोर्टों को अपनी मर्जी सजाया और अब किताब की सम्पादकीय लिख रहा हूँ। अतः इस पुस्तक का सारा श्रेय हमारे सहयोगी संपादक जोड़ी को जाता है।

बहरहाल इस किताब को लाने का प्रधान उद्देश्य भगाणा पीड़ितों को आय का एक सम्मानजनक जरिया देना रहा। हमलोग की सोच थी कि निष्क्रिय रूप से धरने-प्रदर्शन बैठे भगाणा पीड़ित यह किताब लेकर दिल्ली की सडकों पर निकले तो लोग उनकी मदद के बहाने यह किताब अवश्य खरीद सकते हैं। इस तरह प्रयास करने पर दिन भर में एक भगाणा पीड़ित जरूर 5-7 किताबें बेच लेगा। लोग इनको राहत देने के किताब खरीदेंगे। इस तरह यदि धरने पर प्रयास करें तो रोजाना 300-400 कापी बेंचकर कुछ हजार की आय कर सकते हैं। इस तरह यह किताब जहाँ उनके सम्मानजनक आय का जरिया बनेगी वहीं मीडिया द्वारा उपेक्षित उनकी समस्या इस

किताब के जरिये धीरे-धीरे राष्ट्र की नजरो में आ जाएगी। इससे भगाणा की निर्भया को इंसाफ दिलाने की मुहिम में राष्ट्र को जोड़ने में सफलता मिल सकती है। इन सब बातों को ध्यान में रखकर हमने महज 10 दिनों में इस किताब को तैयार कर लिया। यदि पाठक भगाणा पीड़ितों की समस्या के प्रति संवेदनशील हैं तो इस किताब बीस-बीस, पच्चीस-पच्चीस प्रतियां खरीद कर उनको मदद कर सकते हैं। इस किताब को भगाणा पीड़ितों की आय का सम्मान माध्यम बनाने का संकल्प 'भगाणा संघर्ष समिति' से जुड़े तमाम संगठन ले लें, यह किताब भगाणा मुहिम में एक हथियार बन सकती है, ऐसा हम संपादक-त्रयी का मानना है।

अंत में इस किताब के मेरे संपादक साथी प्रमोद रंजन और जीतेंद्र यादव को अशेष धन्यवाद। अगर दिन-रात एक करके इस किताब को लाने का आपने अक्लांत प्रयास नहीं किया होता,शायद यह किताब नहीं आ पाती। विशेष आभार उन पत्र-पत्रिकाओं और लेखकों का जिनके लेखों और रिपोर्टों से यह पुस्तक समृद्ध हुई है।

और अंत में

हम आभारी ही नहीं ऋणी हैं उन पत्र-पत्रिकाओं जिनमें छपें लेखों और रिपोर्टों से यह पुस्तक समृद्ध हुई है। हम आभारी हैं अपने साथी संपादक बुद्ध शरण हंस का जिनके अथक प्रयास और परिकल्पना से ही यह पुस्तक पाठकों तक पहुँच पाई है। हम आभारी हैं इस पुस्तक में छपे लेखक बंधुओं का जिनके लेखों के बिना राष्ट्र विरोधो तत्वों को बेनकाब नहीं कर पाते। हम आभारी हैं डॉ. संजय पासवान, मा. छेदी पासवान, डॉ. विजय कुमार त्रिशरण, मा. दिलीप मंडल, मा. बृजपाल भारती, मा. सुधीन्द्र कुलकर्णी, मा. ललन कुमार, मा. अभिजित कुमार, डॉ. राजीव, डॉ. राज बहादुर मौर्य, मा. शीलबोधि, प्रो. वीरभारत तलवार, मा. सुरेश पंडित, प्रो. आईजे सिंह, मा. नागेन्द्र कुमार, डॉ. कौलेश्वर प्रियदर्शी, मा. निर्मल पासवान, मा. आशिक भागलपुरी, डॉ. सुदर्शन, इंजी. हरिकेश्वर राम, इंजी. हीरालाल, मा. वीके पाल, मा. अनिल कुमार आर्य का जिनके आर्थिक, नैतिक और बौद्धिक सहयोग से मिशन डाइवर्सिटी आगे बढ़ रहा है।

जय भीम-जय भारत

बुद्ध पूर्णिमा
(14 मई, 2014)

–एच एल दुसाध
राष्ट्रीय अध्यक्ष,
बहुजन डाइवर्सिटी मिशन

अध्याय–1

दलित उत्पीड़न का अनंत सिलसिला

दलित बनाम दबंग!

–राजेश कश्यप

हरियाणा में दलित उत्पीड़न की स्थिति बेहद गम्भीर हो चली है। स्थिति की गम्भीरता का अन्दाजा राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग द्वारा हाल ही में हरियाणा सरकार के मुख्य सचिव को भेजे गए उस पत्र से बड़ी सहजता से लगाया जा सकता है, जिसमें पिछले तीन वर्षों के दौरान दर्ज हुए दलित उत्पीड़न मामलों का पूरा ब्यौरा 10 दिन के अन्दर देने के निर्देश जारी किए गए हैं। आयोग ने पत्र के जरिये हरियाणा सरकार से वर्ष 2011-12 वर्ष 2012-13 और वर्ष 2013-14 के दौरान हत्या, बलात्कार, आगजनी, गम्भीर चोट व भारतीय दण्ड संहिता के तहत अन्य सभी मामलों का ब्यौरा स्पष्टतौर पर माँगा है। मुख्य सचिव आयोग को क्या ब्यौरा भेजेंगे, यह तो आने वाला समय ही बतायेगा, लेकिन हाल-फिलहाल हरियाणा प्रदेश में दलितों की स्थिति अत्यन्त दयनीय दिखाई दे रही है। जिस तरह से एक के बाद एक मामले संज्ञान में आ रहे हैं, उनसे दलितो में कथित तौर पर दबंगों का खौफ स्पष्ट नजर आ रहा है। इस समय हिसार जिले के गाँव भगाणा की चार दलित लड़कियों के साथ हुए गैंगरेप का मामला राष्ट्रीय सुर्खियों में छाया हुआ है।

गत 25 मार्च, 2014 को रात आठ बजे दबंग जाति के लोगों ने चार दलित परिवार की लड़कियों को घसीटकर कार में डाल लिया और दो दिन तक दर्जन भर युवक गैंगरेप करते रहे। प्राप्त जानकारी के अनुसार ये पीड़िताएँ उन दलित परिवारों की हैं, जिनका गाँव के दबंग लोगों ने वर्ष 2011 से जमीन विवाद के चलते सामाजिक बहिष्कार कर रखा है और न्यायालय, मानवाधिकार आयोग एवं अनसूचित जाति आयोग के निर्देशों के बावजूद इस बहिष्कार को समाप्त नहीं किया गया है। पीड़ित परिवार ने बहिष्कार के बावजूद गाँव नहीं छोड़ा तो गुस्से से भन्नाये दबंगों ने दलित परिवारों को सबक सिखाने के लिए उनकी चार बेटियों के साथ गैंगरेप को अंजाम दे डाला। मामले के संज्ञान में आने के बावजूद पुलिस ने दो दिन बाद विरोध को बढ़ते व मामले को गम्भीर होता देख 25 मार्च को एफआईआर दर्ज की।

पीड़ित दलित परिवार 21 मई, 2012 से न्याय पाने के लिए हिसार के लघु

सचिवालय में धरने पर बैठे हैं और इस समय दिल्ली के जन्तर-मन्तर पर गैंगरेप मामले के बचे हुए दोषियों की गिरफ्तारी और किसी दूसरी जगह पुनर्वास सुविधा के साथ-साथ आर्थिक सहायता देने को माँग भी कर रहे हैं। मामले में मात्र 5 दोषियों की गिरफ्तारी के अलावा अन्य कोई प्रगति अभी तक नहीं हुई है। इसी तथ्य से सहज अन्दाजा लगाया जा सकता है कि सरकार इस मामले के प्रति कितनी सजग और संवेदनशील है।

वर्ष 2010 में घटित हिसार जिले के मिर्चपुर गाँव का मामला भी आज तक नहीं सुलझ पाया है। इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय भी हरियाणा सरकार को खरी-खोटी सुना चुका है। लेकिन, हरियाणा सरकार की संवेदनहीनता टूटने का नाम ही नहीं ले रही है। दरअसल 21 अप्रैल, 2010 को मिर्चपुर में दलित परिवार के एक कुत्ते के भोंकने की सजा दबंग लोगों ने दलित बस्ती को आग में झोंककर दे डाली। इस आगजनी में 70 साल का दलित बुजुर्ग और एक 18 वर्षीय अपंग लड़की जिन्दा जल गए और मौत के इस नंगे नाच से सदमें में आए सौ से अधिक दलित परिवारों को गाँव छोड़ने के लिए विवश होना पड़ा। बेघर हुए इन लोगों को एक समाजसेवी वेदपाल तँवर ने हिसार स्थित अपने फार्म हाऊस में शरण दी और उनकी लड़ाई लड़ने का बीड़ा उठाया। कांग्रेस उपाध्यक्ष राहुल गाँधी हिसार में पीड़ितों से मिलने के लिए पहुँचे थे। इसके बावजूद पीड़ितों की न्याय के लिए आज भी जंग जारी है। गत 4 अप्रैल को हरियाणा सरकार ने सर्वोच्च न्यायालय में अपना जवाबदावा पेश करते हुए बताया कि मिर्चपुर पर 19 करोड़ रुपये खर्च किये जा चुके हैं, जिसमें सुरक्षा व्यवस्था के लिए सीआरपीएफ पर 11 करोड़ पुलिस पर 4 करोड़ और शेष राशि अन्य कार्यो पर खर्च की गई है। इसके साथ ही दावा किया गया कि पीड़ित परिवारों के 49 लोगों को सरकारी नोकरियाँ भी दी जा चुकी है। हरियाणा सरकार के इस जवाबदावे पर सर्वोच्च न्यायालय ने पीड़ित पक्ष से चार सप्ताह में अपना जवाब पेश करने के आदेश दिए हैं। इस बीच ह्यूमन राइट लॉ नेटवर्क के स्टेट कॉर्डिनेटर एडवोकेट कल्सन ने बताया है कि सरकारी नौकरी 49 को नहीं, बल्कि चन्द लोगों को ही मिली है। बाकी लोगों को कान्ट्रेक्ट पर लगाया था, जो कि अब हट चुके हैं।

हरियाणा में दलित उत्पीड़न के चन्द मामले नहीं हैं, बल्कि उनकी एक लम्बी फेहरिस्त है। गत वर्ष 25 अगस्त, 2013 को जीन्द जिले के गाँव बनिया खेड़ा की 19 वर्षीया बीएड दलित छात्रा का दुष्कर्म के बाद हत्या करके नहर के समीप झाड़ियों में फेंका गया शव मिला। जब पीड़ित पक्ष पुलिस की लापरवाही के खिलाफ सड़कों पर उतरा तो उन पर बड़ी बेरहमी से लाठीचार्ज किया गया। अप्रैल, 2013 में भिवानी जिले के रिवासा गाँव में नन्हीं बच्ची को दूध पीला रही दलित महिला के साथ दबंगों के सामूहिक बलात्कार करने की शर्मनाक घटना घटी। 29 मार्च, 2013 को हिसार जिले के गाँव ढ़ोबी में एक दलित युवा की हत्या करके पानी की टंकी के पास फेंक दिया गया। मार्च 2013 में ही रोहतक जिले के गाँव मदीना में दबंगों ने दलितों के मोहल्ले पर अचानक फायरिंग कर दी, जिसमें दो लोग मारे गए। लम्बी जद्दोजहद के बाद मामले को गम्भीरता से लिया गया। फरवरी, 2013 में हिसार जिले के सिरसाना गाँव में 13 साल की मासूम बच्ची के साथ कई दबंगों द्वारा सामूहिक बलात्कार जैसा घिनौना कुकर्म करने का मामला प्रकाश में आया। फरवरी, 2013 में भिवानी जिले के रत्तेरा गाँव में दबंगों ने एक दलित युवक की घुड़चढ़ी नहीं निकलने दी और खूब मारपीट की। जनवरी, 2013 में पलवल जिले में कथित तौर पर दबंगों की भीड़ ने दलितों पर भारी हमला बोला और पुलिस द्वारा इस मामले को ठण्डे बस्ते में डाल दिया गया।

3 नवम्बर, 2012 को हिसार के डाया (मांगाली) गाँव में एक दलित लड़की के साथ गैंगरेप किया गया और मामले में बलात्कार को दफा तक हटा दी गई। अक्टूबर, 2012 में जीन्द जिले के सच्चाखेड़ा गाँव में पाँच दबंगों ने एक दलित लड़की के साथ सामूहिक बलात्कार किया। यूपीए अध्यक्ष सोनिया गाँधी अपने संवेदना जताने पीड़िता के घर भी पहुँची थीं। बाद में सभी दोषियों को सजा न मिलने से आहत होकर पीड़िता ने आत्महत्या कर ली। सितम्बर 2012 में हिसार जिले के डबड़ा गाँव में दबंगों ने एक दलित लड़की को गैंगरेप का शिकार बनाया। घटना से आहत पीड़ित के पिता ने आत्महत्या कर ली। मई 2011 में हिसार जिले के भगाणा गाँव में दबंगों ने दलितों के मोहल्ले के आगे दीवार खींच दी और उनके हिस्से की ग्राम शामलात जमीन पर कब्जा कर लिया। जब दलितों ने इस अन्याय के खिलाफ आवाज उठाई तो उनका सामाजिक बहिष्कार कर दिया गया। बहिष्कार के बावजूद दलितों ने गाँव नहीं छोड़ा तो गत 23 मार्च, 2014 को उनकी चार लड़कियों को अगवा करके गैंगरेप को अंजाम दिया गया। फरवरी, 2011 में हिसार जिले के दौलतपुर गाँव में दबंगों ने एक युवा दलित के हाथ इसीलिए काट डाले, क्योंकि खेतों में काम करते समय उसने पेड़ के नीचे रखे मटके से पानी पी लिया था।

ये सब घटनाएँ तो सिर्फ बानगी भर हैं। यदि सभी मामलों की सूची तैयार की जाए तो एक लम्बी फेहरिसत तैयार हो जायेगी। सभी मामलों का यदि बारीकी से अवलोकन किया जाए तो हर किसी की रूह काँप उठती है। प्राप्त जानकारी के अनुसार वर्ष 2009 में अनुसूचित जाति के लोगों पर ज्यादती के 303 मामले दर्ज हुए थे। वर्ष 2010 में यह संख्या बढ़कर 380 हो गई। इसके अगले वर्ष 2011 में यह संख्या बढ़कर 408 हो गई, जिसमें से 60 मामले दलित महिलाओं के साथ बलात्कार के शामिल थे। इस तरह से वर्ष 2008 से वर्ष 2011 में यह संख्या बढ़कर 408 हो गई जिनमें से 60 मामले दलित महिलाओं के साथ बलात्कार के शामिल थे। इस तरह से वर्ष 2008 से वर्ष 2011 के दौरान दलित उत्पीड़न में 35 फीसदी बढ़ौतरी

दर्ज की गई। गत वर्ष 2013 में एक शोधकर्ता सरोजबाला ने अपने एक अध्ययन में पाया कि हरियाणा में दलित महिलाओं के साथ बलात्कार के मामले में 15 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई है।

हरियाणा में अक्टूबर, 2012 में चले बलात्कार के अनवरत सिलसिले से खफा होकर राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग के अध्यक्ष पी.एल. पूनिया ने हरियाणा को 'बलात्कार प्रदेश' की संज्ञा देने को विवश होना पड़ा था। गत वर्ष 17 अक्टूबर, 2013 को सर्वोच्च न्यायालय को मिर्चपुर के दलितों की सुनवाई के दौरान प्रदेश सरकार की संवेदनहीनता पर यह तल्ख टिप्पणी करने पर मजबूर होना पड़ा कि इन लोगों का एकमात्र दोष गरीब और ऊपर से दलित होना है। सर्वोच्च न्यायालय ने हरियाणा सरकार को फटकार लगाते हुए कहा कि क्या जाति विशेष को कानून हाथ में लेने व लोगों को मारने की पूरी छूट है? गतवर्ष 2013 में ही तत्कालीन केन्द्रीय मन्त्री कुमारी शैलजा ने दलितों पर बढ़ते अत्याचारों से आहत होकर यह कहने पर विवश होना पड़ा कि हरियाणा में दलित होना पाप है। इन्हीं सब तथ्यों की पुष्टि हरियाणा काँग्रेस के नवनियुक्त प्रदेशाध्यक्ष अशोक तँवर ने की है। उन्होंने मीडिया के साथ बातचीत में करते हुए कहा कि प्रदेश का दलित वर्ग खुद को असुरक्षित महसूस करता हे। दलितों की आवाज राज्य सरकार ने नहीं सुनीं, लेकिन अब काँग्रेस संगठन उनकी बात सुनेगा। इन सबके ठीक उलट प्रदेश की भूपेन्द्र सिंह हुड्डा सरकार दलितों पर अत्याचारों के बढ़ने के आरोपों को सिरे से नकार रही है और अन्य सभी दलों से अधिक दलित-हितैषी होने पर दावा कर रही है।

इस उत्पीड़न के सन्दर्भ में दलितों का मानना है कि दबंग जातियाँ अपनी पुरानी जमीन को खिसकते हुए नहीं देखना चाहती। उनको लगता है कि ये जातियाँ हमारी गुलामी करती थीं। आज इनका जीवन क्यों बदल रहा है? यही कुढ़न इनको दलितों पर अत्याचाार करने के लिए प्रोत्साहित करती हैं ऐसे में सबसे बड़ा सवाल यही है कि दलितों की इस सोच में कितना दम है? यदि दम है तो फिर यह संकीर्ण मानसिकता कब और कैसे बदलेगी? यदि नहीं तो दलित इस तरह के निष्कर्ष निकालने के लिए विवश क्यों हुए हैं?

(लेखक स्वतन्त्र पत्रकार एंव समीक्षक हैं। सम्पर्क : 09416629899)

यह गाँव मेरा भी है

(ऐसोसिएशन फॉर डैमोक्रैटिक राइट्स (एएफडीआर), पीपल्स यूनियन फॉर डैमोक्रैटिक राइट्स दिल्ली (पीयूडीआर) की साझा रपट, दिसम्बर 2012)

प्रस्तावना

23 मई 2012 को हरियाणा के हिसार जिले के भगाणा गाँव में 70 दलित परिवारों ने, मवेशियों समेत अपना गाँव छोड़ कर हिसार शहर में स्थित मिनी सचिवालय के बाहर अपना डेरा जमा लिया। समाचारों के मुताबिक वे अपने गाँव के जाटों द्वारा किये जा रहे उत्पीड़न और ज़मीन पर कब्ज़े का विरोध कर रहे थे। जाटों ने पानी के स्रोतों, गाँव की आम ज़मीन और मरे हुए जानवरों को गाड़ने के लिए उपलब्ध ज़मीन तक दलितों की पहुँच को रोक दिया था। दलितों ने प्रशासन के पास कई शिकायतें दर्ज कीं, जिसका कोई नतीजा नहीं निकला और उत्पीड़न की घटनाएँ बढ़ती गयीं। परिणामस्वरूप उन्हें इस प्रकार के ठोस कदम उठाने पड़े। मिनी सचिवालय के समक्ष आयोजित घरने के दौरान कई बैठकें हुईं लेकिन कोई नतीजा नहीं निकला। यहाँ तक कि दलितों की शिकायतों के आधार पर कोई एफ.आई.आर. (प्रथम सूचना रपट) भी दर्ज़ नहीं की गई। राज्य प्रशासन ने पहले समझौता कराने की कोशिश की और फिर आन्दोलनकारियों के खिलाफ कानूनों का इस्तेमाल किया। बात काफी आगे बढ़ गयी, जब 18 जून 2012 को 45 आन्दोलनकारियों को गिरफ्तार किया गया और उनमें से 6 पर देशद्रोह के आरोप लगाये गये (हालाँकि बाद में इन आरोपों को हटा लिया गया)।

दलितों के बहिष्कार के आरोप के बारे में जाटों का यह कहना था कि कुछ व्यक्तियों के बीच गलतफहमियाँ थी, जिन्हें गाँव के अन्दर ही दूर किया जा सकता था। उन्होंने यह भी कहा कि वे दलित 'भाइयों' के साथ स्नेहभाव से रहते थे।

एक ऐसे सन्दर्भ में, जहाँ हरियाणा जाति उत्पीड़न का पर्याय बन गया है, भगाणा में ऐसा क्या हुआ कि वह इतना महत्त्वपूर्ण बन गया? आमतौर पर होने वाली हिंसात्मक

और अमानवीय बर्बरता की घटनाओं से परे भगाणा में भेदभाव के अनेक व्यक्तिगत मामले और जाति उत्पीड़न की सैंकड़ों छोटी बड़ी घटनाएँ दलितों के बहिष्कार का प्रतिरूप है। ये घटनाएँ हरियाणा के दलितों के रोज़मर्रा के शोषण का हिस्सा है, जो कि हरियाणा में जाति व्यवस्था की वास्तविकता को स्थापित करती है। जिन्हें आज तक संसाधनों के गैर-बराबर स्वामित्व और नियंत्रण की वजह से चुनौती नहीं मिली है।

दिल्ली में धरना के रूप में भगाणा के दलितों का प्रदर्शन, उनके प्रतिरोध का उदाहरण था। यह प्रदर्शन न केवल नागरिकों के रूप में समान अधिकारो की दावेदारी का प्रतीक था, बल्कि इसके माध्यम से जाट प्रभुत्व और जनवादी अधिकारों को सुनिश्चित करने का दावा करने वाले राज्य को भी चुनौती दी गयी थी।

इस मामले में किसी प्रकार का हस्तक्षेप करने के लिए हमने तथ्यों को जानना और समझना ज़रूरी समझा। इसी सन्दर्भ में पैगल्स यूनियन फॉर डैमोक्रेटिक राइट्स (पीयूडीआर) दिल्ली और एसोसिएशन फॉर डैमोक्रैटिक राइट्स (एएफडीआर), पंजाब ने 21 जून 2012 को इस मामले की एक संयुक्त जाँच की। हमारे साथ हिसार के एक स्थनीय निवासी भी शामिल थे। हमारी टीम ने मिनी सचिवालय और पुलिस अधीक्षक के समक्ष धरना पर बैठे प्रदर्शनकारियों से मुलाकात की। हमने भगाणा गाँव का दौरा किया, जहाँ दलित और जाट समुदायों में पुरुषों व स्त्रियों और गाँव के सरपंच से बातचीत की। हमारी जांच रिपोर्ट इस प्रकार हैं :

सामाजिक-आर्थिक सम्बन्ध

हरियाना गाँव हिसार–1 मण्डल में स्थित है, जो पश्चिमी हरियाणा के हिसार जिले का हिस्सा है। सबसे नज़दीक शहर हान्सी है, जो 13 किलोमीटर दूर है। हिसार के मानकों के मुताबिक भगाणा एक मध्यम आकार का गाँव है। 2001 की जनगणना के मुताबिक वहाँ की ज़मीन का कुल क्षेत्र 1535 हेक्टेयर है, जिसमें 1329 हेक्टेयर सिंचित, 149 हेक्टेयर असिंचित ज़मीन हैं और 157 हेक्टेयर ज़मीन खेती के लिए उपलब्ध नहीं हैं।

स्थानीय स्रोतों के मुताबिक यह गाँव करीब 300 साल पुराना है। उत्तर भारत के अधिकाँश अन्य गाँवों की तरह भगाणा का विन्यास भी बदलते हुए सामाजिक सम्बन्धों और इतिहास की ओर संकेत करता है। अधिकाँश अनुसूचित जाति और पिछड़ी जाति के घर गाँव के बाहरी हिस्से में पड़ते हैं। जबकि जाटों के घर केन्द्र में स्थित है। परन्तु इस गाँव में दोनों समुदायों के घर उतने अलग अलग स्थित नहीं है जितना कि उत्तर भारत के अधिकाँश गाँवों में होते हैं। जबकि कई गलियाँ ऐसी हैं, जिनमें एक खास जाति के लोगों के ही घर है पर गाँव के कुछ हिस्से ऐसे भी हैं जहाँ विभिन्न जातियों के लोग रह रहे हैं।

गाँव के बीचो बीच दलितों के कम से कम तीन घर हैं जिनका पीछे का हिस्सा जाटों के घर से मिलता है। हालाँकि इन घरों के दरवाज़ें एक चौक में नही खुलते हैं। दलितों के घर चमार चौक के सामने हैं इनमें से एक घर नया बनाया गया था। उसी क्षेत्र में हमें दो चौपालें देखने को मिलीं—एक रविदास चौपाल, जहाँ दलित इकट्ठा होते हैं और दूसरी जाट चौपाल। एक दूसरी गली में जाटों और पिछड़ी जातियों के घर एक दूसरे के आमने सामने हैं ये सभी घर नए बने हुए थे, जिनसे यह पता चलता है कि गाँव के विस्तार के बाद यह नया हिस्सा अस्तित्व में आया है। गाँव के केन्द्र में बड़े व पुराने घर थे, जिनके दरवाजे अलंकृत और मेहराब नक्काशी किये हुए थे। वे उत्तराधिकार प्राप्त वैभव व शक्ति के सबूत थे। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि ये घर जटों के थे। इनके घर काफी बड़े-बड़े थे, लेकिन उनको हाल ही में नया रूप दिया गया था, जैसे कि अवकाश प्राप्त सरकारी अधिकारी और बड़े जाट भूस्वामी फूलचन्द का मकान। आम तौर पर जाटों के घर बड़े और पक्के हैं। कुछ दलितों के घर भी अच्छे हैं, उदाहरण स्वरूप एक दलित स्कूल शिक्षक का घर भी पक्का और बड़ा है। लेकिन ज़्यादातर दलितों के घर अर्ध-पक्के हैं।

भगाणा के निवासियों और गाँव के सामाजिक सम्बन्धों को नियन्त्रित करने वाले कारणों के बारे में जाँच दल द्वारा हासिल किए गए तथ्यों का विवरण आगे दिया गया है।

1. जनसंख्या और जाति विभाजन

1. हिसार हरियाणा की चौथी सर्वाधिक आबादी वाला जिला है, जिसकी जनसंख्या 15, 36, 417 है। हिसार की सम्पूर्ण आबादी में अनुसूचित जाति के लोगों की संख्या 21.99 प्रतिशत (लगभग 3.38.045) है, जो राज्य की सम्पूर्ण आबादी में अनुसूचित जातियों के औसत 19.1 प्रतिशत से अधिक है। हिसार में सबसे तीन बड़ी अनुसूचित जातियो के कुल लगभग 2.86, 855 लोग निवास करते हैं। (चमार 1, 56, 860 धानक 73, 850 और वाल्मीकि 54, 245।

2001 की जनगणना के मुताबिक भगाणा में 878 परिवार रहते थे। जिनकी कुल आबादी 4, 884 थी। इनमें से 1, 322 लोग अनुसूचित जातियों के थे, यानी गाँव की कुल आबादी के करीब 27 प्रतिशत। गाँव के सरपंच द्वारा दी गयी सूचना के मुताबिक आज 11 साल बाद इस गाँव में करीब 950 परिवार निवास कर रहे हैं और कुल जनसंख्या बढ़कर करीब 7, 000 (2001 की जनगणना के मुताबिक प्रति परिवार औसतन 6 लोग) की हो गयी है। सबसे बड़ा प्रतिशत जाटों का है। इसके बाद ऊँची जातियों में ब्राह्मणों और बनियों का नम्बर आता है और फिर कुछ पंजाबी परिवारों का। दलितों के बीच चमारों की संख्या सर्वाधिक है और इसके बाद धानकों का स्थान है। इस गाँव में खाटी, डोमा, वाल्मीकि और बैगा जैसी दलित

जातियाँ भी रहती हैं। पिछड़ी जातियों में चिम्बी, तेली, लोहार गोस्वामी और कुम्हार शामिल हैं, जिनमें सबसे बड़ा समूह कुम्हारों का है। सरपंच द्वारा दिये गये आँकड़ों के आधार पर ऐसा लगता है कि भगाणा ने जाटों और ऊँची जातियों की सम्मिलित जनसंख्या करीब 57 प्रतिशत है। जिसमें करीब 85 प्रतिशत जाट है। दलितों की आबादी गाँव की जनसंख्या का करीब 24 प्रतिशत हैं। बाकी पिछड़ी जाति के लोग हैं, जो गाँव की आबादी का करीब 5 प्रतिशत है।

2. ज़मीन और श्रम

भगाणा के सरपंच अनुसार गाँव की कुल ज़मीन करीब 4, 400 एकड़ है जिसमें खेती योग्य ज़मीन, ऐसी ज़मीन जिस पर खेती नहीं होती और आम बंजर जमीन शामिल है। इस ज़मीन में से 400 एकड़ जमीन पंचायत की हैं जिसमें 250 एकड़ शामलात ज़मीन शामिल है। शामलात ज़मीन (आगे के अनुच्छेद में पारिभाषित) में सार्वजनिक कामों के लिए इस्तेमाल होने वाली ज़मीन बेकार ज़मीन और जमीन के कुछ छोटे हिस्से जैसे कि रिहायशी इलाके शामिल हैं।

गाँव में सबसे बड़ी जोत 45 एकड़ की है और सबसे छोटी 15 एकड़ से भी कम की। .ज्यादातर परिवारों के पास 3-4 एकड़ ज़मीन है। सारे दलित और बहुत से पिछड़ी जातियों के परिवार भूमिहीन हैं। जाट अधिक बड़ी जोतों की मिलिकियत रखते हैं, पर उनमें भी वर्ग असमानता है। कुछ जाट ऐसे भी हैं जिनके पास 1-15 एकड़ से कम ज़मीन है और वे अपनी ज़मीन पर खेती के अलावा औरों की ज़मीन पर काम करते हैं।

भगाणा के.ज्यादातर दलित कृषि मजदूर है। वे जाटों और अन्य ऊँची जातियों के ज़मीनदारों के यहाँ मजदूरी करते हैं। फसल के बटवारे के तरीके हरियाणा में अलग-अलग जगहों पर भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं। हमें बताया गया कि यहाँ दलित और अन्य पिछड़ी जातियों के लोग पट्टे या बटाई पर ज़मीन लेते हैं। भगाणा में इस व्यवस्था में बटाईदार ज़मीन पर खेती करता है और ज़मीनदार को फसल का दो तिहाई भाग और बटाईदार को एक तिहाई भाग मिलता है। खेती की लागत—बीज, खाद आदि का खर्चा बटाईदार को उठाना पड़ता है। इसके लिए उन्हें अक्सर ज़मीनदार से ब्याज पर कर्ज लेना पड़ता है।

जिन दलित और पिछड़ी जातियों के लोगों से हम मिले उन्होंने हमें बताया कि भगाणा में ज्यादातर दलित सारी व्यवस्था में काम करते हैं। सीरी व्यवस्था में ऐतिहासिक और भौगोलक रूप से असमानाएँ रही हैं। भगाणा में यह बँधे श्रम का एक रूप है, जिसमें कृषि मजदूर एक साल के लिए किसी जमीनदार के साथ समझौता करता है। इस समझौते के तहत उसे एक बार में कुछ तयशुदा राशि दी जाती है।

जिसके एवज में उसे इस समय में इसी ज़मीनदार की ज़मीन पर बँधकर काम करना होता है और कई बार ज़मीनदार के लिए खेती के अलावा और काम भी करने पड़ते हैं। ये कृषि मजदूर आम तौर पर भूमिहीन दलित और अन्य पिछड़ी जातियों में से होते हैं और ज़मीनदार.ज्यादातर जाट या अन्य ऊँची जातियों जैसे कि राजपूतों में से होते हैं। भगाणा में इन बँधे हुए श्रमिकों को सालाना 20, 000 से 25, 000 रुपये दिए जाते हैं। उसे उत्पादन की लागत के लिए कुछ राशि का योगदान करना पड़ता है। जिसके बदले में उसे उत्पादन में से थोड़ा सा हिस्सा मिलता है।

सरपंच से हमें पता चला कि गाँव में जितनी ज़मीन उपलब्ध है उसमें से पंचायत की 85 एकड़ ज़मीन की हर साल खेती के लिए नीलामी की जाती है। इसमें से 40 एकड़ जमीन सिंचित है और 25 एकड़ असिंचित। वैसे तो इस नीलामी में सबसे .ज्यादा बोली लगाने वाले को ज़मीन दी जाती है पर सरकारी नीति के अनुसार प्रत्येक 10 वाँ या 12वाँ प्लॉट दलितों के लिए रखा जाता है। पर असल में होता यह है दलित दावेदार किसी जाट के लिए एक मुखौटे के रूप में काम करता है जो असल में जमीन हासिल करता है। मज़ेदार बात यह है कि सरपंच ने खुद यह जानकारी दी। जैसे कि यह एक स्वाभाविक आम प्रक्रिया हो जिसे पूर्ण स्वीकृति मिली हुई हो।

भूमिहीनता और जमींनदारों पर निर्भरता ने ज़मीनदारों और कृषि मज़दूरों के बीच संरक्षक और संरक्षित का सम्बन्ध बना दिया है जो कि जातिवाद का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है। परन्तु बहुत से दलितों और पिछड़ी जातियों के लोगों ने मौजूदा श्रम और फसल बँटाई की व्यवस्था को लेकर अपनी असन्तुष्टी और गुस्सा जाहिर किया। उन्होंने ज़मींनदारों द्वारा शोषण और इस व्यवस्था से पैदा होने वाली उनकी कर्ज़दारी की स्थिति की आलोचना की।

जिन दलित कृषि मज़दूरों से हम मिले, उन्होंने बताया कि उन्होंने दिहाड़ी में 250-300 रु. और खाना मिलता है। हरियाणा के डिपार्टमेन्ट ऑफ इकोनामिक्स और स्टेटेस्टिकल एनलिसिस द्वारा 2008-2009 में (हिसार फतेहाबाद सिरसा और भिवंडी) में किए गए एक अध्ययन के अनुसार उस समय पश्चिमी हरियाणा में औसतन दिहाड़ी 136 रु. और मध्य हरियाणा में सबसे अधिक 143 रु. थी। भगाणा में मौजूदा दिहाड़ी इसकी लगभग दुगनी है। हमें बताया गया कि इस बढ़ोतरी का कारण नरेगा का आना है।

सरपंच में दावा किया कि गाँव में नरेगा के तहत काम चलता है। इस योजना के तहत 3.7 लाख रु. आवंटित हो चुके हैं और गाँव को मिल चुके हैं। इस राशि का इस्तेमाल सड़क निर्माण, नहर खोदने और गहरी करने और तालाब आदि बनाने के लिए किया गया। मजदूरों की 190-192 रु. की दिहाड़ी दी गई। परन्तु दलित कुछ और ही कहानी बताते है। नरेगा के तहत काम 12-18 महीनों पहले ही खत्म हो गया था जिससे उनके लिए जीविका का एक वैकल्पिक साधन खत्म हो गया

और जाटों पर उनकी निर्भरता बढ़ गई। दलितों ने यह भी शिकायत की कि ज्यादातर काम मशीनों की मदद से किया गया और नरेगा के तहत आबंटित पैसा जाटों द्वारा अपने काम पर लगे हुए कृषि मजदूरों के रूप में बाँटा गया।

3. आम ज़मीन और अन्य संसाधनों तक पहुँच–

गाँव में 250 एकड़ शामलात ज़मीन है। इसमें से 220 एकड़ जमीन कृषि के योग्य नहीं है और पंचायत के पास है। जिसका इस्तेमाल पंचायत स्कूल, चिकित्सालय, कुएँ इत्यादि बनाने जैसे सामाजिक कामों के लिए कर सकती है। 70 एकड़ जमीन सभी गाँव वालों को कई तरह के कामों के लिए उपलब्ध है। जैसे कि हमने भगाणा के एक भाग में ऐसी जमीन पर गोबर के उपलों और इकट्ठी की गई जलावन की लकड़ी के ढेर पड़े देखे। इस जमीन का इस्तेमाल ईंधन इकट्ठा करने, मवेशियों को चराने और मरे हुए मवेशियों को किनारे पर दफनाने के लिए भी किया जाता है। गाँव के एक रिहायसी इलाके के साथ लगे शामलात ज़मीन के एक भाग पर कुछ आधे पक्के घर भी दिखाई दिए। ऐसा लगता है कि हरियाणा के गाँवों में बाद में आकर बसने वाले लोगों के लिए शामलात ज़मीन के बाहरी भागों पर घर बनाना एक आम प्रक्रिया है। परन्तु इस ज़मीन पर उनका कोई मालिकाना हक नहीं होता।

भगाणा या अन्य गाँवों में सारी शामलात ज़मीन एक साथ नहीं होती। इसके अलावा जैसे जैसे गाँव बढ़ता गया, घर बनते गए। गलियाँ बनती गई। शामलात ज़मीन के कुछ हिस्से इन घरों के बीच में आ गए। ऐसी ज़मीन के कारण घरों के बीच चौंक भी बने हुए हैं। उदाहरण के लिए चमार चौक जिसका इस्तेमाल त्योहारों और शादियों आदि के लिए मवेशियों और रथों को सजाने के लिए किया जाता है।

4. शिक्षा और वैकल्पिक व्यवसाय

हरियाणा में दलितों में साक्षरता के स्तर में तेजी से बढ़ोतरी हुई है। 2001 की जनगणना में 1991 की तुलना में साक्षरता की दर में 16.2 प्रतिशत की बढ़ोतरी दर्ज की गई। भगाणा में भी यही प्रवृति दिखाई दी है। अधिकतर दलित युवक साक्षर हैं और कुछ अंग्रेजी भी लिख लेते हैं। दलितों के बच्चों में शिक्षा के स्तर भी बढ़ा है। पिछले दस सालों में भगाणा में दलित स्नातकों की संख्या भी बढ़ी है।

2001 की जनगणना के अनुसार भगाणा में कुछ पाँच स्कूल थे जिनमें से तीन प्राथमिक स्कूल थे। हमें बताया गया कि आज यहाँ के दो सरकारी और तीन निजी स्कूल हैं। दलित और पिछड़ी जाति के बच्चे सरकारी स्कूलों में जाते हैं और जाटों के बच्चे निजी स्कूलों में। इन निजी स्कूलों में से निकल कर जाटपरिवारों के कुछ सदस्य बाहर शहरों में गए हैं और वहाँ उन्हें प्रशासन में नौकरियाँ मिली हैं या डॉक्टर या वकील बने हैं।

भगाणा में दलितों और पिछड़ी जातियों में साक्षरता और शिक्षा के स्तर में बढ़ोतरी से उनकी नई पीढ़ियों में भी खेती के अलावा अन्य व्यवसायों की ओर जाना शुरू कर दिया है। आरक्षण से भी इस प्रक्रिया को बल मिला है। भगाणा में करीब 3-4 दलित स्कूलों में शिक्षक हैं (जिनमें से एक से हम मिले थे) 2 सेना में 2 पुलिस में और 3 बैंक में काम करते है। गाँव के पिछले सरपंच दलित समुदाय में से थे, मौजूदा एक जाट है।

भगना में दलित युवाओं की इस बढ़ती हुई जागरूकता और उनके द्वारा परम्परागत व्यवसायों से हट कर एक व्यवसायों में जाने की आकाँक्षाओं में उन्हें ऊँची जातियों के प्रभुत्व से टकराव में आगे ला कर खड़ा कर दिया है। हाल में हुआ विरोध इसी प्रक्रिया का हिस्सा है।

विरोध की शुरुआत : प्रमुख मुद्दे

आखिर ऐसा क्या हुआ जिसने भगाणा के 70 दलित और पिछड़ी जातियों के परिवारों को अपने पशुओं और मवेशियों के साथ अपना गाँव छोड़ने के लिए मजबूर कर दिया? एक बृहद सन्दर्भ में देखने पर प्रभावी जाट समुदाय द्वारा सालों-साल से दलितों के दमन का चेहरा सामने आता है। इस सन्दर्भ में आखिर ऐसा क्या था जिसने दलितों द्वारा अपने इज्जत और बराबरी से जीने के अधिकार के लिए ज़ोर डालने को उकसाया? भगाणा में एक के बाद एक हुई घटनाएँ जिनके कारण लोगों को अपना गाँव छोड़ना पड़ा इस प्रकार है :

1. ज़मीनदारों के लिए ज़मीन : शामलात ज़मीन का गैरकानूनी ढंग से हड़पा जाना और वितरण

टकराव का प्रमुख कारण था शामलात ज़मीन का इस्तेमाल नियन्त्रण और मिल्कियत, जिसमें ऐसी ज़मीन भी शामिल थी, जो दलितों के सामाजिक जीवन का हिस्सा थी।

सन् 2008 में हरियाणा में महात्मा गाँधी बस्ती विकास योजना के शुरुआत में ही सरकार ने 70 एकड़ शामलात ज़मीन कब्ज़े में ले ली थी। यह ज़मीन किसी व्यक्ति विशेष की नहीं थी और पंचायत के अधीन थी। हालाँकि गाँव के सामाजिक सम्बन्धों के चलते इस ज़मीन का इस्तेमाल मुख्य रूप से जाट लोग ही करते थे। शामलात ज़मीन का कुछ हिस्सा परम्परागत रूप से गाँव के सभी लोग कई एक गैरकृषि कार्यों के लिए करते थे। इस ज़मीन पर कोई औपचारिक सीमाएँ नहीं बनी हुई है पर सालों-साल के इस्तेमाल से मोटा-मोटा बँटवारा हो रखा है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है दलितों और अन्य पिछड़ी जातियों के कुछ परिवारों के घर भी शामलात ज़मीन के किनारे पर बने हुए हैं।

हमें पता चला कि सन् 2011 में गाँव में ज़मीन के वितरण के लिए एक समिति बनी थी। समिति में 21 सदस्य थे जिसमें से 8 दलित और पिछड़ी जातियों में से थे। इस समिति का ग्राम पंचायत से कोई औपचारिक रिश्ता नहीं था, पर सभी बयानों से साफ है कि सरपंच ने इसे बनवाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। ग्राम पंचायत से इसके लिए स्वीकृति नहीं ली गई थीं पंचायत के एक जाट सदस्य के अनुसार उनमें से कई लोग समिति बनाए जाने के खिलाफ थे, पर वे विवश थे। इस गैर संवैधानिक समिति के प्रमुख एक समृद्ध जाट व्यति फूलचन्द थे, जिनका नाम दलितों ने अधिकारियों को की गई अपनी शिकायतों और याचिकाओं में दिया है। हमारा जाँच दल दस व्यक्ति से मिला था।

सरपंच और फूलचन्द के अनुसार उन्होंने औपचारिक रूप से ज़मीन के बँटवारे और मिल्कियत दिए जाने के बारे में सोचा ताकि परम्परागत इस्तेमाल के आधार पर बनी अस्थाई सीमाओं के कारण होने वाले रोज़-रोज़ के झगड़ों को रोका जा सके। सरपंच का दावा था कि इस तरह से वितरित होनेवाली शामलात ज़मीन का इस्तेमाल केवल जानवरों को चलाने, खिलाने-पिलाने, गोबर के उपले बनाने और ईंधन की लकड़ी इकट्ठा करने आदि के लिए होना था, और रहने या खेती के लिए नहीं होना चाहिए।

जाटों को अपनी पहले की ज़मीन की जोतों के आधार पर 100 वर्ग गज प्रति एकड़ के हिसाब से ज़मीन मिलनी थी। भूमिहीन दलितों और पिछड़ी जातियों के लोगो को 100 वर्ग गज ज़मीन मिलनी थी। जिसके लिए उनमे से हर एक से 1000 रुपये देने को कहा गया था। .ज्यादातर ने यह राशि जमा करवा दी। कुछ ने काफी मुश्किलों से। उन्होंने उस ज़मीन को जिसे वे परम्परागत रूप से इस्तेमाल करते थे, इस उम्मीद में आराम से छोड़ दिया कि उन्हें गाँव में कहीं और ज़मीन अबांटित की जाएगी। परन्तु जब समिति ने ज़मीन को चिन्हित करना शुरू किया तो दलितों को कोई ज़मीन नहीं दी गई। इसके विपरीत उन्होंने पाया कि उन्हें उस ज़मीन से भी बेदखल कर दिया गया है जिसे वे इस्तेमाल करते आ रहे थे और इस तरह से उन्हें ज़मीन के इस्तेमाल के पहले के अधिकार से भी वंचित कर दिया गया।

सरपंच और फूलचन्द ने हमें बताया कि प्लॉट इस तरह से काटे गए थे कि वे जाटों के पहले की ज़मीन के साथ-साथ हों। इस बात से जाटों की ज़मीन हड़पने की मंशा स्पष्ट हो जाती है। उन्होंने तर्क दिया कि वे कोई अन्याय नहीं कर रहे थे क्योंकि वे प्रत्येक दलित को भी 100 वर्ग गज जमीन दे रहे थे। फूलचन्द ने इस बात से इंकार किया कि दलितों से कोई पैसा लिया गया था। उनका कहना था कि दलितों ने शामलात ज़मीन में से उन्हें मिलने वाले प्लॉटों को साफ करने और समतल बनाने के लिए अपनी मर्ज़ी से पैसा इकट्ठा किया था।

सरपंच ने तर्क दिया कि समिति में दलित और पिछड़ी जातियों के सदस्य

भी थे, जो यह साबित करता है कि समिति पूरी तरह से समावेशी और निष्पक्ष थी। सरपंच ने कहा कि दलितों द्वारा उस समय खुशी-खुशी 100 वर्ग गज के पलॉट को लेना और आज उनके द्वारा शिकायत करना, उनके इरादों के प्रति शक पैदा करता है।

दलित मानते हैं कि वे ज़मीन की मिल्कियत हासिल कर पाने की सम्भावना से खुश थे और इसलिए उन्होंने आराम से इसके लिए पैसा दे दिया। उन्होंने यह भी बताया कि उन्होंने गलती से यह समझ लिया था कि यह सरकारी कार्यक्रम है। और उन्हें लगा था कि यह समिति ग्राम पंचायत की समिति है। समिति में दलित और पिछड़ी जातियों के सदस्यों के होने से उन्हें लगा कि समिति विश्वसनीय है।

दलित और पिछड़ी जातियों के लोग अब ज़मीन इस्तेमाल के अपने अधिकार को पुनः हासिल करने और अपराधियों के खिलाफ कार्यवाही के लिए संवैधानिक उपायों और सरकारी अधिकारियों की ओर देख रहे हैं। शिकायतें लिखने और भेजने का सिलसिला 2011 में शुरू हुआ। सबसे पहले—सरपंच, ब्लॉक डबलपमेंट बीडीओ) और डिस्ट्रिक्ट डवेलपमेंट ऑफीसर (डीडीओ) को लिखा गया। सरपंच ने खुले रूप में पक्षपातपूर्ण रवैया अपनाया—उसने शिकायत पर कोई भी कार्यवाही करने से मना कर दिया—यह स्वाभाविक ही था कि क्योंकि वह जो ज़मीन के वितरण में बराबरी का दोषी था।

बीडीओ और डीडीओ ने बार-बार शिकायत किए जाने के बाद गाँव का दौरा किया। कुमारी शैलजा को लिखे गए पत्र में दलितों ने लिखा था कि इन अफसरों ने उनकी शिकायतों को सही पाया था और आश्वासन दिया था कि दोषियों के खिलाफ मामले दर्ज होंगे और कार्यवाही होगी। परन्तु कोई भी कार्यवाही होती हुई दिखाई नहीं दे रही।

इसके बाद जनवरी 2012 से जिला आयुक्त को भी शिकायते भेजी गई। विरोध कर रहे लोगों के पास इन शिकायतों की प्राप्ती की प्रतियाँ भी है। वे शिकायतें फुटबॉल के मैदान, शामलात ज़मीन पर कब्ज़े समिति के गैरकानूनी होने और जाटों द्वारा उनसे धोखे से 1000-1000 रुपये हथियाने के सम्बन्ध में है।

इसके बाद दलित ग्रामीणों में अपनी माँगे बढ़ा दी और उन्होंने समिति के सदस्यों के खिलाफ अपराधिक मामले दर्ज करने की माँग की। मार्च 2012 से हिसार के पुलिस अधीक्षक को याचिकाएँ भेजी गई, जिनमें उन छह लोगों के नाम दिए गए जो कि समिति बनाने में शामिल थे, और इनके और अन्य लोगों के खिलाफ केस दर्ज़ करने की माँग की गई।

2. भूमिहीनों को ज़मीन : महात्मा गाँधी ग्रामण बस्ती योजना

शामलात ज़मीन के गैरकानूनी पुनः वितरण द्वारा दलितों के इस पर से अधिकार

को धोखे से छीनने के अलावा सरकारी नीति के तहत उनके कानूनी अधिकार से भी उन्हें वंचित किया गया। भूमिहीनों को ज़मीन दिए जाने की एक सरकारी योजना ग्राम पंचायत द्वारा असल में लागू की गई थी। हरियाणा सरकार ने 2008 में महात्मा गाँधी बस्ती योजना नामक एक योजना लागू की थी। इस योजना के तहत सभी बीपीएल अनुसूचित जातियों और एक श्रेणी की पिछड़ी जातियों के प्रत्येक परिवार को 100 वर्ग गज के प्लॉट रिहायश के लिए दिए जाने थे। भगाणा में ग्राम पंचायत में इसके लिए एक प्रस्ताव भी पारित कर लिया था। उस समय के सरपंच ने जो कि एक दलित थे इस योजना के क्रियान्वयन के लिए सक्रियता से काम करना शुरू कर दिया था। एक सर्वे हुआ था, जिसके बाद गाँव के पहचाने गए परिवारों को 222 प्लॉट वितरित किए जाने कर निर्णय हुआ था। इस उद्देश्य के लिए 70 एकड़ शामलात ज़मीन इस्तेमाल होनी थी।

परन्तु दलित सरपंच के हटने के बाद योजना का क्रियान्वयन बन्द हो गया। जबकि इसकी प्रक्रिया पहले ही शुरू हो चुकी थी। मौजूदा सरपंच ने, जो कि जाट हैं, इस बात से इंकार किया। स्थिति की असलितयत का पता इससे लगाया जा सकता है कि आज तक 222 में से केवल 48 प्लॉटों की रजिस्ट्री हुई है, उन पर भी कब्ज़ा नहीं दिया गया है। प्रमाण पत्रों (सर्टिफिकेट) को ध्यान से देखने पर हमने पाया कि रजिस्ट्रेशन मार्च 2012 में ही हआ है। इन प्लॉटों का रजिस्ट्रेशन और कब्ज़ा विरोध करने वालों की माँगों में से एक माँग है। यह साफ है कि जो रजिस्ट्रेशन हुए हैं, वे भी दलितों द्वारा पिछले कुछ महीनों में बार बार प्रशासन के पास शिकायतें करने से बनने वाले दबाव के कारण ही हुए हैं।

घटनाक्रम से पता चलता है कि सरकार द्वारा महात्मा गाँधी बस्ती विकास योजना के तहत वितरण के लिए शामलात ज़मीन लिए जाने और शामलात ज़मीन को गाँव वालों के बीच बाँटे जाने के बाद के फैसले के बीच एक सम्बन्ध है। जो कि यह बताता है कि बाद का फैसला जाटों द्वारा ऐसी योजनाओं के कारण बाकी की ज़मीन से हाथ धो बैठने के डर से लिया गया था।

3. ज़मीन और सामाजिक स्थल
(क) खेल का मैदान

शामलात ज़मीन के हथियाए जाने और वितरण से न केवल ज़िंदगी और जीविका के सवाल खड़े हुए, बल्कि इससे दलितों के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन और गाँव के निवासियों के रूप में उनके दावे पर भी असर पड़ा। ज़मीन का एक हिस्सा, जिसे दलितों के बच्चों ने अपने खेल के मैदान के रूप मे विकसित किया था। इस वितरण की बली चढ़ गया। ऊँची जातियों के बच्चे स्कूल के खेल के मैदान पर दलितों के बच्चों को नहीं खेलने देते थे। इसलिए दलित बच्चों ने पहल करके और

गाँव के दलित परिवारों ने चन्दा-इकट्ठा करके इस खेल के मैदान की सीमाओं पर पेड़ लागए थे। गाँव एक दलित व्यक्ति के अनुसार पिछले सरपंच ने भी इसमें योगदान दिया था। दलितों की शिकायत में कहा गया है कि जाटों ने चारदीवारी तोड़ दी और उनके बच्चे के मैदान में खेलने पर रोक लगा दी। जाटों ने मैदान, पर लगे पेड़ भी काट दिए और लकड़ी बेच दी।

दलितों ने इसकी शिकायत विभिन्न सरकारी अधिकारियों से की—उन्होंने सरपंच से शुरू करके बीडीओ, डीडीओ से लेकर एडीसी तक को लिखा। उन्होंने वन विभाग में भी शिकायत की। असल में सबसे पहली शिकायत तो खेल के मैदान के छीने जाने के सम्बन्ध में ही थी। दलित और पिछड़ी जातियों द्वारा हस्तक्षरित एक पत्र भी शिकायत के रूप में भेजा गया।

(ख) अम्बेडकर गाँव बनाम जाटों की इज्जत

आखिर में मामला चमार चौक नामक ज़मीन के एक तिकोने हिस्से को लेकर हुआ, जो कि दलितों के रविदास चौपाल के पास स्थित है। चमार चौक दलितों के घरों के सामने है। परन्तु इसके पीछे के खण्ड में और चौक से होकर जाने वाली सड़क के दूसरी ओर जाटों के घर हैं। पिछले कई सालों से भी .ज्यादा के समय से इस चमार चौक का इस्तेमाल दलित परिवारों द्वारा किया जा रहा था। तीन दलित परिवार जिनके घर इस चौक में खुलते हैं, इसका इस्तेमाल अपने ठेले खड़े करने, मवेशियों को बाँधने और अपनी चौपाल शादियों और अन्य समारोहों और त्यौहारों के लिए करते थे। पिछले कुछ समय से जाट, इन दलित निवासियों को चौक के इस्तेमाल को लेकर कोस रहे थे और धमकियाँ दे रहे थे कि वे उन्हें इस ज़मीन से बाहर फेंक देंगे। इस तरह से वे यह दावा कर रहे थे कि यह ज़मीन जाटों की है। दलितों ने सरपंच के पास शिकायत की थी, पर उसने इस पर कोई कार्यवाही करने से मना कर दिया।

दलितों ने तय किया कि वे इस चौक पर अपना दावा करेंगे और उन्होंने इसका नाम बदल कर अंबेडकर चौक रख दिया। यह उनके द्वारा अपने दावे पर ज़ोर देने का तरीका था, इसके लिए उन्होंने 2000 में भगाणा में बनी अंबेडकर वैलफेयर समिति के तहत बीडीओ के दफ्तर में आवेदन दिया और अन्य अधिकारयों के पास भी अपनी याचिका दायर की। जाटों ने इसका विरोध करने के लिए इस ज़मीन पर अपने हक का दावा करते हुए एसडीएम की अदालत में याचिका दायर की। कोर्ट ने जाटों के दावे को इस आधार पर मान लिया की चौक एक अत्रा-पत्रा चौक है—यानी कि दो क्षेत्रो के बीच पड़ता है—यानी कि अन्ना-पन्ना, जिस पर दो अलग अलग समुदाय, जाट और दलित रहते हैं। कोर्ट ने ज़मीन को देखभाल के लिए पंचायत को सौंप दिया। जाटों ने इसका अर्थ यह लगाया मानो ज़मीन का अधिकार उन्हें

मिल गया हो। उन्होंने इसे घेरने के लिए दीवार बना दी, जिससे उन तीन दलित परिवारों के लिए अपने घर तक पहुँचने का रास्ता एक तरफ से बन्द हो गया। जब दलित परिवारों ने इसका विरोध करते हुए डिस्ट्रिक्ट कमिशनर को लिखा तो बीडीओ गाँव में आए और उन्होंने यह आदेश दिया कि इस दीवार को तोड़ा जाए। दीवार का कुछ हिस्सा तोड़ा तो ज़रूर गया पर जाटों ने उसे उसी रात फिर से बना दिया। जब हम भगाणा गए तो हमने देखा कि दीवार फिर से बनी हुई है, और यह साफ पता चल रहा था कि इसके कुछ हिस्से पहले तोड़ दिए गए थे। एक जाट ने, जिसका घर तीन दलितों के घर के साथ लगा हुआ है, हमसे कहा कि ज़मीन अब कानूनी रूप से उसकी है और जाटों ने जो दीवार बनाई है वह बिल्कुल सही है क्योंकि कोर्ट ने उनके हक में फैसला दिया है। उसने कहा कि जिन दलित परिवारों ने चौक के पास घर बनाए हैं असल में वे अतिक्रमण किए हुए हैं और यह तो उसकी उदारता है कि उसने अपनी ज़मीन पर दलित परिवारों को अपने घर बनाने दिए थे। अगर माँगते तो और भी दे देते। पर वे तो कोर्ट पहुँच गए। इस मुद्दे के बारे में दलितों ने कई एक अधिकारियों को लिखा—जिन्हें अनुसूचित जाति/जन जाति आयोग, मुख्यमन्त्री सामाजिक कल्याण मन्त्री शामिल है। उन्हें थोड़ी सी सफलता ज़रूर मिली जबकि जाटों द्वारा बनाई गई दीवार कम से कम अस्थाई रूप से तो तोड़ी गई।

जहाँ एक और दलित संवैधानिक तरीकों से विरोध कर रहे हैं वहीं जाट गैरकानूनी ढंग से अपनी ताकत का इस्तेमाल करके अपने ऐतिहासिक प्रभुत्व और सत्ता को दर्शाने की कोशिश कर रहे हैं।

इस सन्दर्भ में जिस तरह से शामलात ज़मीन के वितरण के लिए एक छदम संवैधानिक समिति बना दी गई। जिसमें दलित और पिछड़ी जातियों के लोग भी रखे गए, उस पर ध्यान दिया जाना ज़रूरी है। समिति ने जिस तरह से काम किया, उसमें उसने संवैधानिक रूप से दलितों को उनका अधिकार दिलाने वाली समिति की नकल की पर किया लेकिन असल में उससे बिल्कुल उल्टा—उसने दलितों और पिछड़े वर्ग के लोगों को उनके अधिकारों से वंचित कर दिया।

इस सबके बाद गाँव के जाओं ने दलितों का बहिष्कार करने का निर्णय कर लिया।

बहिष्कार और पलायन : प्रतिरोध, दावेदारी और विवाद

जाट समुदाय हमेशा से ही हरियाणा में सबसे बड़ा समुदाय रहा है। राजनैतिक सामाजिक और आर्थिक रूप से भी ये सबसे अधिक शक्तिशाली है। हरियाणा में ज्यादातर अनुसूचित जातियों के लोग (78 प्रतिशत) गाँवों में रहते हैं। अनुसूचित जातियों में से चमार जाति का प्रतिशत 82.6 है। इसके अलावा 78.5 प्रतिशत धानुक और 73. 1 वाल्मीकि गाँवों में रहते हैं। क्योंकि हरियाणा में ज्यादातर दलित और पिछड़ी जाति

के लोग कृषक है और साथ ही भूमिहीन भी, इसीलिए उनकी जाटों पर बहुत ज्यादा आर्थिक निर्भरता भी हे। ऐसे में जाट जमींदार आज गाँव की अर्थव्यवस्था में सबसे बड़े गैर-सरकारी नियोक्ता बने हुए हैं।

जाटों का प्रभुत्व परम्परागत रूप से खाद्य पंचायती जैसी सामुदायिक सस्थानों द्वारा सुनिश्चित किया गया है। आज भी संवैधानिक तौर पर गठित ग्राम पंचायतें, खाद्य पंचायतों की जगह नहीं ले पायी है।

खाद्य पंचायतें जो कि सामाजिक जीवन के बारे में निर्देश जारी करती रहती है, ज्यादातर जाटों द्वारा ही संचालित है और उन्हीं के वर्चस्व को बढ़ाने में सहयोग भी करती आई है। वहीं ढाचें यह भी तय कर चुके हैं कि अगर प्रतिरोध होगा भी तो किसके द्वारा और कब तक।

एक गैर कानूनी समिति द्वारा जमीन का आवंटन करना न केवल जाटों के प्रभुत्व को बनाए रखता है पर साथ ही उसको और मजबूर भी करता है। जाटों द्वारा खुद को शामलात जमीन का हक प्रदान करना और साथ ही दलितों को उस जमीन के प्रयोग से वंचित करना यह दर्शाता है कि उनका गाँव की मशीनरी पर कितना नियन्त्रण है।

खेल मैदान और चौक पर हुआ झगड़ा एक प्रकार से जाटों द्वारा यह जतलाने की कोशिश थी कि दलित गाँव में एक समान भागीदारी नहीं रख सकते और वे कभी भी जाटों कि उदारता के बिना अपना जीवन नहीं बिता सकते। और इस इतिहास के सन्दर्भ में दलितों द्वारा गाँव के स्थानों पर दावा करने, सार्वजनिक रूप से चौक को अम्बेडकर चौक नाम देने, ग्राम पंचायत के मनमानी का विरोध करने के लिए सरकारी तरीके चुनने, और इस जमीन वितरण के फरेब में जाटों का साथ न देने पर जाट समुदाय स्वयं को असुरक्षित और संकट में पाने लगा। ऐसे में जाटों ने एक आक्रमक और प्रतिरोधी कदम उठाया—दलितों का सामाजिक और आर्थिक बहिष्कार या बँधी—यह एक प्रकार से अपनी जाति के प्रभुत्व की पुनः दावेदारी थी।

1. बहिष्कार

हिसार सचिवालय के सामने विरोध में बैठी महिलाओं के समूह में हमें बताया कि आखिर इस बार के जाति उत्पीड़न में ऐसा क्या था जिसके कारण उन्हें गाँव छोड़ने पर मजबूर होना पड़ा। पिछले चार महीनों से दलित अपने ही गाँव में सामाजिक बहिष्कार यानी बँधी का सामना कर रहे थे। जाटों ने दबंगियों की एक सभा बुलाई जहाँ यह फैसला लिया गया। एक चेतावनी भी जारी की गई कि अगर किसी ने इस बहिष्कार का उल्लंघन किया तो उस पर 2000 रुपयों का जुर्माना लगाया जाएगा। दलित और पिछड़ी जाति के लोगों को खेतों में काम देना बन्द कर दिया गया। महिलाओं ने बताया कि किस प्रकार उन पर न सिर्फ आर्थिक रूप से बल्कि सामाजिक और

मानसिक रूप से भी आक्रमण किये जाते थे। दलितों को 'डेढ़' कहकर सम्बोधित किया जाता था। जिन नलों से दलित पानी भरते थे, उन्हें जाटों द्वारा तोड़ दिया गया। दलितों के घूमने फिरने पर भी पाबन्दी लगा दी गयी और तो और शौच के लिए भी बाहर निकलना दुर्भर हो गया था। ग्राम पंचायत की जमीन जो पहले दलितों द्वारा गोबर डालने और जानवर दफनाने के लिए प्रयोग की जाती थी। अब उन्हें उपलब्ध नहीं थी। गाँव में आने वाली एकमात्र महिला चिकित्सक जो कि जाट समुदाय से ही है। अब अनुसूचित और पिछड़ी जातियों के लोगों का इलाज करने से मना करने लगी थी और अगर इलाज करती भी थी। तो बहुत ज्यादा फीस की माँग करने लगी थीं जाटों ने दलितों को सामान बेचना भी बन्द कर दिया था और उनके लिए सार्वजनिक परिवहन में आना-जाना भी वर्जित कर दिया था। एक जाट महिला पंचायत सदस्य ने इस बात की पुष्टि की कि किस तरह जाटों ने दलितों का गाँव में रहना असम्भव कर दिया था।

हमें यह भी पता चला कि दलितों ने इस सब के बारे में प्रशासन को भी लिखा था अपनी शिकायत में उन्होंने लिखा था कि किस प्रकार जाटों में उनके घरों में घुसकर महिलाओं को धमकाया और कहा कि जिस जमीन पर उनका घर खड़ा है वह जाटों की है और वे कभी भी दलितों को वहाँ से उठाकर फेंक सकते हैं। साथ ही एक दलित युवा की जाटों द्वारा बुरी तरह पिटाई के बारे में भी लिख गया था। एक दलित युवक को प्रताड़ित करके उसका गला दबाकर मारने की भी कोशिश के बारे में भी एक शिकायत की गई। इस युवक को जान से मारने की धमकी दी गई थी और कहा गया था हिसार ही में मिर्चपुर में हुए नरसंहार में दलितों के हश्र को याद रखे। डर के मारे वह युवक वहाँ से भाग निकला था। हमारे दल में युवक का मेडिकल प्रमाण पत्र भी देखा जिसमें उसके गले और हाथ पैरों पर खरोंचों के निशान और गाल पर सूजन दर्ज थी।

इस बहिष्कार का एक सुस्पष्ट आर्थिक पहलू भी है। जिला आयुक्त को लिखे गए एक पत्र में बताया गया है कि जाटों द्वारा दलितों को अब काम देना भी रोक दिया गया है। साथ ही मनरेगा के रुकने से परेशानियाँ बढ़ गयी थीं। उनके सिर पर दाल-रोटी का संकट आ गया था।

2. दलितों की प्रतिक्रिया और उलट दावेदारी बहिर्गमन और प्रतिरोध

जब 70 परिवारों में एक साथ भगाणा गाँव छोड़ दिया, तब और लोगों में यह धारणा फैलने लगी की दलितों ने जाटों द्वारा दी जा रही प्रताड़ना को रोकने में असमर्थ होने और डर के कारण ऐसा किया था। मीडिया द्वारा भी ऐसा दर्शाया गया कि दलितों को जाति के नाम पर हो रहे जुल्मों अपमान द्वारा जबरदस्ती गाँव से निकाला गया हो।

पर मीडिया द्वारा ऐसा किया जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। बहिष्कार और उसके बाद हुई घटनाएँ, सामाजिक और सांस्कृतिक हिंसा का ही प्रतिरूप है जो आज भी अपराध और सजा के नाम पर हरियाणा के गाँवों में आम बात है। जैसे एक जाट के आँगन में रखे मटके से दलित को पानी न पीने देना, दलित दुल्हे को घोड़े पर बैठने न देना, और ये बातें न मानने पर सजा देना जैसे जुर्माना चप्पलों से पिटाई करना, हाथ काट देना (बाक्स 4 देखें) आदि काफी आम है। पिछले कुछ समय में कई ऐसी घटनाएँ हुई जिनके कारण दलितों और पिछड़ी जातियों को सपरिवार अपने गाँव छोड़ने पड़े। इनमें से मिर्चपुर में हुई आगजनी और हत्याएँ और गोहाना कांड सबसे ज्यादा चर्चा में रहे। इस सब के चलते भगाणा से दलितों का अपना गाँव छोड़कर जाना, इसी प्रक्रिया का एक परिणाम लगना स्वाभाविक था—यानी कि जाटों द्वारा की गई सामाजिक हिंसा पर दलितों का जवाब। इसीलिये भगाणा से दलितों के बहिर्गमन में कोई खास बात नहीं दिखाई दी। समानताओं के बावजूद भी भागणा के किस्से में कुछ बातें अलग हैं।

इन दलित परिवारों में गाँव जातिगत शोषण के चलते नहीं छोड़ा था। ये वे परिवार थे जो भगाणा से हिसार के मिनी सचिवालय तक पदयात्रा करके आए थे और मई माह से वहाँ डेरा लगाकर बैठे थे। इन्होंने दो बार जुलूस भी निकाला, प्रशासन से अपने हकों की माँग की, और दो बार अपने लोगों को गिरफ्तार होते देखकर भी अपने सवालों के जबाबों की माँग करते रहे। वे अब अपने गाँव, जमीन और सुविधाओं पर खुद के नियन्त्रण की जायज माँग को लेकर देश की राजधानी दिल्ली तक भी पहुँचे।

यह समझना आवश्यक है कि विरोध कि प्रक्रिया बहिष्कार और सचिवालय पर हुए धरना से बहुत पहले ही शुरू हो गयी थी। 2011 के अन्त में दलितों और पिछड़ी जाति के लोगों द्वारा प्रशासन को कई पत्र लिखे गए थे। उनमें भी वही माँगें की गई थी। बहिष्कार का विरोध तो अपने अधिकारों के लिए संघर्ष में एक नई कड़ी थी। यह धरना अनगिनत संवैधानिक विरोध प्रदर्शनों का एक अवश्यसंभावी परिणाम था।

मिनी सचिवालय के बाहर धरना 20 मई 2012 को शुरू हुआ था। जब हम भगाणा गाँव गए थे तब हमें सचिवालय के बाहर 150 से 200 लोग धरने पर बैठे हुए मिले थे। कुछ और लोग अपने बच्चों समेत भी पास ही एक पेड़ के नीचे बैठे थे। उनके कुछ पशु भी वहाँ बँधे थे। हमें बताया गया कि उनके बाकी पशुओं को जब्त करके एक सरकारी गौशाला में ले जाया जा चुका था।

धरने पर बैठे लोगों ने बताया कि कुछ परिवार दबाव में आकर गाँव वापस लौट गए थे और कुछ एक नयी शुरुआत करने के लिए दूसरे गाँव में अपने रिश्तेदारों के यहाँ चले गए थे। कुछ लोग जब भी सम्भव होता, भगाणा या अपने रिश्तेदारों

के गाँवों से सचिवालय तक संघर्ष में अपना सहयोग देने के लिए आते-जाते रहते थे। कुछ के लिए अधिक मजबूरियों के कारण लगातार वहाँ रहना मुश्किल हो गया था।

विरोध का समर्थन कर रहे कई स्थानीय नेताओं समेत 46 प्रदर्शनकारियों के खिलफ केस भी दर्ज किए गए हैं। एक जुलूस में मुख्यमन्त्री का पुतला जलाने पर उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया था। 18 मई को 20 और विरोधियों को तब गिरफ्तार कर लिया गया जब वे भगाणा के एक दलित युवक राजकुमार की संदिग्ध हालातें में हुई मृत्यु और पुलिस की निष्क्रियता के खिलाफ जलूस निकाल रहे थे।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है स्थानीय प्रशासन और राज्य सरकार की तरफ से कोई भी कार्यवाही न होने पर भगाणा के दलित राजधानी पहुँच गए। वे एक महीने जन्तर मन्तर पर धरने पर बैठे रहे। ये राहुल गाँधी से भी मिले जिन्होंने काँग्रेस पार्टी द्वारा जाँच कराने का वादा भी किया। दलितों ने गृह मन्त्रालय को ज्ञापन दिया। वे विपक्षी दल के नेता शरद यादव से मिले और उन्होंने अनुसूचित जाति—अनुसूचित जनजाति (एस.सी.—एस.टी.) आयोग को अर्जी भी लिखी। संक्षेप में उन्होंने हर सरकारी और राजनैतिक दरवाजे पर दस्तक दी साथ ही मिनी-सचिवालय के बाहर धरना भी जारी रखा। बाद में वे हरियाणा सरकार के इस आश्वासन पर वापस लौट गए कि समस्या का कोई समाधान निकाला जाएगा।

गिरफ्तारियों द्वारा पुलिस प्रताड़ना पशुओं के जब्त किए जाने, राजद्रोह के आरोप लगने, प्रशासन द्वारा उनकी शिकायतों पर कोई कार्यवाही न किए जाने और बहुत मुश्किल और चुनौती पूर्ण हालातों में अपने घरो से दूर रहने के बावजूद दलितों और पिछड़ी जातियों ने अपना विरोध जारी रखा।

यह नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता कि इस पूरे विरोध को शुरू करने और जारी रखने में स्थानीय बसपा के नेताओं की भूमिका अहम रही है। भगाणा के ही एक निवासी वीरेन्द्र भागोरिया नामक एक व्यक्ति की भूमिका की अहम रही है। वीरेन्द्र भगौरिया एक स्थानीय विधायक के करीबी भी माने जाते हैं सरकार, नेताओं और प्रशासन के साथ हुई बातचीत में वे शुरुआत से ही जुड़े रहे हैं। प्रशासन ने यह कहकर विरोध को बेबुनियाद बतलाने की कोशिश की कि इसमें बसपा का हाथ है। जो राजनैतिक फायदों के लिए यह सब कर रही है। हालाँकि जाँच दल में बसपा की भागीदारी देखी पर जैसा कि विवाद के मुद्दे दर्शाते हैं, जाटों के दमन के जवाब में जातिवादी दावेदारी इस विरोध से पहले भी होती रही है वोट की राजनीति राजनैतिक पार्टियों को एक मुद्दों की तरफ आकर्षित तो करती है पर इस तरह का निरन्तर विरोध जनता की इच्छा और भागीदारी के बिना टिक ही नहीं सकता।

बॉक्स 2 हरियाणा में जातिगत टकराव की हाल की कुछ घटनाएँ

तारीख	जगह	घटना	परिणाम	राज्य की प्रतिक्रिया
अगस्त 2005	गोहाना, सोनीपत	1000 जाट उपद्रवियों द्वारा एक जाट युवक की दो दलितों द्वारा तथाकथित हत्या लेने के लिए 50 घर लूटे और जलाए गए।	बहुत सारे दलित (वाल्मिकी) गाँव छोड़ कर भाग गए।	पुलिस के, कुछ न करने से, जाटों को फायदा पहुँचा और जिन 23 व्यक्तियों के खिलाफ चार्ज शीट दर्ज हुई थी उनमें से केवल 4 गिरफ्तार हुए। मुख्यमन्त्री का बेटा जाट युवक के दाह संस्कार में शामिल हुआ।
मार्च 2010	गाँव लधानी, भिवानी	गाँव में घुसने को लेकर दलितों और ऊँची जातियों के लोगों के बीच हिंसात्मक झडप। एक राजपूत युवक मारा गया।	150 दलित परिवार खाप के बदले के डर से गाँव छोड़ कर भाग गए।	20 दलितों के खिलाफ मामले दर्ज।
अप्रैल 2010	गाँव मिर्चपुर हिसार	एक दलित लड़कों द्वारा उसके कुत्ते पर पत्थर फेंके जाने का विरोध करने के बाद भड़की हिंसा में जाट युवकों द्वारा एक घर में आग लगा देने से एक बूढ़े दलित व्यक्ति और उनकी बेटी की मौत हो गई।	घटना के बाद 125 दलित परिवार गाँव छोड़ कर भाग गए। जनवरी 2011 में 11 खाप पंचायतों द्वारा गिरफ्तार किए गए लोगों को छुड़वाने के लिए ट्रैफिक रोका गया।	अक्टूबर 2011 में 15 जाटों को सजा हुई 3 को आजीवन कारावास की सजा हुई। दलितों को विशेष कैंपों में रखा गया था। वे दिसम्बर 2011 में भी वहीं थे।
मार्च 2011	गाँव बाटोर पंचकुला	ग्राम पंचायत द्वारा 400 एकड़ जमीन से हासिल किए गए 15 लाख के राजस्व के गलत इस्तेमाल का विरोध कर रहे दलितों पर ऊँची जातियों के लोगों द्वारा अत्याचार।	जो दलित इस विरोध में शामिल थे उन्हें अत्याचारों के चलते गाँव छोड़ना पड़ा।	एफआईआर दर्ज हुई पर कोई कार्यवाही नहीं हुई।
जून 2012	गाँव पूथी, हिसार	26 वर्षीय दलित मनोज को पंचायत ने 11 साल के लिए गाँव से निर्वासित कर दिया। उस पर 21.000 रु. का जुर्माना लगाया गया और उसका चेहरा काला कर दिया गया। उसका गुनाह केवल यह था कि उसने गाँव की एक लड़की से प्यार हो गया था।	मनोज गाँव छोड़ चुका है पर परिवार वहीं है। उन्हें हिंसा का डर है और वे पुलिस में शिकायत भी दर्ज करवा चुके हैं।	पुलिस ने 15 लोगों के खिलाफ एफआईआर दर्ज की। मनोज को पुलिस का संरक्षण दिया गया है। और गाँव में पुलिस गश्त लगा

3. सामाजिक प्रतिक्रिया

हमारे साथ गए कार्यकर्त्ताओं ने हमें बताया कि स्थानीय लोग और समूह खुल कर प्रदर्शनकारियों का समर्थन नहीं कर रहे थे। जातिवाद और जाटों का प्रभाव दोनों इतने गहरे हो चुके हैं कि लोग इस मुद्दे से मुँह मोड़ने लगे हैं। शहरी क्षेत्रों में लोग खाप पंचायतों से उतना नहीं डरते जितना कि वे सरकार और प्रशासन में ऊँचे पदों पर आसीन होने के कारण जाटों के बढ़ते वर्चस्व और उनके राजनैतिक रुतवे से डरने लगे हैं।

हालाँकि प्रशासन और समाज में कोई भी प्रतिक्रिया जाहिर नहीं की, पर हमें यह पता चला की 7 लोगों की एक सर्व-जातीय पंचायत ने आगे बढ़कर इस मुद्दे का समाधान करने की कोशिश की थीं उन्होंने प्रयास किया था की दलितों द्वारा किया जा रहा प्रदर्शन समाप्त हो जाए। पर इस बैठक के दौरान जाट समुदाय के प्रतिनिधि बीच में ही उठकर चले गए। 42 गाँवों की एक महा खाप पंचायत द्वारा भी प्रयास किया गया था। उन्होंने एक 7 सदस्यों की कमेटी का गठन किया था जिसके द्वारा जाटों को यह आदेश दिया गया था कि वे चौक पर से दीवार हटा दें और दलितों को उनका मैदान लौटा दें। साथ ही दलितों को उस जगह पर अंबेडकर चौक बनाने की अनुमति दे दी गयी थीं इसी के बाद दीवार गिरा दी गयी थी, पर जैसा कि पहले बताया गया है जाटों ने रातों-रात उस दीवार को फिर से खड़ा कर दिया था। अब यह जाटों के लिए जाति के प्रभुत्व का मुद्दा बन चुका था। वे दलितों के आगे झुकने वाले नहीं थे।

ऐसा प्रतीत होता है कि जातिगत विवादों के मामलों में बातचीत के जरिए समाधान ढूढ़ें जाने का यह तरीका, इस क्षेत्र में जाटों की नयी स्थानीति का हिस्सा है। वे इस स्थानीति का प्रयोग खास तौर पर तब करती हैं जब उन पर शड्यूलकॉस्ट एंड शड्यूल ट्राइब्स (प्रिवेंशन ऑफ एट्रोसिटी) एक्ट 1989 (एस.सी.—एस.टी. एक्ट) लगाने की सम्भावना बढ़ जाती है। यह खापों का दूसरा चेहरा है जो कि अन्यथा वर्चस्व को बचाने के लिए आक्रामक और लड़ाकू गतिविधियों का इस्तेमाल करती है जैसा कि मिर्चपुर मामले में हुआ था। इस मामले में भी समाधान निकालने की आड में असल में जाओं की कोशिश दलितों द्वारा अपने वर्चस्व को चुनौती दिए जाने की परिस्थिति से निपटने की ही है।

हालाँकि जाटों ने समझौता करने के लिए ज्यादा प्रयास नहीं किये। इसके कई कारण हो सकते हैं 1) सारे विवाद के दौरान क्योंकि कोई हिंसात्मक घटना नहीं हुई थी इसलिए एस.सी.—एस.टी. एक्ट लगाने की सम्भावना भी कम थी. 2) इस मुद्दे को जाति की जगह ज़मीन का मुद्दा बताकर आसानी से नजरांदाज किया जा सकता है जैसा कि सरपंच और अन्य जाटों ने किया 3) दलितों की विवशता जाहिर होने

के कारण इसमें यथास्थिति बनी रही जिससे जाटों को और समय मिल गया। आर्थिक सच्चाई के कारण यह जाहिर है कि दलितों का यह आन्दोलन ज्यादा समय तक टिक नहीं पायेगा।

राज्य की भूमिका और विधि का शासन

भारत के संविधान के अनुसार हमारे कार्यकारी ढाँचे का निकाय जनता के संवैधानिक अधिकारो ंको सुरक्षित और सुनिश्चित करने के लिए है। भगाणा की घटनाओं के संन्दर्भ में राज्य की सभी एजेंसियाँ यानी पंचायत से लेकर जिला प्रशासन तक और जिस पुलिस से लेकर राज्य और केन्द्रीय मन्त्रियों ने जिस तरह की प्रतिक्रिया जताई, उससे राज्य और संविधान के जातिवाद और वर्गवादी चरित्र का खुलापन होता है। जैसा कि पहले बताया गया है, दलित और पिछड़ी जातियों के प्रदर्शनकारियों द्वारा इन्हीं संवैधानिक उपायों और सरकारी संस्थाओं से मदद की उम्मीद की गई थी। शिकायतें दर्ज करने का सिलसिला 2011 में ही सरपंच, बी.डी.ओ. और डी.डी.ओ. से शुरू हो चुका था। सरपंच ने भी खुले रूप से पक्षपाती रुख अपनाया था उदाहरण के लिए सरकारी योजनओां जैसे महात्मा गाँधी बनती विकास योजना और नरेगा के क्रियान्वयन में और जमीन की नीलामी में। इनमें से प्रत्येक योजना को जो कि भूमिहीनता मजदूरी और काश्तकारी के मौजूदा कृषि सम्बन्धों को बदलने के प्रयास का हिस्सा है, इस गाँव में विफल कर दिया गया।

जैसा कि ऊपर बताया गया है, जनवादी के बाद से ही जिला आयुक्त को शिकायतें भेजी जाने लगी थीं प्रदर्शनकारियों के पास इनकी प्रतिलिपियाँ भी थीं। इनमें खेल के मैदान शामलात जमीन, अवैध समिति के गठन, जाटों द्वारा प्रत्येक दलित से 1000 रुपए की लूट, जोन, चौक के बारे में और नरेगा के रुकने आदि से सम्बन्ध शिकायतें शामिल थीं। इन अर्जियों में दलित औरतों और पुरुषों ने तो हस्ताक्षर किये ही थे। साथ ही इन पर अपने मैदान के लिए लड़ रहे बच्चों के भी हस्ताक्षर थे। जिन्होंने यह माँग की थी कि उन्हें उनका खेल का मैदान वापस दे दिया जाए।

मार्च 2012 के हिसार के पुलिस अधीक्षक को ऊपर लिखित शिकायतों की अर्जियाँ भेजी गयी। जिनमें उन छः लोगों के नाम थे जो कि अवैध समिति बनाने में शामिल थे। इनके और अन्य लोगों के खिलाफ मुकदमा दायर करने के माँग भी की गई थी। 1 अप्रैल 2012 को ए.डी.सी. को एक पत्र द्वारा सामाजिक बहिष्कार के बारे में बताया गया था। इस पत्र की प्रतिलिपि एस.सी.—एस.टी. आयोग और प्रधान मन्त्री को भी भेजी गयी थी।

प्रशासन को लिखी गयी चिट्ठियों की विषयवस्तु और उनकी बढ़ती आवृत्ति से साफ जाहिर होता है कि तनाव और दमन बढ़ रहा था। अधिकारियों की नजर

में यह बात भी लायी गयी कि किस तरह जाटों की बढ़ती आक्रामकता में कुछ परिवारों को गाँव छोड़ने पर मजबूर कर दिया था और बाकी भी जल्द ही यहाँ से निकलने को बाध्य हो रहे थे।

12 अप्रैल को प्रशासन द्वारा एक और जाँच की गयी, पर कोई कार्यवाही नहीं हुई। मिनी-संचिवालय के सामने हुए प्रदर्शन और राष्ट्रीय मीडिया द्वारा इस मुद्दे को उठाने के बाद ही जिस आयुक्त अमित कुमार अग्रवाल, इस्पेक्टर जनरल ए. एस. चावला और पुलिस अधीक्षक अनिल धवन भगाणा गाँव गए। एक पुलिस दल गाँव में शान्ति बनाए रखने के लिए नियुक्त किया गया।

उपयुक्त ने बताया कि उनका मुख्य मकसद शान्ति बनाए रखना था। जिसके लिए प्रशासन ने एक 16 सदस्यों की समिति का गठन किया। जाँच दल के सदस्यों के वापस आ जाने के बाद इस्पेक्टर जनरल ने भी घोषित कर दिया कि इस मुद्दे पर बातचीत द्वारा हल करने का प्रयास किया जा रहा है।

मई के आखिरी हफ्ते में राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग चण्डीगढ़ के एक प्रतिनिधि के साथ गाँव में आये थे और मिनी-सचिवालय पर प्रदर्शन कर रहे दलित परिवारों से भी मिले थे। वरिष्ठ जाँच-कर्ता आर.के. शर्मा के नेतृत्व में आयोग के दो और सदस्य गाँव में कई वर्गों के लोगों से मिले और उन्होंने उनके बयान भी दर्ज किये। उन्होंने यह आश्वासन भी दिया था कि वे एक रिपोर्ट तैयार करेंगे और कार्यवाही भी करें। पर 2 महीने बाद भी रिपोर्ट नहीं आई थी।

9 जून को हरियाणा की सामाजिक कल्याण मन्त्री गीता शुक्ला दलित प्रदर्शनकारियों के प्रतिनिधियों से मिली। उनकी माँगों को जायज मानते हुए श्रीमती शुक्ला ने उनको प्रदर्शन खत्म करने और गाँव लौटने के लिए मनाने की कोशिश की। पर उनका आश्वासन शब्दों से कार्यवाही में बदलते नहीं देखा और धरना जारी रखा गया।

केन्द्रीय कैबिनेट मन्त्री कुमारी शैलजा भी, दलित परिवारों के गाँव छोड़ने के एक महीने बाद, 21 जून को हिसार पहुँची। वे जिला अधिकारियों और दलित प्रतिनिधियों से भी मिली। उन्होंने प्रदर्शनकारियों को आश्वासन दिया कि उन्हें न्याय मिलेगा। उन्होंने एस.पी. ओर डी.सी. को निर्देश दिये कि वे इस मुद्दे की सुलझाए और ग्रामीणों को वापस गाँव भेजें। इन सभी कोशिशों के बाद भी चीजें नहीं सुलझी थी। इससे साफ जाहिर होता है कि दलित समुदाय को न्याय दिलाने प्रशासन को कुछ खास रुचि नहीं है।

अखबारों के अनुसार एस.डी.एम. अमरद्दीन जैन ने कहा था कि डी.सी. ने गैरकानूनी ढंग से जमीन पर कब्जा किए जाने के मामले में जाँच के लिए आदेश दिया था और अगर कुछ भी गैरकानूनी पाया जाएगा तो उचित कार्यवाही की जाएगी। एस.डी.एम. ने कहा की विवादग्रस्त ग्राम पंचायत की जमीन और चमार चौंक को सी.आर.पी.सी. की धारा 145 के तहत तहसीलदार के संरक्षण में रख दिया गया

था। अब इन जमीनों पर सरकार की अनुमति के बिना कोई भी गतिविधि वर्जित थी।

प्रशासन द्वारा मुद्दे की जाति विवाद से परे ज़मीन का विवाद दर्शाने की कोशिश की गयीं साथ ही दलितों के बहिष्कार को दलितों की ही गलतफहमी बताकर मुद्दे के जातिवाद पहलू को छिपाने की कोशिश की गयी। ऐसा इसलिए किया गया, क्योंकि इसके गम्भीर कानूनी नतीजे हो सकते थे। डी.सी. अमित कुमार अग्रवाल ने कई अखबारों के जरिये कहा कि मुद्दा जाति का नहीं बल्कि पंचायत की आम जमीन सम्बन्धी विवाद का है। जब हमारा जाँच दल एस.पी. से जब मिला तब उन्होंने भी यही दोहराया।

जबकि जमीन को लेकर सम्बन्ध और जमीन और संसाधनों पर नियन्त्रण ही जातिगत और वर्ग सम्बन्धों के आधार होते हैं और जबकि वर्ग आधारित सम्बन्ध अधिकतर जाति आधारित होते हैं और जबकि ज्यादातर दलित भूमिहीन हैं। भगाणा का विवाद साफ तौर पर जातिगत विवाद है ेयह भी बयान में रखा जाना चाहिए कि बहिष्कार या बँधी को एस.सी.–एस.टी. एक्ट के अन्तर्गत जातिवादी अत्याचार माना जाता है। पर यह एक अलग मुद्दा है कि किस हद तक कानून शोषित वर्ग के लिए प्रभावी है।

विधि का शासन

संविधान के अनुच्छेद 15 के अनुसार जाति और नस्ल के आधार पर भेदभाव करना अवैध हे। इसके बावजूद भी अनुसूचित जातियाँ और जनजातियों के उत्पीड़न को खत्म किए जाने के उद्देश्य से एक कानून एस.सी.–एस.टी. एक्ट पारित किया गया था। इस कानून के अन्तर्गत अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लोगों को अन्य जातियों द्वारा की जा रही हिंसा से बचाने के लिए अधिक व्यापक और दण्डात्मक अधिकार दिए गए। इस तरह से यह कानून कानून के समक्ष बराबरी और बोलने और अभिव्यक्ति के मौलिक अधिकार को मान्यता देता था जो कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लोगों को असल में नही मिला हैं।

यह कानून सख्त की बात करता है और उत्पीड़ित समुदायों और उनके आन्दोलनों को जातिवाद से लड़ने के लिए एक कानूनी हथियार भी प्रदान करता है। यह कानून जाति-उत्पीड़न के सभी पहलुओं को समाहित करता है जो की आम कानूनों में शामिल नहीं है। इस कानून के अन्तर्गत सामाजिक हिंसा और वचन को अपराधों की श्रेणी में रखता है। भगाणा में लगातार माँग के बावजूद भी एस.सी. –एस.टी. एक्ट के तहत एक भी मामला दर्ज नहीं किया गया। हिसार में हाल ही में ऐसी कई वारदातें होने, एक बड़े सामाजिक बहिष्कार और दलितों को धमकाये और पीटे जाने के बावजूद पुलिस द्वारा इस कानून के तहत एक भी एफ.आई.आर. दर्ज नहीं की गयी।

एस.सी.–एस.टी. के अनुसार किसी की अपनी ज़मीन घर या गाँव से बेदखल होने के लिए मजबूर करना, जाति उत्पीड़न माना जाता है (देखें बाक्स 3) एफ.आई. आर. दर्ज न करना भी इस कानून के सैक्शन 4 के अनुसार एक अपराध है। सैक्शन 4 के अनुसार अगर कोई सरकारी कर्मचारी इस कानून को नियमानुसार लागू नहीं करते तो उन्हें भी 6 महीने के एक वर्ग की सजा हो सकती है। इस कानून के अन्तर्गत कम से कम 6 माह की सजा ओर जुर्माना किया जा सकता है। और जब अपराध भारतीय दण्ड संहिता (आईपीसी.) के अंतर्गत भी दण्डनीय हो तो जुर्माने के साथ साथ आजीवन कारावास की सजा भी हो सकती है।

दलितों की शिकायतों के आधार पर जो एकमात्र कार्यवाही की गयी है वह सी.आर.पी.सी. की धारा 145 के अनतर्गत की गयी है। धारा 145 में जमीन या जल से सम्बन्धित विवादों की जाँच की प्रणाली का वर्णन है। इतने गम्भीर आरोपों के लिए एस.सी.–एस.टी. एक्ट की जगह एक क्रम प्रभावशाली कानून का प्रयोग करना, यह प्रमाणित करता है कि एक आत्मसंतुष्ट और उदासीन प्रशासन द्वारा किस तरह लोगों को न्याय से वंचित रख जाता है।

जाटों द्वारा अपने को इस कानून से बचाने के प्रयास यह जरूर साबित करते हैं कि एस.सी.–एस.टी. काफी हद तक समाज में दबाव बनाने के लिए प्रभावशाली भी रहा है। सिर्फ सर्व-खाप पंचायत ही नहीं बल्कि प्रशासनिक अधिकारी भी बातचीत के जरिये ही मुद्दे का समाधान करने का प्रयास कर रहे है। पर ध्यान देने की बात है कि भगाणा में बातचीत के जरिए समस्या को सुलझाने के प्रयास में अधिकारियों द्वारा प्रदर्शनकारी से अपनी सभी शिकायतें वापस लेने के लिए कहा जा रहा है। अगर बातचीत से काम नहीं चलता तो दलित और दूसरी पिछड़ी जातियों के लोगों को शामलात जमीन और उनके विरोध को लेकर अपराधी बन कर ऐसा किया जा रहा है।

हिसार के उपयुक्त दलितों को यह कहकर चुप कराने का प्रयास किया कि सजा गाँव ही जमीन के गैर-कानूनी वितरण में भागीदार था। उनके अनुसार दलितों ने दिसम्बर में तब शिकायतें की जब उन्हें एहसास हुआ कि उन्हें लूटा जा रहा है और ग्रामसभा की जमीन का एक हिस्सा और खेल का मैदान उनसे छीना जा रहा है। गैर-कानूनी गतिविधि को स्वीकार करते हुए और दलितों को दोषी ठहराने के अलावा इन्होंने गैर-कानूनी समिति के खिलाफ किसी ने कोई कार्यवाही नहीं की और न ही कोई इशारा किया, क्योंकि इससे जाटों को नुकसान होगा।

इसके विपरीत प्रदर्शनकारियों पर सारा गुस्सा यह कहकर निकाला गया कि यह जातिवादी उत्पीड़न का मामला नहीं बल्कि केवल एक कानून और व्यवस्था का मामलाव है और इसका कोई सामाजिक और आर्थिक पहलू नही ंहो सकता। 5 जून को जब प्रदर्शनकारियों के वीरेन्द्र भगोरिया के नेतृत्व में हरियाणा के मुख्यमन्त्री भूपिन्दर

सिंह हुड्डा के शहर के दौरे के दौरान उनका पुतला जलाने की नाकामयाब कोशिश की तब 46 कार्यकर्ताओं के खिलाफ आईपीसी की धारा 147, 148 , 186, 263, 332, 341 और 353 के तहत मामले दर्ज कर दिए गए। वे धारा दंगा, करने जाँच में बाधा डालने, सरकारी कर्मचारियों के काम को बाधित करने और इन कर्मचारियों को हानि पहुँचाने के आरोपों से सम्बन्धित है। बाद में 8 व्यक्तियों पर धारा 124ए–राजद्रोह भी लगा दिया गया क्योंकि एक वीडियो में इन्हें सरकार के खिलाफ अभद्र भाषा और जातिवादी नारे लगाते पाया गया। काफी विरोध होने के बाद राजद्रोह के आरोप उन पर से हटाये गए। बाकी आरोपों के तहत मामले अब भी दर्ज हैं। यह घटना दर्शाती है कि राज्य किस प्रकार राजद्रोह के कानून का इस्तेमाल किसी भी तरह की असहमति से निपटने के लिए कर सकता है। और इस तरह जाटों द्वारा किए जा रहे शोषण का विरोध, राष्ट्र के खिलाफ की गयी एक गतिविधि बन जाता है। इस तरह के तरीकों से राज्य की नीयत साफ पता चल जाती है।

20 विरोधियों को जून में आईपीसी धारा 324 और 307 के तहत गिरफ्तार कर लिया गया था। अभी वे जमानत पर जेल से बाहर हैं। ये लोग राजकुमार की संदिगध हालातों में हुई मौत के मामले के सम्बन्ध में जाँच के अभाव और पुलिस की संदिग्ध कार्यवाहियों का विरोध कर रहे थे। हम जब राजकुमार के घर गए तो पता चला कि उनका घर शामिलात जमीन (ग्राम पंचायत की) पर बना है। उनके घर के ठीक सामने उपले और जानवरों के गोबर पड़े थे। उनकी पत्नी ने हमें शामिलात जमीन का वह हिस्सा दिखाया जहाँ से उन्हें निकाल दिया गया था और जिसकी वजह से उन्हें यह सारा सामान घर के सामने लाना पड़ा था। राजकुमार जाट उत्पीड़न से काफी परेशान थे। कई बार माँग किए जाने के बावजूद उनकी मौत के सम्बन्ध में कोई जाँच शुरू नहीं की गई है।

विरोध के बाद सी.सी. ने आईपीसी धारा 144 थोपकर धरने को जबरदस्ती बन्द करने की कोशिश की। जो बात एस.पी. अनिल धवन ने हमें 21 जून को बतायी थी वह वही थी कि अगर कोई कानून का उल्लंघन करेगा तो ‘हम’ उसके खिलाफ केस करेंगे और एक ‘निष्पक्ष और न्यायिक’ जाँच करें। इससे ज्यादा कुछ भी स्पष्ट किए जाने की कोई जरूरत नहीं है। इस मामले में प्रशासन की उदासीनता और कार्यवाही दोनों ही हरियाणा के प्रशासन में जाओं को मिलने वाले समर्थन का एक और उदाहरण है। जाटों को ताकत इस समर्थन से और अधिक बढ़ाती है।

दलितों ने यह भी बताया की पिछले साल आरक्षण के खिलाफ हो रहे विरोध प्रदर्शन के दौरान जाटों ने एक पुलिस चौकी जला दी थी, पर उनके खिलाफ कोई कार्यवाही नहीं की गयी थी। इसके विपरीत एस.पी. सुभास यादव के खिलाफं आईपीसी की धारा 302 के तहत मामला दर्ज कर दिया गया था और पुलिस चौकी का स्थान बदलकर 15 किलोमीटर दूर कर दिया गया था।

निष्कर्ष और माँगे

हरियाणा में टकराव की जड़ में है जमीन के लिए संघर्ष भूमि सुधार योजनाएँ, आम संपत्ति संसाधनों पर नियंत्रण इस्तेमाल के अधिकार बनाम मिल्कियत, जमीन की मिल्कियत बनाम भूमिहीनता और जिस जमीन के लिए वादा किया गया उसका विनियोजन। दलितों की जमीन पर अपने हक की जानकारी, जमीन दिए जाने के वादे और फिर उससे वंचित करने के लिए जमीन के इस्तेमाल के ऐतिहासिक तौर तरीकों को बदलना जमीन के इस्तेमाल के पारम्परिक तरीकों को खात्म कर देना। वगैरह मिलजुल कर दलितों के विरोध का कारण बन रहे है। अपने इस विरोध के लिए वे सभी उपलब्ध तरीकों और संस्थानों का इस्तेमाल कर रहे हैं।

भगाणा की स्थिति की जाँच में हमने पाया कि संस्थान और अधिकार संघर्ष की जगह बन रहे है। संवैधनिक ग्राम पंचायत के जाटों का प्रभुत्व है। उनके प्रभुत्व को ऊपरी प्रशासनिक संस्थानों और पदों पर जाटों के बड़ी संख्या में मौजूद होने से बल मिलता है। गहरी पैठी हुई जातिवादी सोच और पदक्रम को अब राज्य के संस्थान और बढ़ावा दे रहे है। देशद्रोह के आरोप लगा देना राज्य के उस चेहरे को उजागर करता है जिसमें वह न केवल जातिगत भेदभाव से निपटने में कोताही बरतता है बल्कि अपनी शक्ति और नृशंस कानूनों का इस्तेमाल जातिगत और वर्ग सम्बन्धी असमानता को चुनौती देने वाली हर कोशिश को कुचलने के लिए करता है। और इसलिए जातिगत शोषण के खिलाफ संघर्ष देश के खिलाफ असन्तोष बन जाता है।

इस सब के बावजूद भगाणा के संघर्ष ने दिखा दिया है कि दलित किस तरह के राज्य के संस्थानों पर दबाव डाल रहे हैं और सफलता भी हासिल कर रहे हैं—जैसे कि देशद्रोह के आरोपों का वापस लिया जाना। इस संघर्ष ने दिखाया है कि किस तरह से दलित राज्य और केन्द्रीय राजनैतिक वर्ग की मजबूर कर रहे हैं कि वे उनके अधिकारों की ओर ध्यान दें। रोजगार के वैकल्पिक मौकों शिक्षा, राजनैतिक दलों के दखल सरकारी योजनाओं और कानूनों के कार्यान्वयन और अपने अधिकारों के प्रति अधिक जागरूकता का ही यह नतीजा है कि आज दलित भी राज्य के संस्थानों और तरीकों का इस्तेमाल कर रहे हैं।

परन्तु दलितों का यह राजनीतिकरण एक जैसा नहीं है और कई कारकों से प्रभावित होता है—एक महत्त्वपूर्ण कारक है। भगाणा में दलितों और अन्य पिछड़ी जातियों को एक ऐसा हिस्सा भी है जिसने गाँव नहीं छोड़ा और संघर्ष में हिस्सा नहीं लिया। वे तुलनात्मक रूप से अधिक गरीब घरों में से हैं और उनमें मुख्यतः केवल महिलाएँ और बच्चे ही हैं। उन लोगों ने हमारे दल से बात भी नहीं की। उनकी चुप्पी का कारण यह है कि वे आर्थिक रूप से पूरी तरह से जाटों पर निर्भर हैं दूसरी ओर कुछ अन्य दलित परिवारों की चुप्पी का कारण उनका जातिगत पदक्रम

में पूरी तरह से फँसा होना है। आप उन लोगों से संघर्ष में शामिल होने की उम्मीद नहीं कर सकते जिनके पेट भी पूरी तरह से नहीं भेर होते और वह भी जब संघर्ष उन लोगों के खिलाफ हो जिनपर इस आधे भरे पेट के लिए उनकी निर्भरता हो। वर्ग के आधार पर बँटे होने से भी किसी आन्दोलन की लाभबद्धता और राजनैतिकरण पर अपना पहरा है।

दूसरी ओर तुलनात्मक रूप से सम्पन्न दलित हैं जो कि अपना विरोध प्रकट करने के लिए गाँव में ही रुके रहे। गाँव में जिस व्यक्ति ने हमारा मार्गदर्शन किया वह एक पढ़ा लिखा और बातचीत करने वाला व्यक्ति था। हमें सरपंच के घर से जाने से भी वह नहीं झिझका जबकि उसे पता था कि ऐसा करने में क्या खतरे है। जब हमने दल में उसके प्रति चिन्ता व्यक्त की तो उसने जवाब दिया कि इस कारण से उसे जिस खतरों का सामना करना पड़ सकता है। वे उनके द्वारा प्रतिदिन भुगते जा रहे बृहद जातिगत दमन की तुलना में कुछ भी नहीं है। उन्होंने गाँव नहीं छोड़ा क्योंकि उनके पास जो कुछ भी है वह वहीं है।

उनके गाँव न छोड़ने का कारण यह हो सकता है कि उनके पास काफी कुछ ऐसा है जो वे खो सकते हैं, पर ध्यान देने की बात यह है कि इससे वे संघर्ष को लेकर निष्क्रिय नहीं हो गए बल्कि वे विरोध में लगातार सक्रिय है। जब हम सरपंच के घर से बाहर निकल रहे थे। सरपंच के साथी उन्हें एक तरफ ले गए और अगर वे फिर कभी हमारी तरफ के लोगों को सरपंच के घर लाए तो उन्हें इसके परिणाम भुगतने पड़ेंगे।

भगाणा के संघर्ष, हरियाणा की बदलती हुई सामाजिक वास्तविकताओं का प्रतीक है जिसमें निचली जातियों द्वारा अपने हकों का दावा करना और ऊपरी जातियों द्वारा उन्हें नकारना जारी है। जिसका अभिज्ञान सामाजिक समूहों प्रशासन और सरकारों को लेना पड़ रहा है। यह रिपोर्ट इसी का प्रमाण है।

एफडीआर और पीयूडीआर माँग करते हैं

1. दोषी जाटों के खिलाफ एससी/एसटी एक्ट के तहत मामले दर्ज किए जाए।
2. दलित और अन्य पिछड़ी जातियों के लोगों के सुरक्षित रूप से भगाणा में वापस लाने का बन्दोबस्त किया जाए।
3. उस गैरकानूनी समिति के सदस्यों को गिरफ्तार किया जाए जिन्होंने शामलात जमीन का बँटवारा किया था।
4. उस गैरकानूनी समिति के सदस्यों को गिरफ्तार किया जाए जिन्होंने शामलात जमीन का बंटवारा किया था।
5. महात्मा गाँधी बस्ती विकास योजना के तहत प्लॉटों का पंजीकरण और वितरण तुरन्त किया जाए।

एक और मिर्चपुर

–कल्पना शर्मा

2011 की एक पंजाबी फिल्म है 'अन्हे घोड़े दा दान'। गुरदयाल सिंह के लिखे एक उपन्यास पर आधारित इस फिल्म का निर्देशन गुरविंदर सिंह ने किया था। इस फिल्म में पंजाब के दलित वर्ग की बेबसी को बड़ी ही संजीदगी और धीरज के साथ दिखाया गया है।

तीन साल पहले की इस फिल्म का जिक्र यहां इसलिए क्योंकि हरियाणा के भगाणा गांव के दलित परिवारों से बात करते वक्त उस फिल्म के कई सीन आंखों के सामने दौड़ जाते हैं। ऐसा लगता है कि जैसे वही फिल्म दोबारा देख रहे हैं।

हरियाणा के हिसार जिले से आधे घंटे की दूरी पर भगाणा गांव है। काफी लंबे समय से इस गांव के जाटों ने खाप पंचायत के साथ मिलकर दलितों का सामाजिक बहिष्कार कर रखा है। पिछले दिनों इस बहिष्कार ने एक कदम आगे बढ़ाते हुए एक ऐसा भयानक रूप लिया जिसने गांव के दलित परिवारों की चार लड़कियों को मुंह ढंककर दिल्ली के जंतर-मंतर पर डेरा डालने को मजबूर कर दिया। 13 से 18 साल की उम्र की इन चार मासूम जिंदगियों का साथ गांव के करीब 100 से भी ज्यादा दलित दे रहे हैं। इनमें महिलाएं और बच्चे भी शामिल हैं।

यहां 'धरना' शब्द का इस्तेमाल इसलिए नहीं किया जा रहा है क्योंकि पिछले कुछ समय से इस अलफाज की गंभीरता कम होती जा रही है। शायद इसीलिए भगाणा के इन दलितों की भी कोई सुनवाई नहीं है। चंद अखबारों को छोड़कर ज्यादातर मीडिया ने इनकी तरफ ध्यान देना मुनासिब नहीं समझा है। शायद उनकी नजर में यह भी जंतर मंतर पर दिया जाने वाला 'बस-एक-और-धरना' है। ऊपर से यह चुनाव का मौसम भी है। 'हर हाथ शक्ति' और 'अच्छे दिन आने वाले हैं' जैसे सुखद नारों के बीच ऐसी किसी बुरी खबर से क्यों जायका बिगाड़ा जाए?

खैर, पूरा मामला यह है कि 23 मार्च की शाम सात बजे, भगाणा गांव के अलग-अलग दलित परिवारों की चार लड़कियां, शौच के लिए घर से बाहर खेतों की तरफ निकली थीं। इन चारों की उम्र 13 से 18 साल के बीच है। जब काफी

देर तक लड़कियां घर वापिस नहीं लौटीं तो परिवार वालों ने उन्हें ढूंढना शुरू किया। अगले दिन मदद के लिए सरपंच का दरवाजा खटखटाया गया लेकिन वहां से भी किसी तरह की सहायता न मिलने के बाद ये लोग हताश होकर वापस लौट गए। थोड़ी ही देर बाद सरपंच का संदेश आया कि इन परिवारों की बेटियां मिल गई हैं और वे सभी भंटिडा में हैं।

24 मार्च की शाम को भटिंडा में अपने परिवार से मिलने के बाद इन लड़कियों ने जो जानकारी दी उसने सबको हिला कर रख दिया। लड़कियों ने बताया कि उन्हें एक सफेद गाड़ी में उठा लिया गया था और फिर उनके साथ 12 लोगों ने सामूहिक बलात्कार किया। इन लड़कियों पर सच न बोलने का काफी दबाव था लेकिन मामले को सामने आने में ज्यादा देर नहीं लगी। जानकारी के मुताबिक डॉक्टरी जांच में दो लड़कियों के साथ बलात्कार की पुष्टि हुई है लेकिन परिजनों का कहना है कि चारों में से किसी को भी नहीं छोड़ा गया। 25 मार्च को सुबह एफआईआर की गई लेकिन केवल पांच ही लोग गिरफ्तार हुए हैं। पीड़ित लड़कियों के परिजनों का आरोप है कि इस काम में सरपंच की मिलीभगत है और जो सात आरोपी फिलहाल बाहर हैं उनमें सरपंच राकेश और उसका चाचा भी शामिल है। लड़कियों के परिवार वालों का कहना है कि जहां सारी रात दौड़-भाग करने के बाद भी उन्हें अपनी बेटियों का पता नहीं चल पाया, वहीं सरपंच ने थोड़ी ही देर में कैसे लड़कियों के ठिकाने का पता लगा लिया।

यही हमारा घर है

भगाणा के जाटों ने दलितों का हुक्का पानी पहले से ही बंद कर रखा है। इस गांव के 135 दलित और पिछड़े परिवार, पिछले दो सालों से अपने बच्चों, महिलाओं और जानवरों के साथ हिसार के मिनी सचिवालय में खुले आसमान के नीचे रह रहे हैं। गांव की जिन लड़कियों के साथ सामूहिक बलात्कार हुआ है, वो धानक (अनुसूचित जाति) जाति की हैं। पीपुल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स संस्था ने जो रिपोर्ट तैयार की है उसके अनुसार धानक जाति, दलितों में भी बेहद कमजोर मानी जाती है। दो साल पहले जब जाटों ने गांव में हुए एक विवाद के चलते दलितों का बहिष्कार किया था तब चमार, कुम्हार, खाती जैसी अपेक्षाकृत मजबूत जाति के लोग, हिसार में धरने पर बैठ गए थे। लेकिन धानक जाति के परिवारों ने बहिष्कार के बावूजद गांव में ही रहने का फैसला किया था। इस सामूहिक बलात्कार को धानक जाति के उसी निडर कदम की सजा के रूप में भी कुछ लोग देख रहे हैं।

अब एफआईआर दर्ज कराने की हिम्मत दिखाकर और पांच लोगों को सलाखों के पीछे भेजकर, इन लोगों के लिए गांव में ठहरना अपनी जान को खतरे में डालने से कम नहीं। इसलिए 15 दिनों तक हिसार में डेरा डालने के बाद और हरियाणा

सरकार से नाउम्मीदी मिलने के बाद, इन लोगों ने 16 अप्रैल से दिल्ली के जंतर मंतर पर न्याय की गुहार लगानी शुरू कर दी। लेकिन क्या इंसाफ मिलना इतना आसान है? जब ये सवाल बलात्कार की शिकार कुसुम (नाम बदला हुआ) की मां से पूछा गया तो जवाब था 'अगर निर्भया को न्याय मिल सकता है, तो हमारी बच्चियों को क्यों नहीं? फर्क बस इतना है कि वो मर गई और हमारी बच्चियों को तो इन पैसे वालों ने जीते जी मार डाला।' इस बीच वे चारों लड़कियां मुंह ढककर तंबू के एक तरफ सो रही हैं।

वहीं तंबू के दूसरी ओर कुछ लोग ताश खेलकर वक्त गुजार रहे हैं। वैसे भी एक-दो दिन की बात हो तो समझ में आता है। यहां तो इंतजार लंबा नहीं बहुत लंबा है। ऐसे में अपने घर से दूर किसी टैंट के नीचे समय बिताना आसान बात नहीं है। हिम्मत कभी भी 'इंसाफ' और 'जंग' जैसे भारी शब्दों का साथ छोड़कर भाग सकती है।

और हां, एक छोटी सी बच्ची किरण भी है जो हर नए आने वाले के साथ दोस्ती गांठ रही है। जब उससे घर लौटने के बारे में पूछते हैं तो वह कहती है अब यही हमारा घर है।

सोनिया गांधी कब आएंगी?

कड़ी धूप में जंतर मंतर पर बजने वाले लाउड स्पीकरों के शोर के बीच उन चार लड़कियों में से एक शशि (नाम बदला हुआ) के पिता विजेंद्र बड़ी मासूमियत से मुझसे एक सवाल पूछते हैं 'ये सोनिया गांधी कब आने वाली हैं? मैं पूछती हूं, 'कहां?' 'अरे वो बाहर गई हुई हैं ना। वो और राहुल गांधी दिल्ली कब वापिस आएंगे? एक बार बस उनसे मिलना हो जाए।'

उनसे मिलकर क्या कहेंगे? पूछने पर विजेंद्र कहते हैं 'हम बस न्याय चाहते हैं। हमारी बस दो ही मांग हैं। सरपंच और बाकी बचे लोगों को गिरफ्तार करो और हमारे लिए कोई और ठिकाने का इंतजाम कर दो। हम वापिस गांव नहीं लौटना चाहते। क्या मुंह लेकर जाएंगे? इज्जत तो चली ही गई है। वहां लौटेंगे तो जो बची-खुची जान है उसे भी वो लोग ले लेंगे।'

'लेकिन सभी आरोपियों को गिरफ्तार करने के बाद तो गांव लौटने में दिक्कत नहीं होनी चाहिए?'

इस पर विजेंद्र का जवाब आता है, 'वो लोग पैसे वाले हैं। जेल से छूटना उनके लिए बाएं हाथ का खेल है। उसके बाद हमारा क्या होगा? और कितना डर-डर के जिएंगे? हरियाणा की सरकार से हमें कोई उम्मीद नहीं है। वो तो जाटों का ही साथ देती आ रही है। इसलिए हम यहां आए हैं। केंद्र सरकार से गुहार लगाने।'

बंदूक से पेट नहीं भरता

इंसाफ की इस लड़ाई में पेट के चूहे साथ नहीं देते। लड़ाई लड़ने के लिए पेट भरा होना जरूरी है। इन लोगों के लिए खाने का प्रबंध सर्वसमाज संघर्ष समिति के अध्यक्ष और बसपा नेता वेदपाल तंवर ने किया है। विजेंद्र का कहना है कि सर्वसमाज संघर्ष समिति और वेदपाल की बदौलत ही पुलिस को एफआईआर दर्ज करनी पड़ी।

वेदपाल सिर्फ भगाणा ही नहीं, मिर्चपुर गांव के सामाजिक बहिष्कार के शिकार दलित परिवारों का भी साथ दे रहे हैं। 2010 में हिसार जिले के ही मिर्चपुर गांव में एक सत्तर साल के दलित और उसकी एक विकलांग बेटी को जिंदा जला दिया गया था। यही नहीं, यहां के अन्य 18 दलितों के घरों को भी फूंक डाला गया था। इस घटना के बाद करीब 100 से भी ज्यादा दलित परिवार मिर्चुपर छोड़कर भाग गए थे। वे सभी पिछले चार सालों से वेदपाल तंवर के हिसार स्थित फॉर्महाउस में ठहरे हुए हैं। सुप्रीम कोर्ट के हस्तक्षेप के बाद हरियाणा सरकार ने मिर्चपर के इन दलितों की सुरक्षा में कुछ कदम तो उठाए हैं लेकिन इससे इन खानाबदोशों के पुनर्वास का मसला अभी भी हल नहीं हो पाया है।

भगाणा के दलितों के पुनर्वास की संभावनाओं के बारे में वेदपाल मिर्चपुर मामले में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के उस वक्तव्य का जिक्र करते हैं जिसमें कहा गया था कि पेट, बंदूक से नहीं भरता। पुनर्वास जरूरी है। लेकिन सर्वोच्च न्यायालय की इस डांट पर अमल करने के लिए सबसे जरूरी है इच्छाशक्ति जो मिर्चपुर और भगाणा जैसे मामलों में नदारद दिखती है।

मैं भी दलित हूं

भगाणा के इन दलितों के लिए किसी के पास वक्त नहीं है इसलिए दिल्ली के जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के छात्रों ने इनकी बात आगे तक पहुंचाने का बीड़ा उठाया है। ऑल इंडिया बैकवर्ड स्टूडेंट फोरम (एआईबीएसएफ) के राष्ट्रीय अध्यक्ष जीतेंद्र यादव बताते हैं कि सदर हिसार के थाना अध्यक्ष ने एफआईआर में से कुछ लोगों के नाम हटा दिए थे इसलिए इनके फोरम की मांग है कि अनुसूचित जाति आयोग, लड़कियों के बयान लेकर मामले की दोबारा जांच करवाए और बाकी आरोपियों को भी गिरफ्तार किया जाए। जीतेंद्र का यह भी कहना है कि जिस तरह के सामाजिक बहिष्कार को ये दलित परिवार अपने गांव में झेल रहे हैं- जैसे, कुएं से पानी निकलाने की मनाही, दुकान से सामान खरीदने की मनाही, जाटों के खेत में काम करने की मनाही, यहां तक की उनकी बहन-बेटियां भी वहां सुरक्षित नहीं हैं ऐसे में इनका भगाणा में लौटना कहां की समझदारी होगी।

इस मामले में तहलका ने जब अनुसूचित जाति आयोग के सदस्य ईश्वर सिंह

से संपर्क किया तो उनका कहना था कि घटना के अगले दिन ही एसपी और दो डीएसपी को समन भेजकर पूरी रिपोर्ट मंगवाई गई थी। डॉक्टरी जांच में केवल दो लड़कियों के बलात्कार की पुष्टि हुई है जिन्हें एक लाख बीस हजार का कुल मुआवजा भी हाथों-हाथ दे दिया गया था। इसके बाद जंतर-मंतर आने का औचित्य समझ के बाहर है।

ईश्वर सिंह के मुताबिक इस पूरे मामले का राजनीतिकरण हो रहा है और पुनर्वास और बलात्कार का मामला दो अलग-अलग मसले हैं। इन्हें जोड़कर न देखा जाए। वहीं एआईबीएसएफ के अध्यक्ष जीतेंद्र यादव ऐसा मानने से इंकार करते हैं। उनका कहना है कि लड़कियों के साथ हुआ बलात्कार, भगाणा के दलितों को गांव से निकाल बाहर करने और उन्हें सबक सिखाने की मंशा से ही किया गया है इसलिए दोनों बातों को अलग-अलग करके देखना, मामले में आयोग की बेरूखी का सबूत है।

27 अप्रैल को जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के छात्र, इन चार पीड़ित लड़कियों और उनके परिवार के साथ केंद्रीय गृहमंत्री सुशील कुमार शिंदे के घर का घेराव करने पहुंचे जहां काफी इंतजार के बाद कुछ लोगों को गृहमंत्री से मिलने का मौका मिला। उन्हें आश्वासन दिया गया कि चिट्ठी लिखकर हरियाणा सरकार से जल्द से जल्द कार्रवाई करने की मांग की जाएगी। गृहमंत्री ने कहा कि वे खुद भी दलित हैं और इस दर्द को समझते हैं। लेकिन ये मामला राज्य सरकार का है और केंद्र सरकार इसमें ज्यादा दखलअंदाजी नहीं कर सकती। 2012 में केंद्रीय गृहमंत्री का पद हासिल करने के बाद सुशील कुमार शिंदे ने यूपीए अध्यक्ष सोनिया गांधी और प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह को धन्यवाद दिया था कि उन्होंने एक 'दलित' को गृह मंत्रालय जैसी गंभीर जिम्मेदारी सौंपी है। उन्हीं 'दलित' गृहमंत्री के टूटे-फूटे आश्वासन के साथ ही भगाणा का यह काफिला वापिस जंतर मंतर के अपने डेरे पर लौट आता है और वे चारों लड़कियां एक बार फिर अपने ढके हुए मुंह को और अच्छे से ढककर सोने की तैयारी करने लगती हैं।

फिलहाल इन परिवारों का वर्तमान और भविष्य अधर में है। अगर नेताओं और आयोग के दिलासे के साथ ये गांव लौट भी जाएं तो इनका हाल क्या होगा किसी से छुपा नहीं है। अगर यह भी मान लिया जाए कि केवल दो लड़कियों के साथ ही बलात्कार हुआ है और दिए गए एक लाख बीस हजार के मुआवजे के साथ इन्हें गांव लौट जाना चाहिए, तब भी इनकी सही-सलामती की गारंटी कौन लेता है? ऐसे में कोई सही राहत नहीं मिलने पर सड़कों पर रहना इनकी मजबूरी हो जाती है।

न्याय दो या प्राण लो

इतिहासविद रामचंद्र गुहा ने अपनी किताब 'इंडिया आफ्टर गांधी' (गांधी के बाद का भारत) में 1949 की एक घटना का जिक्र किया है जिसमें दिल्ली के आसपास

के गांव में बसे दलितों को जाटों ने इसलिए निकाल बाहर कर दिया था क्योंकि कल तक जो उनके जानवरों को चराते थे, आजादी के बाद उनमें बराबर खड़े होकर वोट डालने की हिम्मत आ गई थी। विरोध में गांव के दलितों ने दिल्ली के महात्मा गांधी स्मारक पर भूख हड़ताल की थी और कई गांधीवादी नेताओं और कैबिनेट मंत्रियों का ध्यान अपनी तरफ खींचा था।

लेकिन उस वक्त आजादी नई-नई मिली थी इसलिए जोश भी नया था। यह 2014 है। इस वक्त नेताओं का ध्यान चुनाव में लगा हुआ है। दूसरी तरफ क्रिकेट का सबसे बड़ा महाकुंभ आईपीएल चल रहा है और ये दोनों काफी नहीं थे कि बॉलीवुड के आयफा अवार्ड्स को भी अभी ही शुरू होना था। मीडिया इन सबको कवर करने में मसरूफ है। इतने जरूरी कार्यक्रमों के बीच में इन बेसहारा दलितों की सुनवाई के लिए फुर्सत किसे है।

जंतर मंतर पर शाम का समय है। विजेंद्र टैंट के बाहर लगे एक बोर्ड को बड़ी तन्मयता के साथ ठीक करने में लगे हैं। ऐसे कि जैसे वह बोर्ड अगर थोड़ी देर के लिए भी दिल्ली की नजरों से ओझल हुआ तो उनकी बात नहीं बन पाएगी। बोर्ड पर लिखा है—'न्याय दो या प्राण लो।'

साभार : तहलका (हिंदी) 15 मई, 2014

हरियाणा न्याय की मुहिम में छात्र-शिक्षक भी शामिल हैं

–स्वतंत्र मिश्र

हरियाणा में महिलाओं के प्रति यौन हिंसा के मामले लगातार बढ़ रहे हैं। इन घटनाओं पर लगाम लगाए जाने की चिंता करने की बजाय वहां की खाप पंचायतें युवा पीढ़ी में फास्टफूड चाउमिन के बढ़ते चलन को इसका जिम्मेदार बताती हैं

हरियाणा के हिसार जिला मुख्यालय से 19 किलोमीटर दूर भगाणा गांव की 13 से 18 की उम्र की चार बच्चियां न्याय की गुहार लगातीं दिल्ली के जंतर-मंतर पर 16 अप्रैल से डटी हुई हैं। इन्हें इनके गांव के एक दर्जन लड़के जबरन अगवा कर 23 मार्च को ले गए और लगभग 26-27 घंटे तक इनसे कथित रूप से सामूहिक दुष्कर्म किया। इन बच्चियों के अनुसार, उन्हें बार-बार कुछ सुंघा कर बेहोश कर दिया जाता था। इन्हें जब पूरी तरह होश आया तो इन्होंने खुद को पंजाब के बठिंडा रेलवे स्टेशन पर पाया। इन्हें बठिंडा से वापस गांव ले जाने के लिए सरपंच और गांव के कुछ युवक आए थे। सरपंच इन्हें पूरे रास्ते यह धमकी देते रहे कि अगर उसके परिवार के किसी सदस्य का नाम किसी ने लिया तो जान ले ली जाएगी।

पीड़िता ने 'शुक्रवार' के इस संवाददाता से घटना के बारे में बताया, 'हम शाम को शौच करने गए थे तभी कुछ लड़के सफेद गाड़ी में आए और हमें जबरन उठा ले गए। सामूहिक दुष्कर्म करने वाले युवक मेरे गांव के जाट समुदाय से नाता रखते हैं। ' क्या उनसे आपका या आपके परिवार के किसी सदस्य का कोई झगड़ा चल रहा था? इस सवाल के जवाब में एक पीड़िता ने बताया, 'बीते दो साल से जाटों ने हमारा जीना हराम कर दिया है। वे हमें मेहनत-मजदूरी तक नहीं करने देते हैं। दूसरे गांवों में भी मजदूरी नहीं करने देते हैं। दो साल से हमारी जाति के 137 परिवार दर-ब-दर हैं। वे आज भी अपने गाय-गोरू के साथ हिसार के स्थानीय प्रमंडलीय उपायुक्त कार्यालय में ही दिन गुजारने को मजबूर हैं। कुछ धानक परिवार गांव में ही रह गए थे जिन पर हर रोज अत्याचार होता रहता है। फसाद के बीज तभी पड़

गए थे जब शामलात (सरकारी जमीन) की लगभग 22 एकड़ जमीन को जाट बिरादरी के लोग आपस में बांट रहे थे। हमारी जाति के लोगों ने कहा कि ये सरकारी जमीन है, जिस पर गांव की सभी 36 बिरादरियों का अधिकार है। आप लोग इस जमीन को आपस में कैसे बांट सकते हैं? सवाल उठाने का नतीजा आपके सामने है। '

बहुत जद्दोजहद और राजनीतिक दबाव के बाद 25 मार्च को हिसार सदर थाने में प्राथमिकी दर्ज कराई जा सकी। धारा 363, 366, 366-ए, 328, 373, 12-बी के तहत मामला दर्ज किया जा चुका है और अब तक पांच लोगों की गिरफ्तारी हो चुकी है जबकि अन्य नामजद फरार हैं। मेडिकल जांच में यौन शोषण की पुष्टि हो चुकी है और पीड़ितों ने पुलिस के सामने अपना-अपना बयान भी दर्ज करा दिया है। हिसार से लेकर दिल्ली के जंतर-मंतर पर इस आंदोलन को नेतृत्व दे रहे जगदीश काजला का मानना है कि राज्य सरकार की ओर से दबाव के कारण थाने में प्राथमिकी दर्ज करने से लेकर मेडिकल जांच और पांच लड़कों की गिरफ्तारी तक हुई। पुलिस कार्रवाई कर रही है तब फिर आप दिल्ली लड़ाई लड़ने क्यों आए हैं? इसके जबाव में जगदीश बताते हैं, 'सरपंच लड़कियों के घर वालों पर बहुत दबाव बनाने की कोशिश कर रहा था। बलात्कारियों से बच्चियों की शादी करवाने की बात कर रहा है। शादी करके तो ये लड़कियां बुरी तरह फंस जातीं और कुछ समय बाद इन्हें धक्के मार कर वे घर से बाहर निकाल देते। वैसे भी ये लड़कियां नाबालिग हैं। वे बस कानून के शिकंजे से बचने के लिए ऐसा प्रस्ताव दे रहे थे। '

हरियाणा के मानचित्र पर गोहाना, फरमाना, इसराना, मिर्चपुर आदि कई ऐसे नाम हैं, जो दलित उत्पीड़न के लिए सदियों तक रेखांकित होते रहेंगे। यहां दलितों की बस्तियां जलाने से लेकर दलित महिलाओं के साथ सामूहिक दुष्कर्म जैसी घटनाओं को अंजाम दिया जा रहा है। जाटों द्वारा सताए गए मिर्चपुर के 30 दलित परिवार आज भी कुंवर वेदपाल तंवर के फार्म हाउस में रह रहे हैं। वेदपाल जाति से राजपूत हैं। उन्हें इस साहसिक काम के लिए स्थानीय पुलिस और जाट बिरादरी का कोपभाजन भी बनना पड़ा। वेदपाल को जेल यातना से लेकर अपने बेटे की मौत जैसे दंश को झेलना पड़ा है। हिसार में वेदपाल का कारोबार अपनी ऊंचाइयों पर था, जो अब मंदी के दौर से गुजर रहा है। इन सबके बावजूद वे दलितों की मुक्ति की लड़ाई लड़ रहे हैं। वे इस लड़ाई को अपने बेटे की मौत का बदला लेने के संघर्ष के तौर पर देखते हैं।

वेदपाल भगाणा की इन बच्चियों को इंसाफ दिलाने की लड़ाई भी लड़ रहे हैं। उनकी मांग है कि 'सरकार इस पूरी घटना के सूत्रधार भगाणा गांव के सरपंच और खुले घूम रहे अपराधियों को गिरफ्तार करे। इस मामले का स्पीड ट्रायल हो। चारों पीड़िताओं को 15-15 लाख रु. मुआवजा दिया जाए। दो साल से सामाजिक बहिष्कार झेल रहे भगाणा के दलित-पिछड़ों को निकटवर्ती शहर में पुनर्वास करवाया

जाए। पीड़िताओं के लिए अच्छी शिक्षा की व्यवस्था की जाए और शिक्षा पूरी होने के बाद सरकारी नौकरी का इंतजाम हो। '

जंतर-मंतर पर बैठी इन पीड़िताओं को न्याय दिलाने की मुहिम में सोशल साइट फेसबुक से लेकर जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय (जेएनयू) और दिल्ली विश्वविद्यालय (डीयू) के छात्रों-शिक्षकों के अलावा प्रगतिशील साहित्यकार और पत्रकार शामिल हो रहे हैं। जेएनयू का छात्र संघ, छात्र संगठन एआइबीएसएफ से जुड़े छात्र-छात्राओं के अलावा प्रसिद्ध आलोचक वीरभारत तलवार (जेएनयू), गंगा सहाय मीणा (जेएनयू), रजनी दिसोदिया (डीयू), टेकचंद (डीयू), अनिता भारती (दलित साहित्यकार) भी कैंडल मार्च और केंद्रीय गृहमंत्री के घर पर हो रहे प्रदर्शन में शामिल हो रहे हैं।

भगाणा काण्ड, मीडिया, मध्यवर्ग, सत्ता की राजनीति और न्याय-संघर्ष की चुनौतियाँ

–कविता कृष्णापल्लवी

भगाणा की दलित बच्चियों के साथ बर्बर सामूहिक बलात्कार की घटना पर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और ज्यादातर अखबारों की बेशर्म चुप्पी जरा भी आश्चर्यजनक नहीं है।

ये अखबार पूँजीपतियों के हैं। यूँ तो पूँजी की कोई जाति नहीं होती, लेकिन भारतीय पूँजीवाद का जाति व्यवस्था और साम्प्रदायिकता से गहरा रिश्ता है। भारतीय पूँजीवादी तंत्र ने जाति की मध्ययुगीन बर्बरता को पुनर्संसाधित करके और उत्सादित (sublate) करके अपना लिया है। भारत के पूँजीवादी समाज में जाति संरचना का वर्णक्रम (spectrum) और वर्गीय संरचना का वर्णक्रम आज भी एक-दूसरे को अंशतः अतिच्छादित (overlap) करते हैं। गाँवों और शहरों के दलितों की 85 प्रतिशत आबादी सर्वहारा और अर्द्धसर्वहारा है। मध्य जातियों का बड़ा हिस्सा कुलक और फार्मर हैं। शहरी मध्यवर्ग का मुखर तबका (नौकरशाह, प्राध्यापक, पत्रकार, वकील, डॉक्टर आदि) ज्यादातर सवर्ण हैं। गाँवों में सवर्ण भूस्वामियों की पकड़ आज भी मजबूत है, फर्क सिर्फ यह है कि ये सामंती भूस्वामी की जगह पूँजीवादी भूस्वामी बन गये हैं। अपने इन सामाजिक अवलंबों के विरुद्ध पूँजीपति वर्ग कतई नहीं जा सकता। वैसे भी पूँजीवादी वोट बैंक के खेल के लिए जातिगत बँटवारे को बनाये रखना जरूरी है। सामाजिक ताने-बाने में जनवादी मूल्यों के अभाव के कारण, जो गरीब सवर्ण और मध्य जातियों की आबादी है, वह भी जातिवादी मिथ्या चेतना (false consciousness) की शिकार है।

इस पूरी पृष्ठभूमि में भगाणा काण्ड पर मीडिया की बेशर्म चुप्पी को आसानी से समझा जा सकता है। सवाल केवल मीडिया के मालिकों का ही नहीं है। ज्यादातर मीडियाकर्मी गैर दलित जातियों के हैं और उनके जातिवादी पूर्वाग्रहों की भी इस बेशर्म 'टोटल ब्लैकआउट' के पीछे एक अहम भूमिका है।

जो बुर्जुआ पार्टियों के दलित नेता और तथाकथित दलित बुर्जुआ पार्टियों के

नेता हैं, उनकी भूमिका तो और अधिक घृणास्पद है। सुशील कुमार शिंदे, कुमारी शैलजा, मीरा कुमार, उदितराज, अठावले, मायावती, रामविलास पासवान, पीएल पुनिया कितने नाम गिनाये जायें! पूँजी के ये सभी टुकड़खोर सिर्फ दलित वोट बैंक का लाभ लेते हैं, पर बर्बर से बर्बर दलित उत्पीड़न की घटनाओं पर न तो सड़क पर उतरते हैं और न ही कारगर कदम उठाने के लिए सरकार पर दबाव बनाते हैं।

जो दलित बुद्धिजीवी हैं, वे ज्यादातर सुविधाभोगी बात बहादुर हैं। ये बहुसंख्यक गरीब दलित आबादी की पीड़ा को भुनाकर अगियाबैताल दलित लेखक बुद्धिजीवी होने के तमगे तो खूब बटोरते हैं, लेकिन शेरपुर, लक्ष्मणपुर बाथे, बथानी टोला से लेकर मिर्चपुर और भगाणा तक पिछले चार दशकों के दौरान किसी भी घटना पर आंदोलनों में सड़क पर उतरने की इन्होंने जोखिम या जहमत नहीं उठायी। ये कायर सुविधाभोगी हैं, जो तमाम गरमागरम बातों के बावजूद, व्यवस्था के पक्ष में ही खड़े हैं।

कम्युनिस्ट आंदोलन का पुराना इतिहास दलित-उत्पीड़न के विरुद्ध मजबूती से खड़ा होने का इतिहास रहा है। लेकिन संसदीय जड़मानववाद और अर्थवादी भिखमंगई एवं सौदेबाजी की राजनीति में गले तक धँसने के बाद, सभी चुनावी वामपंथी पार्टियाँ भी दलितों के उत्पीड़न के विरुद्ध जुझारू आंदोलन और जाति-व्यवस्था विरोधी साहसिक सामाजिक-सांस्कृतिक आंदोलन संगठित कर पाने का जज्बा और कूवत खो चुकी हैं। हालत यह है कि इन पार्टियों के अधिकांश नेता, कार्यकर्ता और इनसे जुड़े लेखक, बुद्धिजीवी अपनी निजी जिन्दगी में जाति-धर्म के रीति-रिवाजों का पालन करते हैं। फिर दलित गरीबों की बहुसंख्यक आबादी भला क्यों इन्हें अपना माने और किस भरोसे के सहारे इनके साथ खड़ी हो? नक्सलबाड़ी किसान उभार से उपजे कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन का मुख्य आधार गाँवों में दलितों और आदिवासियों की भूमिहीन आबादी के ही बीच था और पहली बार दलितों ने उनके नेतृत्व में संगठित होकर अपने उत्पीड़न का मुँहतोड़ जवाब दिया था। आज भी, उन इलाकों में, जहाँ इस आंदोलन का आधार था, दलित ज्यादा शान से सिर उठाकर चलते हैं। लेकिन विचारधारात्मक कमजोरी और भारतीय क्रांति के कार्यक्रम की गलत समझ के कारण यह कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन फूट-दर-फूट का शिकार होकर बिखर गया। कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन आज नयी जमीन पर अपने पुनर्निर्माण की कोशिश कर रहा है। ऐसे में, उसका एक बुनियादी कार्यभार है कि वह जाति व्यवस्था के समूल नाश के दूरगामी संघर्ष और जातिगत उत्पीड़न के विरुद्ध जुझारू प्रतिरोध के फौरी संघर्ष को लगातार चलाये। जाति-व्यवस्था विरोधी संघर्ष भारत में समाजवाद के लिए संघर्ष का एक अनिवार्य बुनियादी घटक है। गैर दलित गरीब मेहनतकशों में जो जातिवादी मिथ्याचेतना है, उसके विरुद्ध सांस्कृतिक-वैचारिक-शैक्षिक धरातल पर लगातार काम करना होगा। सबसे पहले तो यह जरूरी है कि सच्चे कम्युनिस्ट

इस मायने में स्वयं नजीर पेश करें और यह साबित करें कि वे निजी जिन्दगी में जाति-धर्म की रूढ़ियों को रत्ती भर भी नहीं मानते। दूसरे, दलित मेहनतकशों को भी, लगातार उनके बीच काम करके, यह विश्वास दिलाना होगा कि इस या उस दलितवादी पार्टी या नेता का वोट बैंक बने रहकर वे खुद को ही ठगते हैं और पूँजीवादी व्यवस्था (जो जाति व्यवस्था की पोषक है) की उम्र बढ़ाने का काम करते हैं। साथ ही, जो सुविधाभोगी दलितवादी सिर्फ गरमागरम बात बहादुरी करते हैं, वे भी उन्हें ठगते हैं।

मेहनतकश चेतना की वर्ग चेतना को कुशाग्र बनाने के लिए जातिगत संस्कारों-पूर्वाग्रहों के विरुद्ध सतत् संघर्ष जरूरी है, यह सच है। दूसरी ओर यह भी सच है कि जातिगत पूर्वाग्रहों-संस्कारों को कमजोर करने और तोड़ने के लिए शिक्षा, प्रचार और वर्ग हितों को लेकर आंदोलन संगठित करने के माध्यम से जनता की वर्ग चेतना को ज्यादा से ज्यादा जागृत और मुखर किया जाये। ये दोनों प्रक्रियाएँ द्वंद्वात्मक रूप से जुड़ी हैं और साथ-साथ चलानी होंगी।

सबसे जरूरी यह है कि मेहनतकशों के विभिन्न संगठनों में दलित भागीदारी बढ़ाई जाये, गैर दलित मेहनतकशों की जातिवादी मिथ्याचेतना के विरुद्ध सतत् संघर्ष किया जाये और उनके बीच का पार्थक्य एवं विभेद तोड़ा जाये। वर्ग संगठनों के अतिरिक्त कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों को 'जाति-उन्मूलन मंच' जैसे संगठन अवश्य बनाने चाहिए। साथ ही, उन्हें जातिगत उत्पीड़न विरोधी मोर्चा भी गठित करना चाहिए। दलित मेहनतकशों की पूरी भागीदारी के बिना समाजवाद के लिए संघर्ष को आगे नहीं बढ़ाया जा सकता और समाजवाद के लिए लड़े बिना दलित अपने उत्पीड़न का कारगर प्रतिकार नहीं कर सकते। जाति व्यवस्था को अंतिम रूप से दफनाने का काम समाजवाद के कार्यक्रम पर अमल द्वारा ही संभव हो सकता है।

नवउदारवाद के दौर में पूँजी की बढ़ती बर्बरता उग्र साम्प्रदायिक फासीवाद के साथ-साथ बढ़ते बर्बर जातिगत उत्पीड़न और स्त्री उत्पीड़न के रूप में भी अभिव्यक्त हो रही है। भगाणा जैसी घटनाएँ लगातार देश के कोने-कोने में घट रही हैं पर मीडिया की 'चुप्पी के षड्यंत्र' के कारण वे राष्ट्रीय स्तर पर चर्चा व चिन्ता का विषय नहीं बन पातीं। भारत में बहुसंख्यावादी धार्मिक कट्टरपंथी फासीवाद, जातिवाद और पुरुष स्वामित्ववाद इन तीनों के तार सामाजिक ताने-बाने में एक दूसरे से उलझे हुए जुड़े हुए हैं। तीनों ही एक दूसरे को बढ़ावा देते हैं। धर्म, जाति और औरत की गुलामी—इन तीनों को अलग नहीं किया जा सकता। भगाणा जैसी घटनाएँ हमारे जमीर की दहलीज पर लगातार जोरदार दस्तक दे रही हैं। हमें लगातार लड़ना होगा और एक लम्बी लड़ाई लड़नी होगी।

साभार : मीडिया दरबार डॉट कॉम

हरियाणा में निराशा के विरुद्ध जलती आशा की एक किरण

–विद्या भूषण रावत

आशा सिर्फ एक किशोरी नहीं बल्कि एक उम्मीद का नाम है। आज जब हम हरियाणा में दलित महिलाओ पर लगातार बढ़ रही हिंसा एवं बलात्कार की बड़ी घटनाओं पर विचार कर रहे हैं तो घनघोर निराशा में भी ऐसे लोग दिखाई देते हैं जिनसे आशा की किरण जलती दिखाई देती है। जो अपने दुःख भूलकर दूसरों को हिम्मत बढ़ाने का कार्य करते हैं। सितम्बर 2012 में उनके गाँव से दबंगो ने आशा का अपहरण कर दुष्कर्म किया और छोड़ के भाग गए। हिम्मती आशा किसी तरह से अपनी नानी के घर आई, लेकिन इतने बड़े दुराचार के बाद उसके अंदर हिम्मत नहीं बची थी कि किसी को कुछ बता पाती। ऐसा लगा सब समाप्त हो गया क्योंकि किसी का भी सामना करने की हिम्मत नहीं बची। उसका स्वस्थ्य खराब हो गया। बहुत हिम्मत करके उसने एक हफ्ते बाद उसने अपने नाना-नानी को यह बात बताई। गाँव में गरीबी में भी अपनी बेटी को डाक्टर बनाने का सपना देखने वाले पिता के लिए यह बहुत असहनीय था क्योंकि उन पर रिपोर्ट न करवाने और मामले को रफा दफा करने का दवाब पड़ रहा था। पुलिस एक ओर उनकी रिपोर्ट नहीं लिख रही थी दूसरी ओर दबंगों ने जो उसके साथ हुए गैंग रेप का एमएमएस बनाया था, उसे जबरन उन्हें दिखाया। इसलिए अत्यंत दवाब में उन्होंने आत्महत्या कर ली। पिता के असामयिक मृत्यु के बाद आशा ने अपने साथ दुष्कर्म करने वालों से लड़ने की ठान ली और एफआईआर दर्ज करवाई। मुश्किलों से झूझ रही आशा को उसकी माँ और भाई का पूरा सहयोग रहा। आज वह अपने गम और तकलीफ भुलाकर हरियाणा में जातिवादी हिंसा का शिकार हो रही दलित लड़कियों के लिए लड़ रही है। पिछले दिनों में वह भागाणा के लड़कियों के संघर्ष में हिस्सा लेने के लिए दिल्ली आई और गृह मंत्री से भी मिली। आशा से मैंने विस्तार से बात की उसके संघर्षो को लेकर और भविष्य की रणनीतियों को लेकर। एक सामाजिक कार्यकर्ता के तौर

पर मैं यह मानता हूँ कि सेक्सुअल हिंसा का शिकार कोई भी महिला अपना वजूद नहीं खोती लेकिन भारत के कानूनों में महिला का नाम देना अपराध माना जाता है। मैं आशा की दिलेरी को सलाम करता हूँ लेकिन मुझे भी उनका असली नाम छुपाना पड रहा है। मुझे उम्मीद है कि हरियाणा की ये बहादुर बेटी अपनी बहुत से बहिनों के लिए एक रोल मॉडल है और सबको इज्जत के साथ जिंदगी जीने की प्रेरणा देगी। आशा के साथ प्रस्तुत है मेरी बातचीत :

प्रश्न : अपने विषय मैं बताएं। आपका बचपन कहाँ गुजरा और पिता क्या करते थे?

उत्तर : मेरा बचपन गाँव में गुजरा क्योंकि मेरे पिता खेती करते थे। हम पूर्णतया भूमिहीन परिवार थे और जीविकोपार्जन के लिए जाटों के खेतो में काम करना पड़ता था।

प्रश्न : आपके पिता ने मुश्किल हालातों में आपको पढ़ाया? क्या सोचते थे वह आपके बारे में? खासकर आपके भविष्य को लेकर?

उत्तर : हाँ, मेरे पिता की माली हालत बहुत खराब थे लेकिन उन्होंने मुझे पढ़ाया। वो मुझे डाक्टर बनाना चाहते थे।

प्रश्न : आप लोग पूरी तरह से भूमिहीन परिवार थे। गांव में दलित भूमिहीनों की क्या स्थिति है और उन्हें किस प्रकार की मुसीबते झेलनी पड़ती हैं?

उत्तर : क्योंकि लगभग सभी दलित परिवार भूमिहीन हैं तो उनकी निर्भरता ऊँची जाति के किसानों पर हैं जिनके यहाँ वे खेती करने जाते हैं।

प्रश्न : हरियाणा के गांव में एक लड़की की जिंदगी कैसे है। गांव वाले महिलाओ को किस नजर से देखते हैं? किस प्रकार के असुरक्षा लड़कियों को देखनी पड़ती है? क्या तुम्हारे पापा ने तुम्हारे इधर उधर जाने पर कभी रोक-टोक लगाई?

उत्तर : हरियाणा में दलित लड़की होना पाप है क्योंकि ये लोग उसे कुछ समझते ही नहीं हैं और किसी भी हद तक जा सकते हैं।

प्रश्न : आपके साथ जो हादसा हुआ वो कैसे हुआ?

उत्तर : 9 सितम्बर 2012 का दिन था। लगभग 2-3 मैं अपनी नानी के यहाँ जा रही थी तभी रास्ते में मुझे अपहत कर लिया गया। उन्होंने मुझसे कुछ नहीं कहा और खींचकर कार में डाल दिया। मैंने शोर मचाया लेकिन आस पास कोई नहीं था इसलिए कोई मदद भी नहीं हो सकी। वे लोग मेरे गाँव के ही थे।

प्रश्न : क्या आपको पहले से कोई धमकी मिल रही थी? क्या उन लोगो से आपके या परिवार की कोई रंजिश थी? कौन थे वे लोग जिन्होंने आपके ऊपर अत्याचार किया?

उत्तर : नहीं मुझे पहले से कोई धमकी नहीं थी और न ही हमारा उनसे कोई लेना देना लेकिन वे गाँव की बड़ी जाति के लोग थे। हाँ हादसे के बाद उन्होंने पैसे

ले-दे कर मामला दफन करने की कोशिश की और फिर सीधे धमकी देना शुरू किया। उन्होंने सीधे सीधे हमारे घर आकर हमें जान से मारने की धमकी दी। हरियाणा में दलितों के साथ ये अब आम हो गया है। उनको लगता है कि ये लोग कुछ नहीं कर पाएंगे।

प्रश्न : आपके साथ घटना के बाद आप अपनी नानी के यहाँ गयी। क्या आप थोड़ा जानकारी दे सकते हैं। किस वक्त? क्या किसी ने आपको मदद की या आप अपने आप पैदल या गाड़ी ऑटो से घर गयी?

उत्तर : मैं शाम को 7 बजे के समय नानी के यहाँ पहुंची। उन लोगो ने मुझे एक सुनसान जगह पे छोड़ दिया। मैंने किसी से लिफ्ट मांगी और स्कूटर पर पीछे बैठकर घर आ गयी।

प्रश्न : आपने अपने माता पिता को कब जानकारी दी कि आपके साथ ऐसी घटना हुई है? उनका क्या कहना था?

उत्तर : मैंने अपनी माँ को 18 तारीख को बताया और 19 को मेरे पिता ने आत्म हत्या कर ली।

प्रश्न : क्या पुलिस ने आपकी मदद की? आपने मेडिकल कब करवाया? डाक्टरों का रवैया कैसे था?

उत्तर : पुलिस का रवैया बिल्कुल ही सहयोग वाला नहीं था। मेरे पिता की मौत के बाद ही मैंने मेडिकल करवाया।

प्रश्न : आपको हरियाणा सरकार की तरफ से क्या सहायता मिली? क्या क्या वायदे किये गए थे? क्या आप ने शासन को इस सन्दर्भ में लिखा?

उत्तर : हरियाणा सरकार ने वायदे तो बहुत किये लेकिन हकीकत में कुछ भी नहीं किया। उन्होंने मुझे और मेरे भाई को नौकरी का वादा किया। हिसार में 200 गज का प्लाट और 25 लाख रुपए की आर्थिक मदद की बात भी कही लेकिन कोई भी वादा पूरा नहीं हुआ। मैं और भाई नौकरी के वास्ते नेताओ के चक्कर लगाते रहते हैं लेकिन उन्हें कोई मतलब नहीं। हरियाणा में दलितों के स्थिति बहुत खराब है और न कोई सुनने वाला है इसलिए अब लोगो को मदद करनी चाहिए।

प्रश्न : अपने तरह की हिंसा का शिकार लड़कियों से आप क्या कहना चाहेगी? ऐसे हादसों को रोकने में समाज के क्या भूमिका हो सकती है? आपके साथ समाज और आपके साथियों का रवैया कैसे रहा?

उत्तर : ऐसे हादसे किसी के साथ भी सकते हैं लेकिन हमें अपना हौसला नहीं खोना है और इस लड़ाई को बीच में नहीं छोड़ना है। समाज की भूमिका बहुत बड़ी है यदि हम दुष्कर्म की शिकार लड़कियों को गलत नजरों से ना देखें। मेरा परिवार मेरे साथ खड़ा है और यह मेरी बहुत बड़ी ताकत है। हरियाणा में अधिकांश लडकियां जिनके साथ ऐसी घटना हुई हैं वे गरीब परिवार की हैं जिनका कोई सुनने वाला

नहीं है क्योंकि समाज और परिवार भी उनके साथ खड़ा नहीं होता इसलिए उनकी तकलीफ ज्यादा होती है। मैं उनकी आवाज बनना चाहती हूँ। हालाँकि ज्यादातर मामलों में समाज साथ है लेकिन कमेंट करने वालों की कमी नहीं है।

मैं एक गर्ल्स कॉलेज में पढ़ती हूँ। मेरी कॉलेज की कुछ सहेलियां तो दिन भर मेरे साथ रहती हैं लेकिन सभी तो अच्छे नहीं होते। शुरुआत में कुछ लड़कियों ने मुझ पर कमेंट किये तो मैंने अपने कालेज की प्रिंसिपल से शिकायत की और उनके तुरंत एक्शन लेने के कारण ऐसी घटनाएं बंद हो गयी।

प्रश्न : आपकी माँ और भाई आपके साथ खड़े हैं? क्या कहना चाहेगी आप ऐसे माँ बापों को जिनके बच्चे इस प्रकार की हिंसा का शिकार होते हैं?

उत्तर : मैं खुशनसीब हूँ के मेरी माँ और भाई मेरे साथ खड़े हैं। मैं सभी से अनुरोध करूँगी के अपनी लड़कियों को जरूर पढ़ाएं और आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित करें। अपने बच्चो को खासकर लड़कियों को मजबूत करें और निराश न करें। मुझे दुःख है कि मेरे पिता ने आत्महत्या की। मैं कहना चाहती हूँ के कोई भी जंग मर कर नहीं जीती जाती। मैं ऐसे मां-बाप से कहना चाहती हूँ के वे अपने बच्चों को पूरा सपोर्ट करे और उन पर कोई नकारात्मक या व्यंगात्मक कमेंट न करे। मैं मीडिया से भी कहना चाहती हूँ वे ऐसे मामले उठाये और उन्हें मुकाम तक पहुंचाए। आज मुझे मीडिया ने सपोर्ट किया तो मुझे ताकत मिली। नहीं तो एक क्षण तो ऐसा था मैं हादसे के बाद पूरी तरह से टूट चुकी थी।

प्रश्न : देश दुनिया में लोग आपको पढ़ रहे हैं, क्या कोई अपील करना चाहेगी लोगो से?

उत्तर : अब जागने की जरूरत है ताकि और कोई लड़की इस प्रकार की घटना का शिकार न हो। हरियाणा में दलितों की खासकर दलित महिलाओं की हालत बहुत भयावह है और उन्हें किसी प्रकार की कोई सहायता नहीं है। अधिकांश दलित परिवार भूमिहीन हैं इसलिए उनकी बड़ी जातियों खासकर जाटों के ऊपर निर्भरता है। प्रशासन दलितों की मदद नहीं करता और जाट दलित महिलाओं को कुछ नहीं समझते इसलिए केवल सरकार पर निर्भरता से काम नहीं चलेगा। दुनिया भर के दलितों के लिए लड़ने वाले लोगो से मेरी अपील है के हरियाणा की दलित लड़कियों और दलित समाज की आत्मसम्मान की लड़ाई को मजबूत करें और उन्हें हर प्रकार की मदद उपलब्ध करवाएं।

प्रश्न : आप भगाणा की लड़कियों को न्याय दिलाने के लिए खड़ी हैं? क्या कहेंगी इन लड़कियों और उनके माता पिता से?

उत्तर : भगाणा की लड़कियां मजबूत है। हमें ये जंग जीतनी है। मैं हरियाणा सरकार से अनुरोध करती हूँ कि दलितों की भावनाओ को महसूस करे। मेरी प्रार्थना है कि इन लड़कियों को न्याय मिले।

प्रश्न : क्या आप हिसार कोर्ट के निर्णय से संतुष्ट हैं या चाहती हैं पुलिस अपने केस को और मजबूती से लड़े?

उत्तर : कोर्ट के निर्णय से मैं बिल्कुल संतुष्ट नहीं हूँ। मैं तो क्या कोई भी ऐसे निर्णय से संतुष्ट नहीं होगा। ऐसे निर्णय दर्द देने वाले होते हैं। पुलिस को अपना काम ठीक से करना चाहिए था। पुलिस अगर ठीक से काम करती तो ऐसे निर्णय नहीं आता। यदि आप डिसीजन की कॉपी पढ़ेंगे तो आप को लगेगा किस बिना पे छोड़ा गया है। वैसे कल कोर्ट ने दुबारा नोटिस जारी किया के 4 लोगो को बेल कैसे दे दी गयी। अब मुझे लग रहा है कि न्याय होगा।

प्रश्न : आपका सपना।

उत्तर : मैं वकील बनना चाहती हूँ और साथ ही साथ सामाजिक आंदोलनों से जुड़ना चाहती हूँ ताकि मेरी जैसे लड़कियों को मदद मिल सके और उनका कोई शोषण न कर सके। मैं चाहती हूँ ऐसे अपराध न हो और इसके लिए हमें लड़कियों और समाज को जागरूक करने की जरुरत है ताकि वे पढ लिख सके और अपना जीवन इज्जत से जी सकें। मेरा सपना हिंसा की शिकार इन लड़कियों के लड़ाई लड़ना है ताकि वे अपने जिंदगी अच्छे से जी सके और उन्हें न्याय मिल सके।

साथी, भगाणा की दलित बच्चियां जंतर-मंतर पर अब भी आपकी राह देख रही हैं!

-प्रमोद रंजन

22 अप्रैल 2014 की दोपहर में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के कुछ पत्रकारों ने हरियाणा भवन, दिल्ली पर भगाणा बलात्कार पीडितों के प्रदर्शन का वहिष्कार कर दिया था। बहिष्कार करने वाले इलेक्ट्रॉनिक मीडिया संस्थानों के दफ्तर से उसी दिन शाम को आंदोलनकारियों को फोन आया कि वे आंदोलन का 'वहिष्कार' नहीं कर रहे। खबर दिखाएंगे। संभवतः उनका फैसला मीडिया संस्थानों में खूब पढे जाने वाले भडास फोर मीडिया व अन्य सोशल साइटस पर वहिष्कार की खबर प्रसारित होने के कारण हुआ।

जानते हैं पिछले आठ दिनों से दिल्ली के जंतर-मंतर पर धरना पर बैठे भगाणा के लगभग 100 गरीब दलित परिवारों का इन महिलाओं, पुरुषों, बच्चों के साथ दिल्ली पहुंचने के पीछे क्या मनोविज्ञान रहा है? उन्हें लगता है कि यहां का मीडिया उनका दर्द सुनाएगा और दिल्ली उन्हें न्याय दिलाएगी। उन्होंने निर्भया कांड के बारे सुन रखा है। उन्हें लगा कि उनकी बच्चियों को भी दिल्ली पहुंचे बिना न्याय नहीं मिलेगा। यही कारण था कि वे अपनी किशोरावस्था को पार कर रही गैंग-रेप पीडित चारों लडकियों को साथ लेकर आए। अन्यथा चेहरा ढक कर घर से बाहर निकलने वाली इन महिलाओं को अपनी बेटियों की नुमाईश के कारण भारी मानसिक पीडा से गुजरना पड रहा है।

जानता हूं, ऊंची जातियों में पैदा हुए मेरे पत्रकार साथी एक बार फिर कहेंगे कि हमने तो उनकी खबर नहीं रोकी। इस आंदोलन में जितनी भीड थी, उसके अनुपात में उन्हें जगह तो दी ही।

लेकिन साथी! क्या आपका दायित्व इतना भर ही है? क्या खबर का स्पेस सिर्फ भीड और बिकने की क्षमता पर निर्भर करना चाहिए? क्या मीडिया का समाज के वंचित तबकों के प्रति कोई अतिरिक्त नैतिक दायित्व नहीं बनता? क्या अपनी छाती पर हाथ रख कर आप बताएंगे कि अन्ना आंदोलन के पहले ही दिन जो विराट देश व्यापी कवरेज आपने दिया था, उस दिन कितने लोग वहां मौजूद थे? क्या निर्भया की याद में कैंडिल जलाने वालों की संख्या कभी भी भगाणा के आंदोलनकारियों से ज्यादा थी? वर्ष 2012 में तो इसी जंतर-मंतर पर अन्ना हजारे के आंदोलन के बगल में ही भणाना से वहिष्कृत ये दलित-पिछडे भी सैकडों की संख्या में धरना पर बैठे थे। लेकिन मीडिया ने उन पर

कोई ध्यान नहीं दिया। कहने की आवश्यकता नहीं कि अगर उस समय इन्हें मीडिया की पर्याप्त तवज्जो मिली होती तो कम से कम बलात्कार की यह घटना तो नहीं ही होती।

जब भगाणा के आंदोलनकारियों को धरने पर बैठे चार दिन हो गये और आपने कोई कवरेज नहीं दी तो उन्हें लगा कि शायद निर्भया को न्याय जेएनयू के छात्र-छात्राओं के आंदोलन की वजह से मिला। वे 19 अप्रैल को जेएनयू पहुंचे और वहां के छात्र-छात्राओं से इस आंदोलन को अपने हाथ में लेने के लिए गिड़गिड़ाए। 22 अप्रैल को जेएनयू छात्र संघ (जेएनएसयू) ने अपने पारंपरिक तरीके के साथ जंतर-मंतर और हरियाणा भवन पर जोरदार प्रदर्शन किया। लेकिन क्या हुआ? कहां था 'आज तक', 'एवीपी न्यूज', 'एनडीटीवी'? सबको सूचना दी गयी, लेकिन पहुंचे सिर्फ हरियाणा के स्थानीय चैनल, और उन्होंने भी आंदोलन के वहिष्कार की घोषणा कर आंदोलनकारियों के मनोबल को तोडा ही।

साथी, चुनाव का मौसम है। हरियाणा में कांग्रेस की सरकार है। भगाणा के चमार और कुम्हार जाति के लोग पिछले दो साल से जाटों द्वारा किये गये सामाजिक वहिष्कार के कारण अपने गांव से बाहर रहने को मजबूर हैं। धानुक जाति के लोगों ने वहिष्कार के बावजूद गांव नहीं छोडा था। यह चार बच्चियां, जिनमें दो तो सगी बहनें हैं, इन्हीं धानुक परिवारों की हैं, जिन्हें एक साथ उठा लिया गया तथा दो दिन तक लगभग एक दर्जन लोग इनके साथ गैंग-रेप करते रहे। यह सामाजिक वहिष्कार को नहीं मानने की खौफनाक सजा थी। 23 मार्च को हुए इस गैंग रेप की एफआईआर, धारा 164 का बयान, मेडिकल रिपोर्ट आदि सब मौजूद है। ऐसे में, क्या यह आपका दायित्व नहीं था कि आप कांग्रेस के बडे नेताओं से यह पूछते कि आपके राज में दलित-पिछडों के साथ यह क्या हो रहा है? किस दम पर आप दलित-पिछडों का वोट मांग रहे हैं? आप मोदी के 'पिछडावाद' की लहर पर सवार भाजपा के वरिष्ठ नेताओं की बाइट लेते कि पिछले चार-पांच सालों से हरियाणा से दलित और पिछडी लडकियों के रेप की खबरें लगातार आ रही हैं लेकिन इसके बावजूद आपकी राजनीति सिर्फ जाटों के तुष्टिकरण पर ही क्यों टिकी हुईं हैं? आप अरविंद केजरीवाल से पूछते कि भाई, अब तो बताओ कौन है आपकी नजर में आम आदमी? अरविंद केजरीवाल तो उसी हिसार जिले के हैं, जहां यह भगाणा और मिर्चपुर गांव है। लेकिन क्या आपने कभी आम आदमी पार्टी को हरियाणा के दलितों से लिए आवाज उठाते देखा? जबकि उनके हरियाणा के मुख्यमंत्री पद के संभावित उम्मीदवार योगेंद्र यादव यह कहते नहीं थकते कि दिल्ली में उन्हीं सीटों पर उनकी पार्टी को सबसे अधिक वोट मिले जहां गरीबों, दलितों और पिछडों की आबादी थी। आप क्यों नहीं उनसे पूछते कि दलित-पिछडों के वोटों का क्या यही इनाम आप दे रहे हैं? बात-बात पर आंदोलन करने वाला दिल्ली का आपका कोई भी विधायक क्यों जंतर-मंतर नहीं जा रहा?

साथी, अब भी समय है। भगाणा की दलित बच्चियां जंतर-मंतर पर अब भी आपकी राह देख रही हैं।

(जनसत्ता के 24 अप्रैल, 2014 अंक में यह टिप्पणी संपादित रूप में प्रकाशित हुई है।)

अध्याय-2

दिल्ली की निर्भया

दिल्ली की निर्भया

कब रूकेगा यह सिलसिला

आज महिलाएं हर वो कीर्तिमान रच और तोड़ रही हैं जिनकी कभी कल्पना नहीं की जाती थी। पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर हर चुनौती स्वीकार कर रही हैं। सुनीता विलियम्स अंतरिक्ष में सबसे ज्यादा समय बिताती हैं, तो मलाला यूसुफजई तालिबानी सोच से खुली बगावत कर लेती हैं। वर्जनाएं टूट रही हैं। ऐसे में नारी को अबला कहना उसका एक तरह से अपमान ही होगा लेकिन उनके खिलाफ अपराधों की फेहरिस्त देखकर उन्हें सबला करने में हिचक होती है।

सिर्फ बातों की सरकार

–नीलू रंजन

गैंग रेप के बाद पूरे देश में मचे हाहाकार के बाद गृह मंत्री सुशीलकुमार शिंदे भले ही दिल्ली पुलिस में महिलाओं की भर्ती के लिए विशेष अभियान चलाने का दावा कर रहे हों, लेकिन सच्चाई यही है कि पिछले दशक में विभिन्न आयोगों की रिपोर्टों के बावजूद सरकार ने पुलिस बल को महिलाओं के प्रति संवेदनशील बनाने के लिए कोई ठोस कदम नहीं उठाया है। हालत यह है कि 1980 में पुलिस सुधार आयोग ने महिलाओं की संख्या बढ़ाने की सिफारिश की थी, लेकिन 30 साल बाद देश की राजधानी के सभी थानों में तैनाती के लिए महिला पुलिस अधिकारी तक नहीं हैं।

1861 में भारत में पुलिस कानून बनाने के लगभग 120 साल बाद पुलिस सुधार आयोग ने पुलिस को महिलाओं के प्रति संवेदनशील बनाने की जरूरत पर बल दिया। इसके तहत सब इंस्पेक्टर और इंस्पेक्टर स्तर पर महिलाओं की अधिक-से-अधिक नियुक्ति की सिफारिश की गई। लेकिन पुलिस सुधार आयोग की इस रिपोर्ट पर

अमल करने के बजाय उसे ठंडे बस्ते में डाल दिया गया। इसके 25 साल बाद दूसरे प्रशासनिक सुधार आयोग ने 2005-06 में पुलिस सुधार की जरूरत बताते हुए महिलाओं के लिए 33 फीसद पद आरक्षित करने की सिफारिश की। पर गृह मंत्रालय को छह साल बाद 2012 में इन सिफारिशों का ख्याल आया। पिछले अगस्त में गृह मंत्रालय ने प्रशासनिक सुधार आयोग की 152 सिफारिशों को लागू करने पर राज्य सरकारों से उनकी राय मांगी। पर पांच महीने बीत जाने के बाद भी एक भी राज्य ने इस पर अपनी राय नहीं भेजी है। जाहिर है पुलिस सुधार और उसमें महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने का एजेंडा गृह मंत्रालय और राज्य सरकारों की प्राथमिकता में कभी नहीं रहा।

पुलिस व प्रशासनिक सुधार आयोग की रिपोर्टों के अलावा पुलिस को महिलाओं के प्रति ज्यादा संवेदनशील बनाने के लिए सोली सोराबजी ने मॉडल पुलिस कानून का मसौदा तैयार किया। सुप्रीम कोर्ट के निर्देश के बाद बने इस मसौदे के आधार पर केन्द्र और सभी राज्य सरकारों को अपने-अपने पुलिस कानून बनाने थे। लेकिन छह साल बाद न तो केन्द्र और न ही किसी राज्य सरकार ने नया पुलिस कानून बनाया है।

बात सिर्फ पुलिस में महिलाओं की संख्या बढ़ाने तक सीमित नहीं है। आजाद भारत में सरकार पुलिस की संख्या बढ़ाने के प्रति भी गंभीर नहीं दिखी है। जहां दुनिया भर में औसतन एक लाख जनसंख्या पर 270 पुलिसवाले हैं, वहीं भारत में इनकी संख्या 120 है। इनमें भी आधी पुलिस बल वीवीआईपी की सुरक्षा या रैलियों व प्रदर्शनों को नियंत्रित करने के लिए तैनात होती हैं। सुप्रीम कोर्ट के स्पष्ट निर्देशों को मानने के बजाय सरकार पिछले छह सालों से किसी न किसी बहाने इसे टरकाने की कोशिश करती रही है। ऐसी स्थिति में प्रधानमंत्री, सोनिया गांधी समेत तमाम मंत्रियों के महिलाओं को सुरक्षा देने के दावे पर भरोसा करना आसान नहीं होगा।

–दैनिक जागरण, 30 दिसम्बर, 2012

फिर भी बढ़ रहे हैं रेप केस

मनीष अग्रवाल। नई दिल्ली : अगर आप यह सोचते हैं कि 16 दिसंबर की रात चलती बस में स्टूडेंट के साथ हुई दरिंदगी की शर्मनाक घटना के बाद रेप के मामलों में कुछ कमी आई होगी, तो पुलिस के ये आंकड़े आपको चौंका देंगे। 17 दिसंबर से 31 दिसंबर के बीच ही दिल्ली में रेप और गैंगरेप के 63 मामले दर्ज किए गए हैं। पूरे दिसंबर की बात करें, तो कुल 85 मामले दर्ज किए गए।

दिल्ली पुलिस के चौंकाने वाले आंकड़े

रेप के मामले

2010	**2011**	**2012**
507	568	700

22 केस 1 से 16 दिसंबर तक

63 केस 17 से 31 दिसंबर तक

85 केस दर्ज हुए हर महीने नवंबर तक

56 केस दर्ज हुए हर महीने नवंबर तक

615 केस जनवरी से नवंबर तक

ये आंकड़े बताते हैं कि देश भर में लगातार हो रहे विरोध-प्रदर्शनों और सरकार व कोर्ट की तरफ से महिलाओं की सुरक्षा के लिए उठाए गए कदमों के बावजूद लोगों में कानून का कोई खौफ नहीं है। ज्यादा हैरानी की बात यह है कि ऐसा नहीं है कि 16 दिसंबर की घटना के बाद महिलाएं शिकायत लिखाने आने लगी हैं या पुलिस मामले दर्ज करने में ज्यादा एक्टिव हो गई हैं, बल्कि इस तरह के मामलों में वाकई कोई कमी नहीं आई है।

दिल्ली में 2008 के बाद से रेप की वारदात में लगातार बढ़ोतरी हो रही है। 2010 में रेप के हर महीने करीब 42 मामले दर्ज किए गए। वहीं 2011 में हर महीने 47 और पिछले साल 60 मामले सामने आए। 2011 में छेड़खानी के 657 यानी 55 मुकदमें हर महीने दर्ज हुए जबकि 2012 में 15 नवंबर तक 591 यानी करीब 56 मामले दर्ज हुए।

गंभीर मामलों में होगी फांसी!

नई दिल्ली, 1 फरवरी (देशबन्धु) महिलाओं के खिलाफ होने वाले यौन हिंसा को लेकर बनाई गई जस्टिस वर्मा की समिति के सुझावों पर आज कैबिनेट ने मुहर लगा दी। हालांकि सरकार ने सभी सिफारिशों को पूरी तरह नहीं माना है, साथ ही कुछ फेरबदल भी किए हैं। सरकार ने इन सुझावों के अनुरूप मौजूदा कानून को सख्त बनाने और संशोधन के लिए एक अध्यादेश को शुक्रवार को मंजूरी दे दी। यह बैठक करीब 2 घंटे चली। अभी इस अध्यादेश को हस्ताक्षर के लिए राष्ट्रपति के पास अनुमोदन के लिए भेजा जाएगा, ताकि इसे कानून का रूप दिया जा सके।

सूत्रों के अनुसार, अध्यादेश में नाबालिगों द्वारा दुष्कर्म सहित किए जाने वाले अपराधों से संबंधित विभिन्न कानूनों तथा भारतीय दंड संहिता में संशोधन का प्रावधान है। सूत्रों ने कहा कि यह अध्यादेश संसद के बजट सत्र से तीन हफ्ते पहले लाया

गया है, जिसका यह संदेश जाएगा कि सरकार महिलाओं के विरुद्ध अपराधों को रोकने के प्रति पूरी तरह गंभीर है।

जस्टिस वर्मा की समिति ने बलात्कार के मामलों में फांसी की सजा की सिफारिश नहीं की थी, पर माना जा रहा है कि सरकार ने जो अध्यादेश जारी किया है, उसमें फांसी की सजा देने तक का प्रावधान है। इसके अलावा गैंगरेप में उम्रकैद की सजा को मंजूरी दे दी गई है, गैंगरेप के मामलों में अब 20 साल की सजा का प्रावधान किया गया है जो कि पहले सिर्फ 7 साल ही थी। किसी महिला को लूटा जाता है तो उसमें मिलने वाली सजा में भी इजाफा हो सकता है। अध्यादेश के अनुसार, पीड़ित महिला को मुआवजे में भी बढ़ोतरी हो सकती है, आपसी सहमति से संबंध बनाने की उम्र 18 से घटाकर 16 करने की भी सिफारिश को भी फिलहाल नकार दिया गया है। बलात्कार के मामले की जांच में अगर सरकारी कर्मचारी सहयोग नहीं करता है तो उसकी सजा भी 1 साल से बढ़कर 5 साल तक हो सकती है। सूत्रों के अनुसार मंत्रिमंडल ने समिति की इस सिफारिश पर असहमति व्यक्त की, जिसमें पति पत्नी के बीच जबरन शारीरिक संबंधों को बलात्कार से जोड़ा गया था।

उल्लेखनीय है कि दिल्ली में एक पैरा मेडिकल छात्रा के साथ गत 16 दिसंबर की रात बलात्कार और उसकी हत्या की घटना पर देशव्यापी प्रतिक्रिया हुई थी तथा उत्तेजित युवावर्ग ने सड़कों पर उतरकर व्यापक विरोध किया था। जनाक्रोश को ध्यान में रखकर सरकार ने न्यायमूर्ति वर्मा समिति का गठन किया था, जिसने 630 पृष्ठ की अपनी रिपोर्ट गत 23 जनवरी को सरकार को सौंपी थी। न्यायमूर्ति वर्मा ने अपनी रिपोर्ट में पुलिस प्रशासन, अस्पतालकर्मियों और राजनीतिक नेतृत्व के खिलाफ तीखी टिप्पणियां की थीं, जिसके बाद प्रधानमंत्री ने एक पत्र में उन्हें आश्वस्त किया था कि सरकार समिति की सिफारिशों पर त्वरित कार्रवाई करेगी। सूत्रों के अनुसार सरकार भारतीय दंड संहिता में बलात्कार के स्थान पर यौन हमला शब्द के इस्तेमाल के पक्ष में है, ताकि यौन अपराधों का दायरा बढ़ाया जा सके। यौन हमले में महिला को निर्वस्त्र करना, उसे घूरना या उसका पीछा करना आदि कृत्य शामिल हैं। बताया जाता है कि इस अध्यादेश को राष्ट्रपति के सामने शनिवार को पेश किया गया, इसके हस्ताक्षर के बाद इसे संसद के बजट सत्र में ही पेश किया जाएगा।

–देशबन्धु, 2 फरवरी, 2012

महिलाओं की सुरक्षा के लिए नया चार्टर

जागरण ब्यूरो, नई दिल्ली : महिलाओं के खिलाफ अपराधों को लेकर जनाक्रोश के बाद सरकार ने सुधार का चरणबद्ध कार्यक्रम तैयार किया है। महिलाओं की सुरक्षा के कानूनी प्रावधानों को मजबूत करने के लिए अध्यादेश लागू करने के साथ ही सरकार ने विभिन्न मंत्रालयों के तहत उन्हें हिफाजत का अहसास दिलाने वाले उपायों की योजना बनाई है, जिसमें पुलिस व प्रवर्तन एजेंसियों की जवाबदेही पर जोर होगा।

कैबिनेट सचिवालय ने केंद्र सरकार के सात मंत्रालयों के सचिवों के साथ बैठक कर 28 उपायों की फेहरिस्त जारी की है। सातों मंत्रालयों के सचिव इनके अमल पर निगरानी रखेंगे। कैबिनेट सचिवालय व प्रधानमंत्री कार्यालय को हर माह रिपोर्ट भी देंगे। इनमें पुलिस व्यवस्था में बदलाव, मोटर वाहन अधिनियम की समीक्षा, महिलाओं के प्रति अपराधों से निपटने की कार्रवाई को ज्यादा प्रभावी व संवेदनशील बनाने के उपाय और अन्य प्रशासकीय कदम शामिल हैं।

ये हैं सुरक्षा के उपाय

♦ महिलाओं से दुर्व्यवहार करने वालों की जानकारी राष्ट्रीय अपराध ब्यूरो की वेबसाइट पर उपलब्ध होगी ♦ थाना क्षेत्र पर ध्यान दिए बिना जल्द एफआईआर दर्ज करने की सुविधा ♦ पीड़िता की मदद के लिए आगे आने वालों को दिक्कत का सामना न करना पड़े ♦ मोटर वाहन नियमों की समीक्षा की जाएगी ♦ सड़क परिवहन और राजमार्ग मंत्रालय तकनीकी विशेषज्ञों व पुलिस प्रतिनिधियों के सलाह-मशविरा पर फैक्ट्री फिटिड शीशों में रंग की स्वीकार्य सीमा तय करेंगे। सार्वजनिक वाहनों में पर्दों पर भी गौर किया जाएगा ♦ दिल्ली में सार्वजनिक वाहन के ड्राइवर/कंडक्टर/हेल्पर/पूरे कर्मीदल के लिए शत-प्रतिशत सत्यापन जरूरी है, जिसमें बायोमीट्रिक पहचान शामिल होगी ♦ बस के मालिक/ड्राइवर के विवरण व परमिट और लाइसेंस की जानकारी बस के अंदर और बाहर स्पष्ट रूप से होगी। बस परिचालन नियंत्रण कक्ष गठन करने के साथ सार्वजनिक वाहनों में जीपीएस अनिवार्य। सड़क परिवहन व राजमार्ग मंत्रालय जारी करेगा राज्यों को परामर्श ♦ परमिट शर्तों के उल्लंघन पर जुर्माने में बढ़ोतरी ♦ दिल्ली सरकार सार्वजनिक वाहनों के परमिटों में संशोधन की मसौदा अधिसूचना जारी करेगी। अंतिम अधिसूचना एक महीने में जारी होगी। अन्य राज्यों में इसी तर्ज पर वाहन परमिट में संशोधन लागू होंगे ♦ थाने में तैनात व्यक्तियों की संवेदनशीलता और महिला अपराधों की शिकायतों को दर्ज करने में थाने/एसएचओ के रिकार्ड को निरीक्षण अधिकारी दर्ज करें ♦ लापरवाह पुलिसकर्मियों व अधिकारियों पर कड़ी कार्रवाई होगी ♦ बीट ड्यूटी अथवा पुलिस स्टेशन पर तैनात सिपाही के स्तर पर लिंग संवेदनशीलता बनाए रखी जाए ♦ निरीक्षण अधिकारी को जवाबदेह ठहराया जाएगा। ♦ सभी स्तरों पर पुलिसकर्मी की वार्षिक निष्पादन मूल्यांकन रिपोर्ट तैयार करते समय उसकी महिलाओं के प्रति संवेदनशीलता पर टिप्पणी की जाए। इसे पदोन्नति के समय देखा जाएगा। ♦ शिक्षण संस्थानों, सिनेमाघरों, मॉल और बाजार वाले इलाकों की पीसीआर वेन में महिला पुलिसकर्मियों की तैनाती प्रस्तावित है।

ऐसे थाने बनेंगे जहां सिर्फ महिलाएं होंगी ♦ व्यापारिक संघ, आरडब्ल्यू, व्यावसायिक कार्यालय भवन के प्रबंधक, मॉल, सिनेमाघर, एनजीओ के सहयोग से सीसीटीवी लगाने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा ♦ नगर निकायों में सार्वजनिक स्थानों में सड़कों पर प्रकाश व्यवस्था की समीक्षा हो ♦ महिला व बाल विकास विभाग यौन हिंसा पीड़ितों को मुआवजा देने की योजना तथा मनोवैज्ञानिक व अन्य सहायता उपलब्ध कराने की योजना लागू करेगा। योजना 2013-14 से प्रायोगिक आधार पर देश के 100 जिलों में लागू होगी ♦ 100 नम्बर की तर्ज पर सभी आपातकालीन स्थितियों से निपटने को देशव्यापी तीन अंकों का नंबर शुरू करने का प्रस्ताव। गृह मंत्रालय दूरसंचार विभाग के साथ मिलकर फरवरी 2013 के आखिर तक इस संबंध में व्यवस्था करने और उसे संचालित करने के बारे में मूल परिकल्पना तैयार करेगा। ♦ ऐसी हेल्पलाइन होगी जो महिलाओं के लिए समर्पित होगी। पूरे देश में 181 पर यह सुविधा शुरू की जा सकती है। ♦ शिक्षा के हर स्तर पर स्त्री-पुरुष समानता से संबंधित विषय शामिल होंगे।

–दैनिक जागरण, 5 फरवरी, 2013

सुप्रीम कोर्ट के दिशा-निर्देश

अपने 6 दिसंबर 2012 के फैसले में सुप्रीम कोर्ट ने त्वरित सुनवाई के कानूनी प्रावधान (सीआरपीसी धारा 309) को सख्ती से लागू करने का निर्देश दिया है। इसमें बलात्कार जैसे मामलों की जांच और सुनवाई दो महीनों में पूरी करने की बात कहीं गई है। साथ ही अदालतों को आगाह किया गया है कि वे वेवजह के स्थगन के आदेश न दें। इससे पहले के फैसलों में दिए निर्देशों पर अमल नहीं हुआ।

19 अक्टूबर 1994 को दिल्ली डोमेस्टिक वर्किंग वूमेंस बनाम भारत सरकार मामले में सुप्रीम कोर्ट ने अपने ऐतिहासिक फैसले में आठ दिशा-निर्देश दिए।

1. यौन उत्पीड़न की शिकार को वकील मुहैया कराया जाएगा और उस वकील को क्रिमिनल जस्टिस सिस्टम की अच्छी जानकारी होनी चाहिए। जिसकी जिम्मेदारी सिर्फ इतनी नहीं होगी कि वह पीड़िता को कानूनी कार्यवाई की जानकारी दे, उसे थाने और अदालत में कानूनी मदद बल्कि यह भी बताएगा कि पीड़िता अन्य एजेंसियों (माइंड काउंसलिंग और चिकित्सीय मदद) से मदद किस प्रकार प्राप्त कर सकती है। इस कानूनी मदद की निरंतरता सुनिश्चित करना भी जरूरी है। जो व्यक्ति पीड़िता को थाने में कानूनी मदद दे, वही उसे अंत तक अदालत में भी मदद करे।
2. पीड़िता को कानूनी मदद थाने में ही दी जानी चाहिए, क्योंकि दुष्कर्म पीड़ित महिला बहुत ही परेशान हालत में थाने पहुंचती है और ऐसे में उस वक्त और उससे सवाल जवाब करते समय दी गई कानूनी मदद बहुत कारगार होगी।
3. पुलिस का कर्त्तव्य होगा कि वह पीड़िता से कोई भी प्रश्न करने से पहले उसे वकील की मदद लेने के अधिकार के बारे में बताएगी। पुलिस रिपोर्ट में यह लिखा जाएगा कि पीड़िता को इस बारे में सूचित किया गया।
4. जो वकील इस काम में मदद करना चाहते हैं उनके नामों की सूची थाने में मौजूद रहेगी क्योंकि हो सकता है कि पीड़िता की जानकारी में कोई वकील न हो या उसका वकील उपलब्ध न हो।
5. पुलिस की अर्जी पर कोर्ट जल्दी से जल्दी वकील नियुक्त करेगा लेकिन पीड़िता से पूछताछ में कोई देरी न हो, इसके लिए कोर्ट से अनुमति मिलने से पहले वकील को थाने में ही पीड़िता की मदद करने का अधिकार है।
6. दुष्कर्म के सभी मामलों में पीड़िता की पहचान गोपनीय रखी जाएगी।
7. संविधान के अनुच्छेद 38 (1) के तहत जरूरी है कि एक क्रिमिनल इंजरीस कंपनसेशन बोर्ड गठित किया जाए। पीड़िता को तत्काल आर्थिक हानि होती है और कई बार वह इतने सदमें में आ जाती है कि वह अपनी नौकरी जारी नहीं रख पाती है।
8. अदालतें अपराधी को दोषी ठहराते समय पीड़िता को मुआवजा दिलाएंगे। बोर्ड मुआवजा तय करते समय पीड़िता को पहुंचे शारीरिक और मानसिक आघात, आर्थिक नुकसान, बलात्कार के कारण ठहरे गर्भ व बच्चे के जन्म के खर्च को भी ध्यान रखेगा।

–दैनिक जागरण, 30 दिसम्बर, 2012

यौन अपराधों के लिए सख्त कानून आज से

महिलाओं के खिलाफ यौन अपराधों की रोकथाम के लिए केंद्र सरकार द्वारा लाए गए अध्यादेश को राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी ने मंजूरी दे दी है। इससे बलात्कार के जघन्य मामलों में फांसी और ताउम्र कैद की सजा देना संभव होगा।

गृह मंत्रालय सोमवार को इसे अधिसूचित करेगा, इसके बाद देश भर में नया कानून लागू हो जाएगा। केन्द्रीय मंत्रिमंडल ने एक फरवरी को आपराधिक कानून में संशोधन अध्यादेश-2013 को मंजूरी प्रदान की थी। शनिवार को इसे राष्ट्रपति की मंजूरी के लिए भेजा गया था। रविवार को गृह मंत्रालय के प्रवक्ता ने बताया कि

राष्ट्रपति ने अध्यादेश को मंजूरी प्रदान कर दी है। दिल्ली में गैंगरेप की घटना के बाद जस्टिस वर्मा समिति की कई सिफारिशों को स्वीकार करते हुए इस अध्यादेश में महिलाओं के खिलाफ यौन अपराधों को रोकने के पुख्ता इंतजाम किए गए हैं। बलात्कार की जगह पर यौन उत्पीड़न शब्द का इस्तेमाल करते हुए कानून को व्यापक बनाया गया है।

आगे क्या होगा?

- अधिसूचित होते ही अध्यादेश का कानून के रूप में अमल शुरू हो जाएगा। छह महीने में सरकार को इसे संसद में पारित कराना होगा।
- आपराधिक कानून में संशोधन संबंधी विधेयक संसदीय समिति के पास है, उसने हाल में वर्मा समिति की रिपोर्ट भी मंगाई है।
- अब समिति को कोशिश करनी होगी कि बजट सत्र खत्म होने के पूर्व अध्यादेश के प्रावधानों को उसमें शामिल करते हुए पारित कराए।
- यदि छह महीने के भीतर ऐसा नहीं होता है, तो अध्यादेश निष्प्रभावी हो जाएगा। लेकिन इसके बाद सरकार द्वारा अगले छह महीनों का समय हासिल कर सकती है।

महिला संगठनों का विरोध

कुछ महिला संगठनों की तरफ से अध्यादेश पर आपत्तियां आई हैं। सरकार के पास अभी विकल्प है कि प्रस्ताव विधेयक में उन्हें शामिल करें।

–हिन्दुस्तान, 4 फरवरी, 2013

अध्याय-2

दिल्ली की निर्भया और बुद्धिजीवी

अभूतपूर्व राष्ट्रीय शर्मिंदगी

–सी. उदय भाष्कर

भारत के पास विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र होने की संदेहास्पद विशिष्टता है, जहां हर 40 मिनट में एक दुष्कर्म की घटना होती है। इस शर्मनाक आंकड़े के बीच भारत की राजधानी दिल्ली, मुंबई, कोलकाता और चेन्नई जैसे बड़े शहरों की तुलना में महिलाओं के लिए सबसे असुरक्षित शहर है। पुलिस के रिकॉर्ड के मुताबिक 2011 में दिल्ली में दुष्कर्म के 572 मामले दर्ज किए गए, जबकि मुंबई में 239, बेंगलुरु में 96 और चेन्नई व कोलकाता में क्रमशः 76 और 47 मामले दर्ज हुए। ये वे मामले हैं जिनकी पुलिस में रिपोर्ट दर्ज हो पाई है। सामाजिक कार्यकर्ताओं और चिकित्सा से जुड़े लोगों के अनुसार वास्तविक संख्या इससे कहीं बड़ी है। दुष्कर्म की शिकार महिलाओं को कलंक मानने की विकृत मानसिकता के कारण बड़ी संख्या में मामले दर्ज ही नहीं हो पाते। इन चौंकाने वाले आंकड़ों के बावजूद दिल्ली में 23 साल की मेडिकल छात्रा के साथ बर्बर गैंगरेप ने देश को अभूतपूर्व ढंग से शर्मसार कर दिया है। पीड़िता अस्पताल में जिंदगी मौत से जूझ रही है और अगर वह बच भी जाती है, तो उसके अनेक अंग जिंदगी भर ठीक ढंग से काम नहीं कर पाएंगे।

इस मामले में समाज का रवैया विचलित और शर्मसार करने वाला है। दुष्कर्म और हमले के बाद दुष्कर्मियों ने पीड़िता और उसके मित्र को निर्वस्त्र कर चलती बस से बाहर सड़क पर फेंक दिया था। पुलिस के वहां पहुंचने तक 50 से अधिक तमाशबीन वहां जमा हो गए थे, किन्तु किसी ने भी उनके निर्वस्त्र तन पर कपड़ा ढंकने तक की मानवीयता नहीं दिखाई। देश में जगह जगह दुष्कर्म की घटनाएं घट रही हैं। इसमें न उम्र आड़े आती है और न ही सामाजिक आर्थिक हैसियत। दिल्ली में 17 दिसंबर को तीन साल की लड़की से दुष्कर्म हुआ और कुछ दिन पहले ही 70 साल की महिला को दुष्कर्मियों ने शिकार बनाया। इस प्रकार के अधिकांश मामले प्रकाशित नहीं होते या फिर उन पर बहुत कम ध्यान दिया जाता है। और अगर

पुलिस अपराधियों को पकड़ भी लेती है तो सालों-साल मुकदमा चलने के बाद अधिकांश दुष्कर्मी बाइज्जत बरी हो जाते हैं। इस बीच दुष्कर्म की शिकार महिला और उसका परिवार शर्म और डर में जीने का मजबूर रहता है। संक्षेप में भारत और इसका कुलीन शासक वर्ग जिसमें राजनेताओं के साथ-साथ नौकरशाही भी आ जाती है, वास्तविक सच्चाई से बेपरवाह और उदासीन है। दुष्कर्म को लेकर एक तरह की स्वीकार्यता इस तथ्य से सिद्ध होती है कि दुष्कर्म के आरोपियों को सांसद और विधायक बनाकर शासन करने के लिए भेजा जाता है। सुर्खियों में वहीं मामले आ पाते हैं जो हाई प्रोफाइल होते हैं। नागरिक समाज विरोध प्रदर्शन करता है, महिला संगठन दोषियों के लिए कड़ी से कड़ी सजा की मांग करते हैं, राजनेता प्रकट रूप में दृढ़ संकल्प जताते हैं, स्थानीय पुलिस प्रमुख त्वरित कार्रवाई का वायदा करता है और टीवी पर गरमागरम बहस छिड़ती है। 15 दिन बीतते-बीतते इस घटना को भुला दिया जाता है।

गंदगी अकसर शीर्ष से ही शुरू होती है—सरकार और समाज, दोनों में ही। दुष्कर्म के 90 फीसदी से अधिक मामलों में परिजन, रिश्तेदार व परिचित शामिल होते हैं। भारतीय समाज का सामाजिक अभिविन्यास महिला विरोधी है। यह सही है कि दुष्कर्म के संबंध में कानून और कड़े होने चाहिए, लेकिन इससे भी जरूरी यह है कि कानूनों का सख्ती से पालन किया जाना चाहिए। अगर दिल्ली का ही मामला देखा जाए तो यह बार-बार कहा जाता है कि दिल्ली में सार्वजनिक परिवहन बेहद घटिया है। इस पर माफिया का नियंत्रण है, जिन पर स्थानीय राजनीतिक वर्ग, नौकरशाही और पुलिस का वरदहस्त है। राष्ट्रीय राजधानी में 50, 000 से अधिक थ्री व्हीलर चलते हैं। इनके ड्राइवर पंजीकृत नहीं हैं, मीटर काम नहीं करते और प्रशासन में व्यवस्था को दुरुस्त करने की इच्छाशक्ति नहीं है। यही हाल और भी बहुत से शहरों का है। वर्तमान मामलों में, ड्राइवर और कंडक्टर अनधिकृत रूप से बस चला रहे थे और शीशों पर काली फिल्म नियमों की खुली धज्जियां उड़ा रही थीं।

जहां तक राजनेताओं का सवाल है, अकसर उनके हित बस संचालकों से जुड़े रहते हैं और उनकी एकमात्र दिलचस्पी व्यक्तिगत लाभ और अपने हित सुरक्षित रखने में होती है। भारतीय विधायिका भी ऐसे विधेयक पारित कराने में तत्परता दिखाती है, जहां उसके हित जुड़े होते हैं। उदाहरण के लिए विधायकों और सांसदों के वेतन-भत्ते बढ़ाने हों या उनके अधिकारों में वृद्धि करनी हो तो एक मिनट में विधेयक पारित हो जाता है। लाभ के पद संबंधी विधेयक के मामले में विधायिका ने किस तरह आनन-फानन में काम किया था, यह सारे देश ने देखा था। लेकिन जब बात व्यवस्था में सुधार संबंधी मामलों में आती है, तो हमारे सांसद-विधायक बड़ी आसानी से निष्क्रियता की चादर तान लेते हैं। साफ है कि उनकी सारी सक्रियता अपने स्वार्थों की पूर्ति तक ही सीमित है।

2010 के शीतकालीन सत्र में संसद ने पिछले 25 वर्षों में सबसे बेकार प्रदर्शन किया। 2011 में यह रिकॉर्ड टूट गया। अगस्त 2009 में जो बिल पारित किए गए उनमें से एक चौथाई से अधिक को पांच मिनट से भी कम समय लिया गया। लंबे समय से लंबित पुलिस सुधार बिल इन पांच मिनटों का इंतजार करता रह गया। 2012 जाते-जाते विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र पर कलंक लग गया। एक युवा लड़की की जिंदगी भारत की लिजलिजी असंवेदनशीलता के कारण खतरे में पड़ी है। वह भी उस भारत में जहां सबसे शक्तिशाली राष्ट्रीय राजनेताओं में सोनिया गांधी, सुषमा स्वराज, मायावती, जयललिता और ममता बनर्जी शामिल हैं। भारत में लड़कियां हमेशा से खतरे में हैं। जन्म से पहले से उनके प्रति उपेक्षा और भेदभाव शुरू हो जाता है, जो जीवन भर उनका साथ नहीं छोड़ता। पर क्या फर्क पड़ता है, हमें नए साल की तैयारियां भी तो करनी हैं।

(लेखक सुरक्षा मामलों के विशेषज्ञ हैं)

—दैनिक जागरण, 23 दिसम्बर, 2012

कुछ जिम्मेदारी हमारी भी

–नदीम

माई बॉडी, माई राइट। मेरी स्कर्ट से ऊंची मेरी आवाज। दिल्ली में एक युवती से गैंगरेप की घटना के बाद पूरे देश में ये नारे सुनाई पड़ रहे हैं। यह एक ऐसी घटना है, जिसने पूरे देश को झकझोर दिया है। सवाल भी उठ रहे हैं कि अगर यह घटना दिल्ली के इतर किसी दूसरे शहर या जिले की होती तो क्या उसे इतनी ही 'हाइप' मिलती? क्या सामूहिक दुराचार की कोई घटना देश में इससे पहले हुई ही नहीं? लेकिन ये सवाल दिल्ली की घटना की भयावहता को कम नहीं कर सकते। दरअसल दिल्ली देश की राजधानी है। देश की राजधानी में चलती बस में सामूहिक दुराचार की घटना को अगर अंजाम दिया जा सकता है तो देश के किसी छोटे शहर, गांव-कस्बे की कानून व्यवस्था की हालत बखूबी समझी जा सकती है।

दिल्ली की घटना को मिली 'हाइप' पर सवाल उठाने के बजाए यह उम्मीद की जानी चाहिए कि हो सकता है कि दिल्ली की घटना को जो 'हाइप' मिली है उसी के दबाव में कानून में कोई ऐसा बदलाव हो जाए, जिससे गांव-कस्बे की लड़कियां और औरतें भी महफूज हो जाएं क्योंकि हर छोटे शहर या जिले को दिल्ली जैसा होने में अभी बहुत वक्त लगेगा, तब तलक वहां की लड़कियां-औरतों को अपनी लड़ाई खुद ही लड़नी होगी।

बेशक दिल्ली की घटना के बाद मां-बाप की अपनी बेटियों को लेकर फिक्र बढ़ना स्वाभाविक है, खास तौर से वो मां-बाप जिनकी बेटियां कॉलेज या यूनिवर्सिटी जाती हैं। मां-बाप कहते नहीं थक रहे हैं कि बेटी जब तक घर वापस नहीं लौटती, किसी अनहोनी की आशंका में कलेजा मुंह को आता रहता है। ऐसा होना लाजिमी है, लेकिन उनकी फिक्र में यह भी सवाल खड़ा होता है कि क्या हम अपनी जिम्मेदारी सही तरीके से निभा रहे हैं? दरअसल, यह सवाल इसलिए कि आए दिन कुछ न कुछ ऐसा घटित होता है, जिससे यह आभास होता है कि अपने बच्चों पर नजर रखने में हमसे कहीं न कहीं, कुछ न कुछ चूक हो रही है। अभी हफ्ते भर पहले की ही तो बात है, राजधानी लखनऊ के एक होटल में देर शाम छापा मारा गया, जिसमें बहुत सारी लड़कियां अपने दोस्त लड़कों के साथ अलग-अलग केबिनों में पकड़ी गईं। किसी दोस्त के साथ होटल जाने में बुराई नहीं, लेकिन यह वह होटल था, जहां तेज म्यूजिक और डांस की मस्ती के बीच हुक्का पिया जाता है। पुलिस को जानकारी मिली थी कि हुक्के में तंबाकू की जगह यहां अन्य नशीले पदार्थों का सेवन होता है। फिलहाल जांच हो रही है, लेकिन जो लड़कियां उस वक्त पकड़ी गईं, वह घर से बहाने कर के होटल पहुंची थीं। उनमें से कई लड़कियां ऐसी थीं जो नियमित रूप से यहां आती हैं और नामचीन शिक्षण संस्थाओं की छात्रा हैं। पुलिस के शिकंजे में आते ही उनके पास रोने के सिवाय और कोई विकल्प नहीं था। हालांकि पुलिस ने लड़के-लड़कियों के नाम-पते लेकर जांच पूरी होने तक छोड़ दिया है, लेकिन सवाल यही है कि इन लड़के-लड़कियों के मां-बाप अपने बच्चों की हरकतों से अंजान क्यों? एक घटना का जिक्र और भी लाजिमी हो जाता है, हालांकि कुछ पुरानी है लेकिन इस घटनाक्रम में प्रासंगिक है। लड़कियों के एक हॉस्टल से एक लड़की तीन दिनों से गायब पाई जाती है। हॉस्टल प्रबंधन को इसकी जानकारी है, लेकिन पुलिस को इसकी इत्तिला देने से बचने की कोशिश की जाती है। हमारे एक सहयोगी को इसकी जानकारी होती और वह खबर छाप देते हैं। लड़की अपने दोस्त के साथ हमारे सहयोगी को धमकाने दफ्तर ही पहुंच जाती है। हॉस्टल प्रबंधक व लड़की के मां-बाप भी नाखुशी का इजहार करते हैं कि इससे लड़की की बदनामी हुई है, हमें ऐसा नहीं करना चाहिए था। लड़की को इससे क्या सबक मिला होगा? यही कि जब हॉस्टल प्रबंधन और मां-बाप उसके साथ खड़े हैं, तो उसने कुछ गलत किया ही नहीं। ऐसे तमाम और उदाहरण हैं। बदलते वक्त और बच्चों की आजादी के नाम पर जब हम आंख मूंदते हैं तो हम खुद इस तरह की घटनाओं को आमंत्रण देते हैं। उम्मीद है कि मां-बाप को जिम्मेदारी का एहसास होगा ओर दिल्ली की दुर्भाग्यपूर्ण घटना के बाद उपजा जनाक्रोश देश की कानून-व्यवस्था और महिलाओं की सुरक्षा के लिए मील का पत्थर साबित होगा। दुष्यंत कुमार का ये शेर और बात खत्म–

आज यह दीवार परदों की तरह हिलने लगी,
शर्त लेकिन थी कि ये बुनियाद हिलनी चाहिए।
मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में सही,
हो कहीं भी आग लेकिन आग जलनी चाहिए।

–दैनिक जागरण, 23 दिसम्बर, 2012

परत दर परत

–राजकिशोर

बलात्कार स्त्रियों के प्रति हिंसा का एक ऐसा रूप है, जिसके बारे में सोचते हुए दिमाग स्तब्ध हो जाता है। सबसे पहले मन में जो सवाल उठता है, वह यह कि कोई आदमी ऐसा कर कैसे सकता है? छेड़खानी, जुमलेबाजी, पीछा करना आदि क्रियाएं काफी हद तक समझ में आती हैं। यह लोफरपना है और लोफर प्रत्येक समाज में पाए जाते हैं लेकिन बलात्कारी भी प्रत्येक समाज में पाए जाएं, यह सभ्यता का बुखार है। इसके इलाज के लिए जड़ों पर प्रहार करना होगा। इसकी जड़ें बहुत भारी हैं और दूर-दूर तक फैली हुई हैं। उनका उन्मूलन करने में पता नहीं कितना समय लगेगा। उन्मूलन हो भी पाएगा या नहीं, कौन कह सकता है? तब तक स्त्रियां क्या बलात्कार का दंश सहती रहें और बलात्कार के बाद हत्या की शिकार होकर किसी नाले या झाड़ी में फेंकी जाती रहे? कोई भी होशमंद इसका समर्थन नहीं कर सकता।

बलात्कार उत्तेजना में किया जाता है यह पूर्ण सत्य नहीं है। तथ्य और आंकड़े इसका खंडन करते हैं। अधिकतर घटनाओं को घात लगाकर, अरसे तक योजना बनाकर और माकूल स्थान-समय देख कर अंजाम दिया जाता है। यह स्त्री के खिलाफ एक मुसलसल युद्ध है और कोई भी युद्ध योजना बनाए बिना नहीं लड़ा जाता। ऐसे आक्रमणकारियों को सजा न दी जाए या हल्की सजा दी जाए, तो उन्हें शह मिलती है। इस बारे में जनमत बिल्कुल स्पष्ट है। जब भी बलात्कार की कोई जघन्य घटना सामने आती है, यह मांग उठती है कि बलात्कारी को फांसी की सजा मिलनी चाहिए या रासायनिक विधि से उसे हमेशा के लिए या कुछ समय के लिए नपुंसक बना दिया जाना चाहिए। बलात्कार इतनी आघातकारी घटना है कि इस तरह की प्रतिक्रियाएं स्वाभाविक हैं लेकिन ठंडे दिमाग से सोचा जाए तो क्रूरता के बदले क्रूरता की मांग भी बुखार से कम नहीं है।

कैसे? यह तय है कि फांसी और अंगोच्छेदन जैसी सजा सिर्फ स्त्रियों के विरुद्ध होने वाली हिंसा के लिए नहीं होगी। फिर यह मांग भी उठेगी कि चोर के हाथ काट देने चाहिए। भ्रष्टाचारी को चौराहे पर लैंपपोस्ट से लटका देना चाहिए, कोड़े या पत्थर मार-मार कर व्याभिचारी की जान ले लेनी चाहिए, प्रेम विवाह करने वाली जोड़ी को गोली मार देनी चाहिए, वगैरह-वगैरह। संभव है कि इससे अपराध कम हों लेकिन क्या ऐसा समाज रहने लायक भी होगा? यह दंड विधान लागू करने वाली व्यवस्था अपने आप में एक क्रूर और आततायी व्यवस्था होगी। साम्यवादी व्यवस्था भी कुछ

ऐसी ही थी। उस व्यवस्था में बलात्कार की घटनाएं नहीं के बराबर होती थीं लेकिन शासन के नाम पर व्यक्ति और पार्टी की तानाशाही थी। आतंक इतना ज्यादा था कि आदमी का दम घुटता था। शायद ऐसी व्यवस्था में स्त्रियों की और ज्यादा दुर्गति होती है। क्या हम अपने लिए वैसी ही व्यवस्था चाहते हैं?

न्यायशास्त्र की किसी भी अच्छी किताब में यही लिखा मिलेगा कि सजा का मतलब प्रतिशोध लेना नहीं है। खून के बदले खून और जान के बदले जान, यह किसी सभ्य समाज का सिद्धान्त नहीं हो सकता। प्रतिशोध लेना व्यक्ति की मनोवृत्ति हो सकती है क्योंकि वह हिंसा के दुष्चक्र के बारे में गंभीरता से नहीं सोच पाता। उसके या उसके किसी प्रियजन के साथ अन्याय होता है तो उसका खून खौलने लगता है लेकिन राज्य का काम दूर की सोचना है। उसका लक्ष्य एक ऐसा समाज बनाना है, जिसे सभ्य और सुसंस्कृत कहा जा सके। जहां हर चीज के पीछे विचार और संवेदना हो। इसीलिए न्याय का चरम उद्देश्य तो अपराधी को सुधारना ही हो सकता है। अपराधी की क्रूरताओं से हममें से कौन विचलित नहीं होता है? लेकिन विचलन के क्षणों में हमें सभ्यता और संस्कृति के मूल तत्वों को भुला नहीं देना चाहिए।

सवाल यह है, जब बलात्कार या स्त्री के विरुद्ध हिंसा की कोई घटना सामने आती है, तब न्यायशास्त्र के ये ऊंचे सिद्धान्त हमारे मन में क्यों नहीं उठते? इस कारण कि हम ऐसी व्यवस्था में नहीं रह रहे हैं, जो किसी ऊंचे आदर्श से प्रेरित और परिचालित हो। यह सुनियोजित लूट-खसोट की व्यवस्था है, जिसमें गरीब और साधनहीन लोगों की तकलीफों की ओर ध्यान नहीं दिया जाता और ताकतवर अपनी सुख-सुविधाएं बढ़ाते जाते हैं। पुलिस, अदालत और नौकरशाही भी समर्थों का साथ देती है। उद्योग-व्यवसाय से संबंधित विवाद जल्दी से जल्दी हल कर दिए जाते हैं पर बलात्कार और हत्या के मुकदमें सालो-साल खिंचते चले जाते हैं। सरकार, प्रशासन और समाज के सामने कोई आदर्श नहीं है। शिक्षा प्रणाली छात्रों को विचारशील और संवेदना-सक्षम बनाने में असमर्थ हैं। स्वयं शिक्षक भी माया के शिकार हैं। ऐसे माहौल में अगर हिंसा के जवाब में प्रतिहिंसा ही एकमात्र समाधान दिखाई पड़े तो इसमें हैरत की क्या बात है? किसी को भी लग सकता है कि बलात्कारी को जितनी भी कड़ी सजा दी जाए कम है।

इस विचार प्रणाली में हम सहज ही यह भूल जाते हैं कि बलात्कार जिस संस्कृति की उपज है, उसे बदलने की कोशिश किए बगैर तात्कालिक समाधान सफल नहीं हो सकते। इसलिए अगर कड़ी से कड़ी सजा भी दी जाए तो भी बलात्कार की घटनाओं को रोकने के लिए दीर्घकालीन उपाय करने ही होंगे। बलात्कार बाद में होता है पहले मन में उसका विचार पैदा होता है। किसी के मन में कैसे विचार पैदा होंगे, यह व्यक्ति पर ही नहीं वह जिस व्यवस्था की उपज है, उस पर भी निर्भर करता है बल्कि उसी पर ज्यादा निर्भर होता है। किसी समाज में तमाम तरह की बुराइयां मौजूद हों, सिर्फ बलात्कार न हो; यह महज ख्याली पुलाव है।

–राष्ट्रीय सहारा, 23 दिसम्बर, 2012

इस जनाक्रोश को अंजाम का इंतजार

–किरण बेदी

दिल्ली की सड़क पर हैवानियत की घटी घटना मानवता के मुंह पर तमाचा है, या इससे भी कहीं आगे...। युद्ध क्षेत्र में भी जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती, वैसी दिल दहला देने वाली घटना देश की राजधानी में घटी। वाकई इस घटना से उठे सवाल हम जैसे लोगों, पुलिस प्रशासन, सरकार व आमजन से जवाब मांग रहे हैं। हमारे जो जज्बात उभरे हैं, वे हमें झकझोर भी रहे हैं। इसी का नतीजा है कि सड़कों पर जनाक्रोश की ज्वाला फूट पड़ी है। रायसीना हिल्स से राजघाट, कोलकाता से कोयंबटूर और श्रीनगर से लेकर चेन्नई तक लोग विरोध-प्रदर्शन कर रहे हैं। इंडिया गेट से राष्ट्रपति भवन की ओर बढ़े जनसैलाब का कोई अगुवा नहीं होता है, बावजूद इसके पुलिस की लाठियां, आंसू गैस के गोले और पानी की बौछारें उनके कदम रोक नहीं पाती हैं। बार-बार सरकार को प्रेस ब्रीफिंग करनी पड़ती है, आश्वासन देना पड़ता है, ठोस इरादे जताने पड़ते हैं, लेकिन पोस्टर-बैनर तो यही कह रहे हैं कि अब नहीं, तो कभी नहीं। हां, यही वह वक्त है, जब इस आवाज को इस शहर से लेकर गांव तक पहुंचा सकता है कि महिलाओं के खिलाफ अब किसी तरह की ज्यादती सहन नहीं होगी। यह परिवर्तन का समय है, क्योंकि देश का युवा सचेत है।

वाकई, मैंने पहली बार इतनी बड़ी तादाद में असंगठित भीड़ को सड़कों पर आक्रोशित देखा है। हर ओर से हुजुम उमड़ रहा है और यह सिलसिला थमने का नाम नहीं ले रहा है। गुस्साई भीड़ पीड़िता के लिए दुआ भी मांग रही है और पुलिस को उसकी नाकामी के कारण भी गिना रही है। सवाल यह है कि यह बदलाव आया कैसे? कल तक हममें से ही कुछ लोग कहा करते थे कि देखो, हमारा युवा तो उदासीन है। वह उपभोक्तावादी हो गया है। उसे न तो भ्रष्टाचार से कोई मतलब है और न ही व्यवस्था से। लेकिन यह स्थिति अब बदल चुकी है। अन्ना आंदोलनों ने युवाओं को उनकी शक्ति से पहचान कराई है।

इसलिए इस भीड़ में सादगी है, उत्साह है, ईमानदारी है। हौसला और ऊर्जा है। और सबसे अहम तो यह है कि सरकार से लेन-देन की उसकी कोई इच्छा नहीं है। भारत अब देशभक्त युवाओं का देश बन गया है, वह महज पीड़ित युवाओं का देश नहीं रह गया है। दिल्ली सामूहिक बलात्कार ने उसकी आवाज को फिर से ताकत दी है, एकता दी है। उम्मीद दी है कि यह एकता दहेज से लेकर गलत प्रशासनिक कामकाज के खिलाफ भी उठती रहेगी। बहरहाल, 'आपकी कचहरी' में मैं अक्सर यह सवाल उठाती थी कि 'आखिर गलती किसकी?' इसका जवाब है, सबका कसूर है। पुलिस-प्रशासन से लेकर न्याय-व्यवस्था तक की इसमें नैतिक जिम्मेदारी बनती है।

देश के मर्दो को एक पुरुष सत्तात्मक समाज मिला है। जाहिर है, ऐसे समाज में मर्दो को ज्यादा हक हासिल होता है। वे चाहते, तो इसका सदुपयोग कर सकते थे। ऐसा भी नहीं है कि उन्होंने सदुपयोग नहीं किया। पर महिला आबादी को हाशिए पर रखकर, वह काम करते रहे। नतीजतन, महिलाएं उपेक्षित हुईं, पीड़ित हुईं, समाज में गैर-बराबरी से लेकर घरेलू हिंसा, यौन शोषण और बलात्कार तक। पुरुषों द्वारा यह अत्याचार विस्फोटक स्थिति तक जा पहुंचा है। ऐसे मे, समाज में बड़े सुधार की दरकार है। इसके दो रास्ते हैं सामाजिक सुधार व पुलिसिंग। एक बच्चा अपने आस-पड़ोस के माहौल से बेखबर सीखता है। उसकी पहली पाठशाला उसका घर ही होता है। जैसे-जैसे उसके देखने-समझने का दायरा विकसित होता जाता है, वह समाज से सभ्यता, संस्कृति, पहनावा, भाषा आदि का आदान-प्रदान करने लगता है। इसके बाद हमने अपने लिए कई सामाजिक संस्थाएं बनाई हैं। मसलन, हम मंदिर-मस्जिद में प्रार्थना-दुआ के लिए जाते हैं। वहां सिर्फ पूजा नहीं होती है बल्कि इंसानियत की शिक्षा दी जाती है, नैतिक पाठ पढ़ाया जाता है। दरअसल, हम यह सब जो सीखते हैं, उन्हें सामाजिक जीवन में अमल में लाने की भी जरूरत है।

अब हो यह रहा है कि हमारी सामाजिक संस्थाएं दरकनी शुरू हो गई हैं। हम आस-पड़ोस, रिश्ते-नातेदारों से कटते जा रहे हैं। मन्दिर हम अपनी मांगों की पूर्ति के लिए जा रहे हैं, न कि मन की शांति के लिए। इन वजहों से एक-दूसरे के प्रति सम्मान का भाव खोता जा रहा है। ऊपर से संसाधनों की कमी के चलते सामानों की छीना-झपटी और आपसी प्रतिस्पर्द्धा की होड़ बढ़ी है। इसने हिंसक वातावरण को जन्म दिया है। मूल्यों के इस ह्रास का असर पुरुष व औरत के रिश्तों पर भी पड़ा है। इसलिए अच्छा होगा कि हम अपनी सामाजिक संस्थाओं और नैतिक मूल्यों को फिर से सहेजें।

देश को पुलिस सुधार कानून की भी जरूरत है। मौजूदा परिस्थिति में तो यह और भी प्रासंगिक हो गया है। आखिर महानगरीय समाज इतना असुरक्षित कैसे हो गया? हमारी बहू-बेटियां घर से बाहर महफूज क्यों नहीं हैं? यह अलग चर्चा का विषय है कि वे घर में कितनी महफूज है? मैं जब पुलिस प्रशासन में थी, तब की बात बताती हूं उस वक्त न केवल पुलिस प्रशासन चुस्त-दुरुस्त थी, बल्कि नागरिकों को भी सामाजिक सुरक्षा की ट्रेनिंग दी जाती थी। सोशल डिफेंस ऑर्गेनाइजेशन, स्कॉट्स टीम, छात्र ट्रैफिक कंट्रोल टीम जैसी जन-भागीदारी की योजनाएं हम लोग दिल्ली में

चलाते थे। इसके अलावा, रात के वक्त पुलिस की गश्ती काफी तेज होती थी। रात्रि बसों में पुलिस चेकिंग की व्यवस्था थी। लेकिन धीरे-धीरे ये चीजें बंद कर दी गईं। यह ठीक है कि इस बीच महिला पुलिसकर्मियों की तादाद पुलिस सेवा में बढ़ाई गई है लेकिन उन्हें दक्ष नहीं बनाया गया है। यह सब इसलिए हुआ, क्योंकि पुलिस व्यवस्था में अपारदर्शिता आ गई है। यह शहर से लेकर गंव तक का सच है। एक तरफ से पुलिस व्यवस्था जवाबदेही से मुक्त हो गई है। इसलिए समाज में आपराधिक मामले बढ़े हैं, वरना पुलिस चाह ले, तो जुर्म हो नहीं सकता। उधर, सरकार ने अपनी ऑडिटिंग भी बंद कर दी है।

बेशक इस दौरान स्वयंसेवी संस्थाओं ने पुलिस प्रशासन के कामकाज पर सर्वे किए, लेकिन उनकी प्रमाणिकता पर सवाल उठाकर मामले को दबाया जाता रहा है। इन सबका एक असर तो यह भी हुआ कि रसूखदार तबकों की गुंडागर्दी बढ़ती गई और पीड़ित समाज, जिसमें महिलाएं आती हैं, पुलिस के पास अपनी गुहार तक लगाने से हिचकने लगा। क्योंकि पुलिस व्यवस्था ने अपनी विश्वसनीयता ही खो दी है।

बहरहाल, ताजा मामले में सरकार को यह जरूर मजबूर किया है कि वह पुलिस व्यवस्था को चुस्त-दुरुस्त बनाए और बलात्कार जैसी घटनाओं के खिलाफ सख्त से सख्त कानून का प्रावधान करे। हमारे कानून में मृत्युदंड की सजा का प्रावधान तो है ही, अगर इस दायरे में बलात्कार जैसी घटना को शामिल कर लिया जाए, तो बेहतर होगा। जैसे बाकी जघन्य से जघन्य अपराधों में मृत्युदंड का प्रावधान है, उसी तरह इस मामले में भी कानूनी संशोधन कर इसे समाहित किया जा सकता है।

बेशक, बाकी सब कुछ तो न्यायपालिका और सबूत पर निर्भर करता है। अपराध की कई श्रेणियों में आजीवन कारावास की सजा दी जाती रही है, बलात्कार के मामले में भी यह है। परंतु इसे कड़ाई से लागू करने की आवश्यकता है। लेकिन इन बदलावों के लिए ठोस इच्छाशक्ति चाहिए। एक पॉलिटिकल विल जरूरी है। इन मसलों को न्यायिक आयोग के सामने रखकर, फिर इसे संसद से पारित कराया जा सकता है। अध्यादेश के जरिये भी इसे पारित कराना मुमकिन है। उम्मीद है इस बार जनाक्रोश छला नहीं जाएगा, उसे ठोस अंजाम चाहिए।

(लेखिका पूर्व पुलिस अधिकारी और सामाजिक कार्यकर्ता हैं। लेख में व्यक्त विचार उनके निजी हैं)

–राष्ट्रीय सहारा, 24 दिसम्बर, 2012

स्त्री का चरित्र किसी घटना से न आंका जाए

–उदित राज

हमारे यहां रेप की घटनाएं मीडिया, राजनीतिज्ञों और फिल्मों द्वारा इस तरह से पेश की जाती हैं मानो स्त्री का चरित्र, सम्मान और योग्यता, सभी कुछ उसके सेक्स रूप में ही निहित है। हिन्दी फिल्मों में बलात्कार का शिकार बनी महिला को या तो जान देनी पड़ती है या पागल होना पड़ता है। सुषमा स्वराज ने तो संसद में यहां तक कह दिया कि यदि वह लड़की जिंदा भी रहती है तो जिंदा लाश समझी जाएगी। दरिंदगी की इन घटनाओं से कहीं ज्यादा औरतों का नुकसान इस सोच में हो रहा है। यह समय एक नई सोच का बीजारोपण करने का है। क्यों न ऐसी घटनाओं को बलात्कार के बजाय यौन हिंसा या बिना मर्जी का सेक्स कहा जाए। कुछ संगठनों, जैसे पीयूसीएल, तमिलनाडु विमिन फिश वर्कर फोरम और सिटिजंस कलेक्टिव अगेंस्ट सेक्सुअल असाल्ट ने इस मामले में उचित तर्क रखा है कि बलात्कार का संबंध चरित्र और नैतिकता से नहीं बल्कि पुरुष वर्चस्व की मानसिकता और हिंसा से है। दोषी डाकू को ठहराया जाता है, न कि उसे, जिसके यहां डकैती पड़ी है। हमें वह सोच बनानी होगी, जिसमें स्त्री को नहीं, बलात्कारी को जीवन भर अपमानित होना पड़े।

जब तक जातिवादी समाज जिंदा है, तब तक वर्तमान सोच को बदलना मुश्किल है। मनु ने कहा है कि बालिग होने से पहले लड़की पिता के अधीन होगी, विवाह के बाद पति के और वृद्धावस्था में बेटे के। इस तरह वह कभी आजाद होती ही नहीं। तुलसीदास ने रामचरित मानस में लिखा है—'ढोल, गंवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी। '

जवान लड़की को विदा करने की जल्दी किसे नहीं रहती। हमारे यहां तमाम संस्कारों में औरत की भागीदारी धर्म के माध्यम से ही खत्म कर दी गई है। घर का आदमी मरे तो उसे आग देने का काम औरत नहीं कर सकती, न ही श्मशान घाट तक जा सकती है। विवाह में कन्यादान स्त्री नहीं कर सकती। पूजापाठ, जागरण आदि में उसकी कोई भूमिका नहीं होती। पैतृक धन-सम्पत्ति का मालिकाना हक स्त्री

के पास नहीं है। ऐसे में लड़की को भला कोई कितनी इज्जत देगा? पराया धन समझकर लड़कियों को शिक्षा भी नहीं दी जाती। उनके स्वास्थ्य की चिंता लड़कों की तुलना में बहुत कम है। सोच यह बन गई है कि स्त्री वह चीज है, जिसकी देह पर कोख उगाना है।

मनुवादी व्यवस्था

दिल्ली की घटना से फूटा गुस्सा बहुत ही अच्छा है, लेकिन इससे समाज के लिए जो दिशा बननी चाहिए, वह अब तक नहीं दिखी है। महिलाओं के द्वारा जो आक्रोश प्रकट किया गया, उससे पुरुषवादी सोच को ही मजबूती मिली है। भ्रूण हत्या की चिंता सभी को है, लेकिन वह ईमानदारी और समझ शायद ही कोई दिखाता है, जिससे इस समस्या का समाधान हो सके। बिना मनुवादी व्यवस्था को तोड़े भ्रूण हत्या को रोकना असंभव है। मीडिया की वजह से अब ऐसी हिंसक घटनाएं उजागर होने लगी हैं, वरना अतीत में ऐसी घटनाएं जितना ज्यादा हुआ करती थीं, उनकी तुलना में अभी कुछ भी नहीं होता। आज भी देश में कुछ इलाके ऐसे हैं, जहां वंचित समाज की स्त्री को विवाह के बाद की पहली रात जमींदार के घर पर गुजारनी पड़ती है। तमाम ऐसे गांव हैं, जहां के दबंग शायद ही गांव की किसी लड़की को अपनी हवस का शिकार न बनाते हों। शहर में रह रहा मध्यमवर्ग इससे अनजान है।

सारा गुस्सा नेताओं और पुलिस पर उतर रहा है। यह समस्या पर पर्दा डालने वाली है। आंदोलनकारियों ने न्यायपालिका और सनातनी रीति-रिवाजों को पूरा बख्श दिया है। हर जगह पुलिस को गलत ठहराना भी ठीक नहीं है। हमारी न्यायिक प्रक्रिया इतनी लंबी है कि जब तक न्याय मिलता है, तब तक बहुत देर हो चुकी होती है। उच्च न्यायपालिका के ढांचे को बिना बदले न्यायिक प्रक्रिया को ठीक नहीं किया जा सकता। न्यायाधीश ही न्यायाधीश की नियुक्ति करे, ऐसा सिर्फ भारत में ही होता है। हाईकोर्ट का जज बनने का तो कोई मापदंड है और न परीक्षा। मामला परिवारवाद, क्षेत्रवाद ओर जातिवाद पर चल रहा है। हाईकोर्ट व सुप्रीम कोर्ट के वरिष्ठ अधिवक्ता की फीस एक लाख से लेकर एक करोड़ के ऊपर तक है। ऐसे में आम आदमी को न्याय मिलने का प्रश्न ही नहीं उठता। कनिष्ठ अधिवक्ता का मुकदमे का ज्ञान या तैयारी कितनी भी अच्छी हो फिर भी उसकी अनदेखी होती है, जबकि वरिष्ठ अधिवक्ता चाहे चलते-चलते मुकदमे के तथ्य अपने जूनियर को बता दे उसी से बहस करने पर जज प्रभावित हो जाता है। यानि ज्ञान और तथ्य का महत्व चेहरे के मुकाबले में कुछ भी नहीं है। बार-बार यह उछालना कि पीड़ित महिला का बयान कमरे के अंदर लिया जाए, आम लोगों के सामने नहीं, यह भी गलत है, क्योंकि इससे पुरुषवादी सोच को ताकत मिलती है।

फांसी कोई हल नहीं

कुछेक समाजों को छोड़कर दुनिया के सारे समाज बलात्कार को एक तरह की हिंसा ही मानते हैं और जिस स्त्री के साथ ऐसी घटना होती है, वह अपना सामान्य जीवन नहीं जीती है। फांसी की सजा भी समस्या का समाधान नहीं है क्योंकि इसके कुछ और भी पहलू हैं।

पहला, बलात्कार के बाद स्त्री को मार देने का चलन शुरू हो जाएगा, क्योंकि कत्ल की सजा भी फांसी ही है। दूसरा, फांसी की सजा अगर होती है तो फिर से पुरुषवादी सोच को ताकत मिलेगी क्योंकि इससे यह पुष्टि होगी कि स्त्री का सबकुछ खत्म हो गया। स्त्री चाहे जितनी शिक्षित, ईमानदार, मेहनतकश, नेतृत्वकारी क्यों न हो, वह सब इस कृत्य से खत्म हो जाता है। मानो ये गुण उसके चरित्र का हिस्सा ही न हों, जबकि होना यह चाहिए कि स्त्रियों को भी बाकी मनुष्यों की तरह इन साझा गुणों से पहचाना जाए। स्त्री के चरित्र को पुनः परिभाषित करने और समझने-समझाने की जरूरत है। कानून-व्यवस्था राज्य मशीनरी के भय से चलती है, सजा बढ़ाने से नहीं। जितनी सजा अभी है, उसी को अमल में ला दिया जाए तो रेप करने की हिम्मत बहुत कम हो जाएगी।

(लेखक इंडियन जस्टिस पार्टी के चेयरमैन हैं)

–नवभारत टाइम्स, 9 जनवरी, 2013

अधिकारों के लिए लड़नी होगी चौतरफा जंग

–अनिल शुक्ल

गुजरे नवें दशक में देश में लिंग स्तर पर तीन घटनाओं का एक साथ होना महज इत्तेफाक नहीं है। एक ओर सामाजिक रूप से जातिगत स्तर पर नितांत पिछड़े दलित और अशिक्षित तबके से आई दो महिलाओं का भारतीय राजनीति के शीर्ष पर उभार और दूसरी तरफ मीडिया की मदद से भारतीय समाज में पूरे या आधे कपड़े पहने ऐसी नारी का प्रोजेक्शन जिसकी एक मात्र उपयोगिता 'भोग्या' के अलावा कुछ और हो ही नहीं सकती। यहां यह समझ पाना मुश्किल नहीं है कि जो काम आजादी के चार दशकों बाद नहीं हो पाया था वह अचानक पांचवें दशक में रातोंरात कैसे संपन्न हो गया! वस्तुतः वैश्विक बाजारवाद ने जब तमाम संवेदनाओं, मानवीय रिश्तों और डॉक्टरी, वकालत और समाज सेवा जैसी पवित्र पेशा मानी जाने वाली सेवाओं को बाजारू जिन्स में तब्दील कर दिया तब वह औरत को कैसे बख्श देता जो गुलाम और सामंती युग से ही दोयम दर्जे की नागरिक बनाकर रखी गई थी। अफसोस की बात है कि बलात्कार जैसे सवाल पर हालिया दौर में उभरे देशव्यापी महिला आन्दोलनों ने जहां पुलिस की भूमिका और नए कानूनों जैसे तमाम जरूरी सवाल उठाए, वह इस मूलभूत मुद्दे को उठाना कैसे भूल गया।

आजादी से पहले और बाद के भारतीय महिला आंदोलनों की तुलना की जाए तो उनकी चिंताओं में मूलभूत अंतर नजर आता है। आजादी से पहले का भारतीय महिला आंदोलन विधवा विवाह, बाल विवाह तथा महिला शिक्षा के पक्ष और घूंघट-बुर्का विरोध जैसे मुद्दों को उठाने वाले 19वीं सदी के उस सुधारवादी आंदोलनों की परंपरा से जुड़ा था, जो यूरोप के 18वीं सदी के महिला आंदोलनों से प्रेरित थे। ये वस्तुतः सामंती यूरोप से निकलकर उभरते हुए पूंजीवादी यूरोप में महिलाओं की आजादी की वकालत करते थे। सर्वविदित है कि सामंतवादी समाज में उत्पादन के औजारों की मिल्कियत सिर्फ पुरुष के पास होती थी। अभिजात्य महिलाएं घरों के भीतर तक सीमित थीं ओर कामगार महिलाएं कृषि मजदूर के रूप में घर से बाहर। उत्पादन संसाधन दोनों के स्वामित्व पर निषेध था। सन् 1789 की फ्रांसीसी क्रांति और 19वीं सदी के इंग्लैंड के पूंजीवादी सुधारवादी आंदोलनों ने उत्पादन साधनों पर महिलाओं के स्वामित्व के सवाल को गहराई से उठाया और यही वजह है कि 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में उसे व्यापक सफलता मिली। जहां तक भारतीय महिला आंदोलन का सवाल है, वह चारित्रिक स्तर पर सामंतवादी सोच से एक कदम आगे बढ़कर प्रगतिशील रुख तो अख्तियार कर सका, लेकिन तब भी देश में व्यापक स्तर चलने वाले सामंतवादी विरोधी आंदोलनों से खुद को नहीं जोड़ पाया। यही वजह है कि ग्रामीण और शहरी समाजों में उत्पादन के साधनों में महिलाओं के स्वामित्व के सवाल को वह शिद्दत से नहीं उठा पाया।

राष्ट्रीय और कम्युनिस्ट आंदोलनों के अंतिम तीन दशकों में उभरी जांबाज नेत्रियों ने महिला आंदोलनों को आगे की तरफ एक धक्का और दिया। वह भले ही भारतीय महिला को आजादी नहीं दिला पाई लेकिन इस बात से भला कौन इंकार कर सकता है कि नारी मुक्ति के सवाल को यह देश के मुख्य एजेंडे में शामिल करवाने में कुछ हद तक कामयाब हुई। आजादी के बाद का महिला आंदोलन शुरूआती तौर पर सन् 50 से उभरे फैमिनिस्ट आंदोलन से मुतासिर था। अमेरिका में द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद उभरे इस नारीवादी आंदोलन ने उसकी आर्थिक आजादी से ज्यादा जोर उनकी जीवनशैली की आजादी पर दिया। 60 के दशक के अंतिम सालों में उभरे अमेरिका के वियतनाम युद्ध विरोध से उठे आंदोलन से जुड़ने के बाद इस नारी आंदोलन की राजनीतिक सोच में पर्याप्त परिपक्वता आई। 90 के दशक के उदारीकरण के दौर से पहले तक इसने जो बड़े राजनीतिक सवाल उठाए और उन पर जो विजय हासिल की, उनमें अन्य सवालों के साथ अश्वेत महिला की मुक्ति और समानता के मुद्दे भी शामिल थे, लेकिन इन आंदोलनों की जड़ों में भी कहीं न कहीं कमजोरी व्याप्त थी। यही वजह है कि उदारीकरण के नाम पर साम्राज्यवाद जब अपने नग्न और उघड़े रूप में फिर से उभरा तो उसने अपने बाजार की तमाम जिन्सों में औरत को फिर से शामिल कर लिया। यही वजह है कि अमेरिका के महिला आंदोलन 21वीं सदी में एक बार फिर महिला अस्मिता की सांस्कृतिक लड़ाई में मशगूल है। जहां तक भारतीय महिला आंदोलन का सवाल है वह यह समझ विकसित करने में नाकामयाब हुआ कि बिना आर्थिक आजादी हासिल किए वे कभी आजाद नहीं हो सकतीं तथा अपने आधार को व्यापक बनाने को उन्हें आगे बढ़कर शहरी और ग्रामीण कामगार, दलित और आदिवासी महिलाओ के सवालों को भी अपने आंदोलनों में शामिल करना होगा। यही कारण है कि लंबे समय तक वे शहरी महिलाओं की शिक्षा और दहेज विरोध जैसे सवालों तक केन्द्रित रहे। यही कारण है कि उन्होंने सतही तौर पर अपने चश्मे से अभिजात्य सवालों को देखा। शहरी और ग्रामीण, सवर्ण या पिछड़े अथवा दलित। उन्होंने अपने बीच मे जिन महिलाओं को शीर्ष तक पहुंचाया, उनकी सोच अभिजात्य महिलाओं की सोच से रत्ती भर भी ऊपर या नीचे नहीं थी। यही वजह

है कि मायावती शुरू से जेवरों की फिक्र में डूबी रहीं और राबड़ी देवी चारा कांड की कमाई के 'जस्टिफिकेशन' तक सीमित रहीं। 80 के दशक के अंतिम वर्षों में इन आंदोलनों के साथ नारी सशक्तिकरण का सवाल जुड़ा तो लेकिन यह अमेरिकी शब्द 'इम्पावरमेंट' से निकला था। जहां तक अमेरिका का ताल्लुक है वहां इम्पावरमेंट की लड़ाई अरसा पहले जीती जा चुकी थीं-आर्थिक और सामाजिक दोनों स्तरों पर। भारत में इसे तभी लड़कर जीता जा सकेगा जब यहां के आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक ढांचे पर काबिज सामंती प्रभुता को प्रमुख निशाना बनाया जा सके।

वस्तुतः बलात्कार विरोध की लड़ाई न एकांगी तौर पर लड़ी जा सकती है और न लड़कर जीती जा सकती है। बलात्कार की इस लड़ाई में महिलाओं की जिन्स बनाए जाने के विरोध की लड़ाई जोड़कर लड़ा जाना है और इन दोनों लड़ाइयों पर विजय तभी हासिल हो सकती है जब आर्थिक साधनों पर महिला स्वामित्व की लड़ाई पर फतेह हासिल की जा सकी हो। महिला सशक्तिकरण के लिए आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर एक शिद्दत से जंग की जरूरत है। इस जंग में शहरी और ग्रामीण, सवर्ण और दलित, आदिवासी सभी तबके की महिलाओं को शामिल किया जाना होगा। विश्वास मानिए अगर यह जंग जीत ली गई तो बलात्कार जैसे मुद्दों पर अलग से हथियार उठाने की जरूरत ही नहीं पड़ेगी।

–कल्पतरु एक्सप्रेस, 10 जनवरी, 2013

इस आंदोलन से कितनी उम्मीद

–योगेंद्र यादव

राष्ट्रीय राजधानी में हुए गैंगरेप की घटना पर उभरे जनाक्रोश की अधपकी व्याख्याएं हुई हैं। जो इस जनाक्रोश के पक्ष में खड़े हैं, वे कह रहे हैं कि इस जनाक्रोश के जरिये एक नए किस्म के नागरिक का उदय हुआ है और वह राजनीतिक सत्ता से जवाब मांग रहा है। इस नागरिक से सपनों के नए भारत के निर्माण की उम्मीद लगाई जा रही है।

लेकिन रूमानियत से भरी इस तस्वीर की तरफ उंगली उठाकर आलोचक कहते हैं कि प्रतिरोध में उठ खड़े हुए लोगों में ज्यादातर शहराती यानि मध्यमवर्गीय खाते-पीते घरों के हैं। आलोचक यह भी याद दिलाने से नहीं चूकते कि उमड़ा जनाक्रोश स्वतः स्फूर्त सही, पर लोग टिके रहे, तो इसमें मीडिया, खासकर टेलीविजन के लाइव कवरेज में कुछ तो सच्चाई है, लेकिन ऐसी आलोचनाएं मूल बात से मुंह फेर लेती हैं।

मूल बात यह है कि शहरी इलाकों में पहले भ्रष्टाचार और अब महिलाओं पर होने वाली हिंसा के खिलाफ उमड़ने वाला जनाक्रोश एक नए किस्म की राजनीति की शुरूआत है। यह राजनीति हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्था की एक खाई को पाट रही है। जिन शिकायतों के लिए व्यवस्था के भीतर कोई सुनवाई नहीं है, यह राजनीति उन शिकायतों को मुहावरा दे रही है। जो आंदोलनधर्मी नागरिक हम देख रहे हैं, बेशक वह अपने परिवेश से शहराती है, लेकिन उसका सामाजिक नजरिया शहराती संकीर्णता के दायरे में कैद नहीं। यह नई राजनीति देश के लोकतांत्रिक जीवन में एक नई किस्म की हलचल पैदा कर रही है।

शहरी-गंवई, धनी-निर्धन या फिर शिक्षित-अशिक्षित जैसे बने-बनाए चौखटों से बाहर जाकर हमें इस 'आंदोलनधर्मी नागरिक' को समझना होगा। जनाक्रोश के इस उभार में जो लोग शामिल हुए, वे अपने स्वार्थ के दायरे से बाहर जाकर सोच रहे थे। बेशक इन लोगों में त्याग की भावना नहीं है। नया 'आंदोलनधर्मी नागरिक' आत्म के विस्तार की राजनीति करने उतरा है और यह विस्तार कहां तक जाएगा, यह अभी अनिश्चित है।

यह नई राजनीति बीसवीं सदी की विचारधाराओं के गढ़े-गढ़ाए जुमले नहीं बोलती। इस जनाक्रोश की तख्ती पर भले ही लिखा हो 'हमें इंसाफ चाहिए', लेकिन यह इंसाफ न तो पश्चिमी उदारवादी परंपरा का है, न ही समाजवादी या नारीवादी ढर्रे का। इसलिए इस जनाक्रोश को जांचना हो, तो विचारधाराओं की पारंपरिक शब्दावली मददगार साबित नहीं होने वाली। और इस जनाक्रोश का स्वर सिर्फ नकार का भी नहीं है। भ्रष्टाचार या फिर महिलाओं पर होने वाली हिंसा के खिलाफ उठ खड़ा होने वाला जनाक्रोश एक विकल्प की मांग कर रहा था, भले ही यह मांग 'बलात्कारियों को फांसी दो' जैसी अतिरेकी भाषा में हुई हो।

इस राजनीति की मांग है कि हम व्यक्ति बनाम समूह के चौखटे से बाहर जाकर सोचें। महिलाओं पर होने वाली हिंसा के खिलाफ जुटी भीड़ पर किसी जाति या समुदाय का ठप्पा नहीं लगा था। विरोध-प्रदर्शन में जुटने वाले लोग किसी स्थापित राजनीतिक संगठन या पार्टी के सदस्य नहीं थे। बेशक, विरोध-प्रदर्शन में जुटने वाले लोगों की इच्छा थी कि उनके आस-पास राजनेता क्या उनकी छाया तक न दिखाई दे। लेकिन लोगों की इस चाह के भीतर यह तलाश छिपी हुई थी कि बने-बनाए राजनीतिक संगठनों से काम नहीं चलने वाला, राजनीति के मोर्चे पर कुछ नया होना चाहिए। इस नई राजनीति की आत्मा नई काया को तलाश रही है और मौजूदा दलीय राजनीति में आमूल-चूल बदलाव खोज रही है।

बेशक इस नएपन के साथ कुछ आशंकाएं भी जुड़ी हैं। मुंह बाये खड़े टीवी के इशारे पर आक्रोश प्रदर्शन और हाथों हाथ इंसाफ चाहने वाली भीड़ कोई शुभ लक्षण नहीं। ऐसे विरोध-प्रदर्शनों को अधिनायकवादी प्रवृत्ति के कुछ नेता मुट्ठी में कर सकते हैं। साथ ही ये प्रदर्शन सरकार को लोक-लुभावने, सस्ते और फिजूल कदम उठाने को बाध्य कर सकते हैं। यह डर तो है ही कि आंदोलन की यह हवा अपने आप गायब हो जाएगी और आगे जनांदोलनों की जमीन तोड़ने का काम कठिन हो जाएगा।

अधपकी और अधबुनी यह नई राजनीति फिलहाल व्यवस्था की अलस तंद्रा तोड़ने के लिए उसे झकझोरने का काम कर रही है। सत्ता के सुचिक्कन और जमे-जमाए समीकरणों में इसने खलल पैदा की है, चाहे जिम्मेदारी का संस्कार न बना हो। अन्ना हजारे के अनशन ने थोड़े समय के लिए ही सही, सरकार और राजनीतिक दलों को जिस तरह घुटने मोड़ने पर मजबूर किया, वैसा हाल का कोई बड़ा जनांदोलन भी नहीं कर पाया था। अरविंद केजरीवाल और प्रशांत भूषण ने घोटालों का पर्दाफाश किया और इस पर्दाफाश ने सत्तावर्ग को जितना बेचैन किया, उतना हाल की किसी संसदीय बहस ने नहीं। ठीक इसी तरह महिलाओं पर होने वाली हिंसा के खिलाफ हाल के जनाक्रोश ने पुलिस और उसके राजनीतिक आकाओं को जिस किस्म से जवाब देने के लिए मजबूर किया, वैसा दशकों तक चले महिला अधिकारों या फिर मानवाधिकारों से जुड़े आंदालन नहीं कर सके थे।

ऐसे विरोध-प्रदर्शनों के देर तक ठहरने की क्षमता और दिशा के बारे में अभी अंदाजा नहीं लगाया जा सकता। बहुत कुछ इस पर निर्भर करता है कि कितनी तेजी और समझदारी से यह नई ऊर्जा हमारे लोकतंत्र के भीतर दलगत राजनीति के दलदल की सफाई कर पाती है। यह बात साफ है—भारत की लोकतांत्रिक राजनीति के सामने विकल्पों की तलाश में लगे जनाक्रोश का अश्वमेधी घोड़ा खड़ा है और सत्तावर्ग अब मनमर्जी की चाबुक फटकार कर उसे अपने रथ में नहीं हांक सकता। सवाल यह है हि यह घोड़ा स्थापित राजनीति के स्थापित विकल्पों की राह लग जाएगा या कि एक वैकल्पिक राजनीति की डगर बनाएगा।

—अमर उजाला, 7 जनवरी, 2013

मीडिया के सरोकार पर उठते सवाल

–राममोहन पाठक

पूर्व निदेशक, महामाना पत्रकारिता संस्थान, काशी विद्यापीठ

ऐसा पहली बार नहीं हुआ है, जब मीडिया की भूमिका, सरोकार और प्राथमिकताओं पर गंभीर सवाल उठाए गए हैं। देश के प्रधान न्यायाधीश ने भी इन सवालों पर चिंता व्यक्त की है। पहले भी यह सवाल उठते रहे हैं कि मीडिया किसका है, किसके लिए है, इसके सरोकार और देश के मुद्दे क्या हैं?

न्यायमूर्ति अल्तमस कबीर ने कोलकाता हाईकोर्ट के कार्यक्रम में मीडिया की भूमिका पर जो कुछ कहा, वह मीडिया के लिए आत्मचिंतन और आत्ममंथन का विषय होना ही चाहिए। जस्टिस कबीर का यह कथन तथ्यों पर आधारित है कि 16 दिसंबर की गैंगरेप की घटना कोई अलग मामला नहीं है। यह ऐसे कई मामलों में से एक है। कुछ मायनों में यह प्रकरण असाधारण अवश्य था, किन्तु अनूठा नहीं। फिर भी इस घटना ने पूरे देश को हिला दिया, झकझोर दिया।

चीफ जस्टिस की यह सामान्य-सी चिंता तब मीडिया के लिए और भी गंभीर बनती है और बननी भी चाहिए, जब वह कहते हैं, 'अगले दिन के अखबारों में यह वारदात पहले पृष्ठ पर थी, लेकिन 10 साल की उम्र की दलित लड़की से गैंगरेप और उसे जलाने की घटना अखबारों के भीतरी पृष्ठों पर मात्र पांच-दस लाइनों में सिमट कर रह गई। 'निर्भया' के परिवार को सरकार और दूसरो से आर्थिक मदद मिली, लेकिन उस दलित लड़की या उसके परिवार की सुध लेने वाला कोई नहीं। ' प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से मीडिया के लिए उनका यह कथन सामयिक और विचारणीय है कि समाज या मीडिया 'बड़े लोग' या 'आईकॉन' बनाने का आदी हो चुका है।

'दामिनी' या 'निर्भया' के गैंगरेप के मामले ने समाज में जो हलचल पैदा की, उसके परिणाम सामने आने लगे हैं। जब प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह इस दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र की सच्चाई बयान करते हैं कि 'निर्भया' मामले ने भारत में नया कानून बनाने के लिए हमें तैयार या विवश कर दिया, तब मीड़िया के संबंध में चीफ

जस्टिस के वक्तव्य की प्रासंगिकता और भी बढ़ जाती है। उस घटना को किसने मुद्दा बनाया? इस सवाल का सीधा-सा उत्तर है- मीडिया। इस विकासशील देश के जागृत मीडिया की इसमें अहम भूमिका थी।

मीडिया के सरोकार क्या हों? इन्हें कौन तय करता है और किसे तय करना चाहिए? राष्ट्र के मुद्दे क्या हों, क्या न हों? इसे मीडिया के 'विवेक' पर छोड़ देने के खतरों से सतर्क रहना भी जरूरी है। मीडिया के विवेक के प्रश्न से रू-ब-रू होते ही मीडिया-कर्म से जुड़े उत्तरदायित्व के सवाल कौंधते हैं। अपने विचारों-वक्तव्यों के लिए चर्चित भारतीय प्रेस परिषद (प्रेस कौंसिल) के चेयरमैन जस्टिस मार्कण्डेय काटजू का हाल का वक्तव्य मीडिया-कर्म के 'विवेक पक्ष' के सामने अनेक सवाल खड़े करता है। जस्टिस काटजू मानते हैं कि मीडिया के क्षेत्र में आजकल बहुत से ओछे पत्रकार पहुंच गए हैं और इससे पत्रकारिता का स्तर बहुत गिर गया है। इनका स्तर सुधारना वह जरूरी मानते हैं। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर प्रेस काउंसिल ने अपने वरिष्ठ सदस्य श्रवणकुमार गर्ग की अध्यक्षता में स्वाधीन भारत में पहली बार एक उच्चस्तरीय समिति का गठन किया है, जो पत्रकारों की योग्यताओं-अर्हताओं के संबंध में सुझाव देगी। ताकि आज बदलती परिस्थितियों में पत्रकारिता या मीडिया कर्म में विशेषज्ञता के जो नए-नए विशेषीकृत क्षेत्र हैं, उनके लिए पत्रकारों की न्यूनतम योग्यताओं का आवश्यक रूप से निर्धारण हो सके। इस समिति के अध्यक्ष और भी आगे की सोच रखते हैं कि यह समिति प्रेस काउंसिल की ओर से इस बात की भी तहकीकात करेगी कि वर्तमान में पत्रकारिता प्रशिक्षण के जो भी संस्थान हैं, उनकी गुणवत्ता की परख हो क्योंकि अब तक उन पर भी कोई प्रभावी नियंत्रण या नियंत्रक निकाय देश में नहीं है।

यद्यपि प्रेस काउंसिल के इस कदम पर मीडिया संस्थानों और मीडिया कर्मियों में तीखी प्रतिक्रिया हुई है और यह माना जा रहा है कि यह मीडिया के दमन का एक तरीका है। इसके विपरीत प्रेस परिषद अध्यक्ष जस्टिस काटजू कहते हैं कि यह केवल पत्रकारिता स्तर में सुधार का एक प्रयास मात्र है। यह किसी प्रकार का दमनकारी कदम नहीं है।

पढ़े-लिखे यानि डिग्री डिप्लोमाधारी पत्रकारों की तादाद पिछले तीन-चार दशकों में काफी बढ़ी है किन्तु पत्रकारिता के क्षेत्र में गुणात्मक सुधार या जिस मीडिया विवेक के प्रश्न उठाए जा रहे है, उन पर चिंतन और सार्थक निर्णय की कमी सचमुच चिंतित करती है। सवाल सतही और गैर मुद्दे को मुद्दा बनाने की मीडिया की होड़ का है। 'जल्दबाजी में लिखे गए साहित्य' को मीडिया की सामग्री माना जाता रहा है पर यह जल्दबाजी या 'डेडलाइन की तटकती तलवार' मीडियाकर्म के लिए हमेशा चुनौती रही है। इस आपाधापी या शीघ्रता में ही संपादकीय विवेक की परख होती रही है और जब बहुतेरे कथित पढ़े-लिखे पत्रकार संपादक नहीं होते थे, तब भी मीडिया ने धर्म और देश-काल, समाज के मार्गदर्शन (एजेंडा सेटिंग) की अपनी भूमिका का सार्थक

निर्वाह किया है। कम से कम भारतीय पत्रकारिता में गांधी, पराड़कर से आज की नई पीढ़ी के संपादकों-पत्रकारों में भी ऐसे विवेकशील संपादक तो हैं ही। फिर भी, हमें इस चूक्र के लिए आत्मनिरीक्षण करना ही होगा कि 'निर्भया' की तुलना में उस गरीब दलित 10 साल की बच्ची के साथ हुए सेक्स अपराध और उसकी मौत का राष्ट्रीय स्तर पर मुद्दा न बन पाना सिर्फ हमारी यानि मीडिया की भूल थी या और कुछ। वैसे हमें चीफ जस्टिस अल्मतस कबीर साहब का शुक्रगुजार होना चाहिए कि उन्होंने मीडिया कर्म की इस भयंकर भूल की ओर देश का ध्यान आकृष्ट किया।

इसी बीच सुप्रीम कोर्ट ने एक बार फिर संपादक और संपादकीय विवेक को जिम्मेदार ठहराते हुए गुजराती दैनिक 'संदेश' के संपादक की यह अपील खारिज कर भारतीय पत्रकारिता के सामने एक नया यक्ष प्रश्न खड़ा कर दिया है कि कोई भी संपादक सिर्फ इस आधार पर 'अदालत की कार्रवाई से नहीं बच सकता कि कोई खबर बगैर उसकी इजाजत के ही प्रकाशित हो गई। 'न्यायमूर्ति सी के प्रसाद और वी जी गोड़ा की पीठ ने कहा कि संपादक ही उस सामग्री को नियंत्रित करता है, जो प्रकाशित होती है। यह फैसला मीडिया की आत्मशुद्धि के लिए एक दिशानिर्देश जैसा है। 'निर्भया' या 'दामिनी' जैसी बड़ी समाचार-कथाओं की भीड़ में लीड या बैनर का विवेकपूर्ण चुनाव संपादक पर ही निर्भर है। बड़े-बड़े शीर्षकों के नीचे छपी छोटी या कम महत्वपूर्ण खबरों में भी जान फूंकने का काम यानी उन्हें मुद्दा बनाने का काम जहां संपादक का है, वहीं प्रश्न यह भी है कि असली मुद्दे कहीं गौण न हो जाएं। यह चुनौती आज की पत्रकारिता की असली चुनौती बन गई है।

(ये लेखक के अपने विचार हैं)

–हिन्दुस्तान, 17 अप्रैल, 2013

बजट तक पहुंची 'निर्भया' की गूंज

–अंजलि सिन्हा

निर्भया, जिसने दिल्ली ही नहीं, देश के तमाम हिस्सों में तरूणाई को आन्दोलित किया, जो महिलाओं की बढ़ती असुरक्षा एवं उनके खिलाफ बढ़ती यौन हिंसा का प्रतीक बनकर देश में उभरी, उसने सपने में भी नहीं सोचा होगा कि उसकी कुर्बानी को एक दिन सरकार को भी तस्लीम करना पड़ेगा। अपना आठवां बजट पेश करते हुए वित्त मंत्री पी चिदम्बरम द्वारा की गयी यह घोषणा कि सरकार महिलाओं की सुरक्षा के लिए विशेष निर्भया फंड बनाने जा रही है और जिसके लिए एक हजार करोड़ रुपए आबंटित किए गए हैं, से वही निष्कर्ष निकलता है। मालूम हो इस फंड के इंतजाम के लिए ढांचा बनाने, उसके दायरे को तय करने एवं उसे आबंटित करने की जिम्मेदारी महिला एवं बाल विकास मंत्रालय को सौंपी गयी है। प्रस्तुत मंत्रालय को अतिरिक्त 200 करोड़ की राशि भी दी जा रही है। ताकि वह कठिन परिस्थितियों में रहने वाली महिलाओं के मामलों में सहायता प्रदान कर सके।

स्त्रियों में आ रही जागृति, उनके बढ़ते दायरे को रेखांकित करता दूसरा कदम यह भी दिखाता है कि इस बार बजट में सार्वजनिक क्षेत्र में देश के पैमाने पर महिला बैंक बनाने का प्रस्ताव रखा गया है। उसके लिए भी एक हजार करोड़ रुपए का प्रावधान है। अक्टूबर तक इस बैंक के स्थापित किए जाने की योजना है, जो मुख्यतः महिलाओं एवं महिलाओं द्वारा संचालित उद्योगों, महिला स्वयं सहायता समूहों और महिलाओं के जीवनयापन में सहायक होगा। इसमें मुख्यतः महिलाएं ही काम करेंगी ताकि उनके जेंडर व आर्थिक समावेशन के मुद्दों का ठीक से समाधान हो सके।

स्त्रियों की सुरक्षा की गारंटी के लिए इस तरह के फंड का गठन किस हद तक कारगार होगा या आर्थिक सशक्तिकरण के संदर्भ में महिलाओं का बैंक उनकी कितनी सहायता करेगा, इन मुद्दों की विवेचना करने से पहले इस बात को समझना जरूरी है कि इस बजट पर हाशिये से केन्द्र में पहुंचने के लिए तत्पर स्त्री समुदाय की दस्तक जरूर सुनाई देती है। वैसे इसमें दो राय नहीं कि हम दुनिया का एकमात्र

देश होंगे जहां आवश्यक सामाजिक सेवाओं के सार्वजनिक वितरण को 'योजनाओं' के संदर्भ में देखा जाता है, जिन्हें कृतज्ञ जनता के लिए सरकारें 'लोकरंजित खर्चों' के नाम पर पेश करती है। अन्यथा तमाम देशों में यह सरकारों का ही काम होता है कि वह जनता के पोषण, स्वास्थ्य, शिक्षा, सैनिटैशन और रोजगार व जीवनयापन जैसी स्थितियों को सुगम बनाएं। जैसा कि घोष ने कहा था कि हम इन्हें 'योजनाओं' के तौर पर देखने के आदी हो गए हैं, इसलिए थोड़ी बहुत बढ़ोत्तरी होने से मात्र हम खुश हो जाते हैं, इसी बात पर कृतज्ञ रहते हैं कि कम से कम सरकार ने खर्चा घटाया तो नहीं है।

इस रोशनी में अगर हम वित्त मंत्री पी चिदम्बरम द्वारा प्रस्तुत आठवें बजट को देखें, जिसे मीडिया के एक हिस्से द्वारा समावेशी बजट की संज्ञा दी जा रही है तो कुछ बातें समझ में आती हैं। जैसे इसे कहीं-न-कहीं अगले साल होने वाले आम चुनावों के मद्देनजर बनाया गया है, जिसमें हर सेक्टर को कुछ न कुछ रियायत देने की बात की गयी है और महिलाओं का खास ध्यान रखने की भी कोशिश की गई है। अगर समावेशी बढ़ोतरी के लिए कई योजनाओं का ऐलान किया गया है, जिस पर फोकस महिलाओं समेत सामाजिक क्षेत्र एवं ग्रामीण भारत दिखता है तो वहीं कारपोरेट क्षेत्र को भी खुश रखने की कवायद की गयी है। लेकिन बड़ा प्रश्न यह उठता है कि मसलों की व्यापकता को देखते हुए विभिन्न क्षेत्रों में आबंटित रकम काफी है या नहीं।

जैसे स्वास्थ्य को ही देखें जिसका सम्बन्ध समूची आबादी से है, का खर्चा पिछले साल 30, 702 करोड़ रुपए था और इस साल 7, 330 करोड़ रुपए हो गया है। अगर भारत के सकल घरेलू उत्पाद को देखें तो इसका यह 0.35 फीसद ही बैठता है। मालूम हो कि सबसहारा अफ्रीका के तमाम गरीब देशों में भी यह प्रतिशत हमसे कई गुना ज्यादा है। अब लगता है कि मानवीय विकास सूचकांक एवं जीवन की परिस्थितियों के मामले में हम अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कितने पिछड़े हैं। महिला और बाल स्वास्थ्य की बात करें तो हमारे देश में मातृ शिशु मृत्यु दर का चिन्ताजनक होना दशकों से एक बड़ा सवाल बना हुआ है।

बजट में महिला एवं बाल विकास मंत्रालय द्वारा संचालित आई सी डी एस (समेकित बाल विकास परियोजना) की योजना के लिए 17, 7, 00 करोड़ रुपयों का आबंटन किया गया है, जो पिछले साल की तुलना में 11.7 फीसद ज्यादा है। मगर क्या इस बढ़ोत्तरी से हम खुश हो सकते हैं। निश्चित ही नहीं। इसकी कई वजहें हैं। अभावग्रस्त बच्चों की शुरूआती देखभाल एवं शिक्षा के लिए चलायी जा रही प्रस्तुत योजना के लिए किए गए इस बार के आबंटन को देखें तो वह उम्मीद से कम है। पिछले साल भी इस राशि में बढ़ोत्तरी की गयी थी लेकिन तब भी सवाल उठा था कि एक तो इसका अधिकतर हिस्सा आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं एवं सहायकों

के मानदेय में खर्च हो जाता है, दूसरा सुप्रीम कोर्ट द्वारा बार-बार की गयी आलोचना के बावजूद अब भी हम इस योजना को सार्विक या युनिवर्सल नहीं बना सके हैं। आंगनबाड़ी कार्यकर्ताओं को अब भी कानूनी तौर पर तय न्यूनतम राशि नहीं दी जा रही है। स्पष्ट है कि यदि सरकार अभावग्रस्त बच्चों के कल्याण के लिए गंभीर है तो इस राशि को अधिक बढ़ाना चाहिए था। इसका सीधा सम्बन्ध महिलाओं की अर्जक क्षमता बढ़ाने से भी है क्योंकि बच्चों के पालन-पोषण की अत्यधिक जिम्मेदारी के कारण उन्हें सार्वजनिक दायरे की नौकरियों से अक्सर हाथ धोना पड़ता है।

अन्त में, महिला सशक्तिकरण व कल्याण के लिए किये गये प्रावधानों का स्वागत होना चाहिए लेकिन यह सावधानी बरतनी जरूरी है कि नयी योजनाएं शुरू करने के क्रम में पुरानी चल रही योजनाओं को चुपचाप बन्द न कर दिया जाए। याद रहे कि 12वीं पंचवर्षीया योजना के अंतर्गत बनी 'स्टीयरिंग कमेटी ऑन वूमेन्स एजेंसी एंड एम्पॉवरमेंट' के सुझावों के विपरीत महिलाओं के लिए पहले से चली आ रही योजनाओं के लिए भी आबंटन कम था। 11वीं योजना में महिला सशक्तिकरण के मुख्य माध्यम के तौर पर प्रस्तुत की गयी। 'स्वयंसिद्धा' योजना के लिए तो कोई फंड आबंटित ही नहीं किए गए, जबकि स्टीयरिंग कमेटी ने प्रस्ताव रखा था कि इस योजना को देश के हर ब्लॉक स्तर तक फैलाया जाए और 12वीं योजना में उसके लिए कम-से कम 1700 करोड़ रुपए का आवंटन हो। कहने का आशय सिर्फ इतना है कि लोक-लुभावन और समावेशी योजनाओं की सार्थकता तभी है जब व्यावहारिक तौर पर उनका क्रियान्वयन ठीक तरीके से हो। महिला सशक्तिकरण की दिशा में उठाये गये प्रयासों के प्रति सरकार गंभीर होगी, तभी बात बनेगी।

–राष्ट्रीय सहारा, 1 मार्च, 2013

क्योंकि हिंदी पट्टी आज भी मध्ययुग में वास करती है

–एच. एल. दुसाध

फेसबुक से लेकर तमाम अखबार दिल्ली में हुई गैंग रेप की घटना की निन्दा से भरे पड़े हैं। असंख्य लेखक-पत्रकार, महिला साहित्यकार व सामाजिक संगठन घटना की निन्दा करने व समाधान सुझाने के लिए सामने आये हैं। अच्छा लगा कई लोगों ने घटना के तात्कालिक प्रवाह में न बहकर संतुलित प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए दूरदराज के क्षेत्रों में नियमित रूप से ऐसी ही घटनाओं का शिकार हो रहीं वंचित वर्गों की महिलाओं की त्रासदी के तरफ भी ध्यान आकर्षित किया। बहरहाल मेरा मानना है कि हिदी पट्टी आने वाले कई दशकों तक ऐसी घटनाओं के लिए अभिशप्त रहेगी। मैंने जबसे लेखन-चिंतन शुरू किया तबसे ही गाहे-बगाहे अपनी रचनाओं में यह उल्लेख करता रहा हूं कि मानव-सभ्यता की दौड़ में भारत, विशेषकर इसकी हिंदी पट्टी, कम से कम 600 साल पीछे, लगभग मध्ययुग में है। जिस देश के लोगों में यह तमीज नहीं कि मनुष्य को मनुष्य के रूप में आदर दें, उस देश को बर्बर और असभ्य से भिन्न कहा ही क्या जा सकता है। खासतौर से इस मामले में आर्यावर्त की हृदय स्थली का कोई जवाब ही नहीं है। इस इलाके के लोगों को तो मानवताबोध से कुछ लेना-देना ही नहीं है। बाबा साहेब डॉ आंबेडकर ने एनिहिलेशन ऑफ कास्ट्स में हिंदुओं की बर्बरता पर टिप्पणी करते हुए कहा है, 'ऐसा नहीं कि जो हिंदू दलितों पर अत्याचार करते हैं वे बर्बर हैं या उनमें कोई मानसिक विकृति है। दोष हिंदुओं का नहीं, धर्मशास्त्रों का है, जो इसकी प्रेरणा देते हैं। ' बाबा साहेब का अनुसरण करते हुए मैं भी इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि हिंदू अगर मानवताबोध से शून्य हैं तो इसके लिए जिम्मेवार है हिंदू धर्म-संस्कृति जिसका चरमोत्कर्ष इसी इलाके में हुआ। हिंदू धर्म सृष्ट सोच के कारण यहां पशु-पक्षियों, पेड़-पौधों के प्रति तो कुछ करुणा का भाव जरूर रहा, पर दलित, पिछड़ों और महिलाओं की मानवीय अधिकारविहीनता यहां के प्रभुवर्ग को कभी स्पर्श नहीं कर सकी।

जिस विपुल मात्रा में लौकिक नहीं, पारलौकिक सुख का महिमामंडन करता धर्म-साहित्य आर्यावर्त में सृजित हुआ है, वैसा दुनिया के किसी भी विशेष अंचल में नहीं हुआ। पर, परिणाम उल्टा निकला है। हिंदी पट्टीवालों जैसी भौतिक लिप्सा शायद अन्यत्र पैदा नहीं हुई। लेकिन जिनमें अपार लिप्सा पैदा हुई, वे परजीवी रहे। उत्पादन करके उत्थान करने के बजाय दूसरों का उत्पादन हरण करके अपनी समृद्धि का महल खड़ा करना यहां का प्रभुवर्ग अपना दैविक- अधिकार समझता रहा है। दूसरों का उत्पादन हरण करने के साथ ही इस परजीवी वर्ग ने भोग की असीम लालसा पूरी करने के लिए शार्ट कट रास्ता अपनाने में भी गुरेज नहीं किया। यही कारण है कि हिंदी पट्टी नेतृत्व के चलते भारतीय राजनीति मिशन से प्रोफेशन में तब्दील हुई और देश में भ्रष्टाचार का सैलाब आया। भोग की असीम लालसा ने इनमें 'जीओ और जीने दो' की भावना ही नहीं पनपने दिया। फलतः वंचितों के मानवीय और लोकतांत्रिक अधिकारों का बेनजीर हरण हिंदी पट्टी में ही हुआ। आजकल प्रोन्नति में आरक्षण को लेकर जिस दृश्य की अवतारणा इस वर्ग के कर्मचारी कर रहे हैं, उसके पीछे मनोवैज्ञानिक कारण यही हैं कि वे 'जीओ और जीने दो' की भावना से शून्य हैं। हिंदू धर्म-संस्कृतिजनित सोच के कारण हिंदी पट्टी के लोग बहुत सी ऐसी मानवीय बुराइयों में चैम्पियन बने, जिसकी कल्पना अन्य सभ्य समाजों में नहीं की जा सकती। ऐसी ही एक बुराई है बलात्कार जिसमें आर्यावर्त के लोग विश्व चैम्पियन हैं।

मानवीय व्यवहार के हिसाब से हिंदी पट्टी के लोग करुणा के पात्र हैं ही, उनका सेक्स जीवन तो और भी शोचनीय है। मुझे यह कहने में जरा भी झिझक नहीं है कि हिंदी पट्टी सेक्स कुंठित लोगों से ही आबाद है। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि इस इलाके में स्त्री-पुरुष का अबोध मेलजोल सदियों से ही निषिद्ध रहा है। यहां कुछ दशक पूर्व तक युवा पति-पत्नी भी जब चाहें तब नहीं मिल सकते थे। पति को रात के अंधेरे में ही चोरी-चोरी पत्नी से मिलने की इजाजत रही। इस नियम के विपरीत जो खुलकर पत्नी के प्रति आशक्ति का इजहार करने का दुसाहस करते, उन्हें आत्मीय-स्वजनों की नजरों में गिरने की जोखिम लेना पड़ता। अब जाकर स्थिति में कुछ बदलाव आ रह है। जहां पति-पत्नी के बेरोक-टोक मिलने में इतनी दुश्वारियां हों वहां आम लड़के-लड़कियों के फ्री मेलजोल की कल्पना ही कैसे की जा सकती है। अबाध मेल-जोल के अभाव में इस इलाके के लोगों के लिए रोमांस के उपभोग का अवसर नहीं के बराबर रहा। आज से तीन-चार दशक पूर्व कुछ भाग्यवान लोग प्रेम पत्र लिखकर तो कुछ लोग हिंदी फिल्में देखकर उसकी पूर्ति किया करते थे। इसके अतिरिक्त हिंदी पट्टी में अल्पवय में विवाह भी लड़कों को रोमांस से वंचित कर देता था। ऐसा करने पर उनमें अपराधबोध का संचार होता था। सारांश यह कि यहां के लोगों को प्रेयसी से मिलने के लिए निहायत ही कम अवसर सुलभ रहे

जिससे उन्हें रोमांस का अवसर नहीं मिला। मिलने का जो भी थोड़ा बहुत अवसर मिला उसका उपयोग प्रधानतः यौन सम्बन्ध बनाने में हुआ। हिंदी पट्टी के विशेष सामाजिक परिवेश में स्त्रियों से अबाध निकटता के अभाव में इस इलाके के लोग यौन कुंठा का शिकार बनने के लिए अभिशप्त हुए। इसके फलस्वरूप एकांत देखकर महिलाओं पर छींटाकशी करना, बेशर्मी से घूरना; ट्रेन-बसों में मौका पाते ही उनके संवेदनशील अंगों को स्पर्श करना इनकी आदत में शुमार हो गया। इन्हीं में से कुछ अतिरिक्त रूप से कुंठित लोग क्षणिक एकांत का लाभ उठाकर बलात्कार जैसे जघन्य कार्य अंजाम दे देते हैं। ऐसा नहीं कि कुंठा से उपजी जिन समस्याओं की ओर संकेत किया गया है, उससे गैर-हिंदी पट्टी के लोग पूरी तरह मुक्त रहे हैं। नहीं! यौन कुंठा सार्वदेशिक है, किन्तु इसने महामारी का रूप उन्हीं समाजों में लिया है जहां स्त्री-पुरुष के मिलन में अनावश्यक बंदिशें रहीं। इस लिहाज से भारत में हिंदी पट्टी का कोई जवाब नहीं है।

इस कुंठा से यहां के लोग निजात पा सकते थे यदि यहां का कोई विमल मित्र 'कोड़ी दिए किनलाम'; कोई शरत चट्टर्जी 'देवदास' या कोई निमाई भट्टाचार्य 'मेमसाब' जैसी कालजयी रचनाओं का सृजन कर लोगों को दीपंकर सेन, सती, लक्ष्मी दी; देवदास, पारो और मेमसाब जैसा चरित्र उपहार देता और बताता, 'नारी सानिध्य का मजा यौन संसर्ग में नहीं, उसकी खुशियों के लिए सर्वस्व न्योछावर करने में है। ' तब यहां के लोग जानवर की तरह किसी की अस्मत तार-तार करने के बजाय किसी सती का दुःख और लक्षी दी का दुर्भाग्य मोचन करने के लिए खुद को कंगाल बना लेते। पर सुर-तुलसी की विरासत को आगे बढ़ाने वाले प्रेमचंद-निराला-प्रसाद-दिनकर-अज्ञेय-जैन-जैसों के लिए वैसा कर पाना क्या संभव था? मेरे हिसाब से नहीं। पर, बंगाल के मित्र, चट्टर्जी, भट्टाचार्जी वैसा करने में सफल रहे तो क्या इसलिए कि वे इनसे उन्नततर सोच और मानवताबोध से संपन्न थे? हां थे पर, उसका श्रेय उनको नहीं किसी और को जाता है और वे थे अंग्रेज।

जहां तक बंगाल के मनीषियों का सवाल है, वे भी हिंदी पट्टीवालों की भांति दो विशेष बोध-मानवता और देशात्मबोध से पूरी तरह शून्य रहे। भूरि-भूरि क्रान्तिकारी जननेवाली बंगभूमि देशात्मबोध से कितनी शून्य थी इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि जब साहित्य सम्राट बंकिम ने 'आनंदमठ' में बन्देमातरम् का मन्त्र फूंका, अंग्रेज भाषाविद् ग्रीयसन ने आरोप जड़ दिया कि बंकिम की रचना में यदि वंदे मातरम् का आशय मातृभूमि की वंदना से है तो यह हमसे (अंग्रेजों) ली हुई अवधारणा है। समस्त आर्य साहित्य में मातृभूमि की वन्दना का कहीं उल्लेख नहीं है। बंकिम बाबू उस पर चुप्पी साध लिए थे। मानवताबोध की बंगालियों की समझ का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि भारत में समाज सुधार के पितामह राजा राममोहन राय एक बार भी सती-प्रथा की आलोचना इस ग्राउंड पर नहीं कर

सके कि यह अमानवीय है इसलिए इसका उन्मूलन होना चाहिए। कुछ वही हाल विधवा-विवाह के समर्थक पंडित विद्यासागर का रहा। इन दोनों महानुभावों ने क्रमशः इस आधार पर सती और विधवा-प्रथा के उन्मूलन का समर्थन किया कि ये शास्त्र-सम्मत नहीं हैं।

बहरहाल हिंदू धर्म-संस्कृति द्वारा मानवता का जो अमापनीय संहार किया गया वह सिर्फ दो प्रकार की शुद्धता-कर्म और वर्ण शुद्धता की रक्षा के नाम पर हुआ है। कर्म-शुद्धता का आशय इस बात से था कि जन्म/जाति सूत्र से जिस वर्ण को जो कर्म निर्दिष्ट किया गया है वही उसे पीढ़ी दर पीढ़ी करते जाना है। वहीं वर्ण-शुद्धता का मतलब यह रहा कि वर्ण-व्यवस्था के प्रत्येक वर्ण के सदस्य को जाति/वर्ण से बाहर नहीं, निज-जाति/वर्ण के मध्य ही विवाह करना है। कर्म-शुद्धता के नाम पर अंग्रेजों के आगमन पूर्व शूद्र-अतिशूद्रों के लिए शिक्षा, पौरोहित्य, राज्य-संचालन, सैन्य वृत्ति, व्यवसाय-वाणिज्य का काम हजारों साल से निषिद्ध रहा। इसके फलस्वरूप जिस बड़े पैमाने पर राष्ट्र के मानव संसाधन की हानि की गई एवं जिस पैमाने पर बहुसंख्यक आबादी को शक्ति के स्रोतों (आर्थिक-राजनीतिक-धार्मिक) से दूर रखा गया, उसकी कोई मिसाल मानव जाति के सम्पूर्ण इतिहास में नहीं है। इसी तरह वर्ण-शुद्धता की रक्षा के लिए सती-प्रथा के तहत सवा करोड़ को अग्निदग्ध (महापंडित राहुल के अनुसार); विधवा-प्रथा के तहत कोटि-कोटि को जिंदा लाश में परिणत और बालिका विवाह -प्रथा के तहत अरबों बच्चियों को बाल्यावस्था से सीधे युवावस्था में उछालकर रख दिया गया। अगर यह सब अमानवीय कार्य था, तो हिंदी पट्टी के प्रभुवर्ग की भांति ही विमल मित्र, शरत चटर्जी और निमाई भट्टाचार्य के पुरखे भी बिना किसी विवेक-दंश के, सोत्साह ऐसे कार्यों को अंजाम देते रहे। किन्तु मित्र-चटर्जी-भट्टाचार्य भाग्यवान रहे कि आधुनिक ज्ञान-विज्ञान और मानवताबोध से लैस अंग्रेजों के कदम सबसे पहले उनके इलाके में पड़े। इसी तरह सबसे पहले एक उन्मुक्त समाज, जिसमें नारी-पुरुष का अबाध मेलजोल रहा, जिसमें अपनी पत्नी को दूसरे के साथ डांस करते देख पति की भृकुटी नहीं तनती थी- की निकटता प्राप्त करने का सौभाग्यलाभ उनके ही पुरखों को मिला। इस हिसाब से हिंदी पट्टी वाले अभागे रहे। उन्हें यह अवसर शताधिक वर्ष बाद भी ठीक से नहीं मिला। अंग्रेजों के सौजन्य से मिले ज्ञान-विज्ञान, रहन-सहन का भरपूर लाभ बंगालियों ने उठाया और सभ्यता की दौड़ में दूसरे भारतीयों से इतना आगे निकल गए कि एक दिन कहना शुरू किया बंगाल आज जो सोचता है, शेष भारत वह कल करता है।

बंगालियों ने सभ्यतर अंग्रेजों का हर तरह से नकल किया। इसका असर उनके साहित्य और जीवन शैली में प्रतिबिम्बित हुआ। मुझे 1962 से 1995 तक कला और संस्कृति की पोषिका बंग भूमि में रहने का अवसर मिला। वहां 50 वर्ष पूर्व मैंने एक मिनी उन्मुक्त भारत का साक्षात् लाभ का अवसर पाया था जिसमें युवक-युवतियां

सहजता से मिलते थे; लड़कियां लड़कों के लिए हौवा नहीं थी और वहां के लड़कों की आंखों में वासना की भूख नहीं, प्रेम की आकुलता दिखती थी। वहां हर मोहल्ले में छोटे-मोटे दीपंकर सेन, देवदास मिल जाया करते थे। वहां हिंदी पट्टी जैसी बलात्कार की घटनाएं रेयरली सुनाई पड़ती थीं। बहरहाल सवाल यह है कि यौन-कुंठा से उपजी बलात्कार जैसी समस्या से राष्ट्र कैसे निपटे।

इस समस्या पर गौर करते समय यह ध्यान रखना होगा कि दिल्ली की गैंग रेप और गांव देहात की दुर्बल महिलाओं के बलात्कार के पीछे एक समान मानसिकता क्रियाशील नहीं रहती। दिल्ली के गैंग रेप के पीछे निश्चय ही यौन कुंठा प्रधान कारक है। किन्तु शहरों से दूरदराज के इलाकों में बलात्कार और यौन शोषण की जो भूरि-भूरि घटनाएं रोजमर्रा की चीज बन गई हैं, उसके पीछे एक भिन्न मानसिकता क्रियाशील रहती है। वहां दिल्ली जैसी घटनाओं को अंजाम देने वाले लोग सिर्फ यौन कुंठा के शिकार नहीं हैं। वे ऐसी घटनाओं को अंजाम देकर एक उभरते हुए समाज का मनोबल तोड़ने और अपने टूटते प्रभुत्व को नए सिरे से स्थापित करना चाहते हैं। हां इनमें एक ही साम्यता है और वह यह कि वे एक मध्ययुग में जी रहे बर्बर समाज के अंग हैं जिसमें मानवीय विवेक नहीं है। अगर हमें बलात्कार जैसी समस्या से निजात पाना है तो बिना कोई भ्रम पाले, भारतीय समाज की इस अप्रिय सच्चाई को ध्यान में रखकर ही कोई योजना बनानी होगी।

आधुनिक भारत का इतिहास बताता है कि जब भी भारतीय किसी अमानवीय परम्परा से दूर हुए हैं तो सिर्फ और सिर्फ कानून के डंडे के जोर से। सती -विधवा-बालविवाह-गंगा प्रवाह प्रथा जैसे कई अमानवीय प्रथाओं को सिर्फ कानून के जोर से ही दूर किया गया। प्रायश्चित बोध से प्रेरित होकर इनसे मुक्ति के लिए कभी हमारा समाज स्वतःस्फूर्त रूप से सामने नहीं आया। हजारों साल से हिंदू समाज की बर्बरता का शिकार बने दलित-आदिवासी-पिछड़ों और महिलाओं को जो भी मानवीय अधिकार मिले, उसे कानून के डंडे जोर से ही दिलाया गया है। भारत में मानवता की जो भी स्थापना हुई है वह सिर्फ और सिर्फ कानून के जोर से। ऐसे में दिल्ली जैसी घटनाओं से बलात्कारियों को शिक्षा देने के लिए कानून द्वारा सख्त से सख्त दंड का ऐसा प्रावधान किया जाना चाहिए कि जघन्य कार्य अंजाम देने के पहले, उसके अंजाम के बारे में भी दो बार सोचे। लेकिन दूरदराज के इलाकों में दलित-आदिवासी और पिछड़े समाज की महिलाओं को दरिंदगी से निजात दिलाने के लिए कानून का अतिरिक्त इस्तेमाल करना होगा।

जैसा कि पूर्व पंक्तिओं में बताया गया है कि सुदूर इलाकों में ऐसे घटनाओं को अंजाम देने में यौन कुंठा कम, एक उभरते समाज के मनोबल को ध्वस्त कर अपना प्रभुत्व कायम रखने की भावना ज्यादा क्रियाशील रहती है। वहां एक ऐसे समाज की महिलाओं को टारगेट बनाया जाता है जो शक्तिहीन हैं। यहां काबिले

गौर है कि जो लोग दलित-पिछड़ों पर तरह-तरह का जुल्म ढाते हैं, जिसमें बलात्कार भी शामिल है, उनकी खासियत यह है कि वे दुर्बल के यम और ताकतवर के भक्त होते हैं। उनके इस मनोविज्ञान को ध्यान में रखते हुए सर्वोत्तम उपाय यही दिखता है कि शक्तिहीन सामाजिक समूहों को शक्तिशाली बनाने के लिए कानून का शक्तिशाली इस्तेमाल किया जाय। चूंकि सारी दुनिया में शक्ति के प्रमुख स्रोतों-आर्थिक, राजनीतिक, और धार्मिक से ही दूर रखकर ही विभिन्न तबकों और महिलाओं को अशक्त बनाया गया है। ऐसे में यदि हम अशक्तों को बर्बर समाज की दरिंदगी से निजात दिलाना चाहते हैं तो उन्हें शक्ति से लैस करना पड़ेगा। इसके लिए एक ही उपाय है 'शक्ति के केन्द्रों में सामाजिक और लैंगिक विविधता का प्रतिबिम्बन। '

सुप्रीम कोर्ट के पूर्व जस्टिस मार्कंडेय काटजू ने कहा है कि दुष्कर्म देश की एकमात्र समस्या नहीं है। अगर शक्ति के स्रोतों में सामाजिक और लैंगिक विविधता का मुक्कमल प्रतिबिम्बन कराया जाता है तो राष्ट्र दुष्कर्म जैसी समस्या से तो राहत पायेगा ही पायेगा, मानव-जाति की सबसे बड़ी समस्या आर्थिक और सामाजिक गैर-बराबरी, जिसकी सर्वाधिक व्याप्ति भारत में ही है से भी निजात पा जायेगा। क्या दिल्ली गैंग रेप पर आंखों से गंगा-जमना बहाने वाले महिला संगठन, बुद्धिजीवी, मीडिया विविधता को लागू करवाने के लिए सामने आयेंगे?

–दलित दस्तक, जनवरी 2013

भारतीय राज्य पर कब्जा जमाने का भयावह मंसूबा

–एच. एल. दुसाध

2011 के भ्रष्टाचार विरोधी मुहिम के बाद जब युवाओं ने 2012 के दिसंबर में एकाधिक बार तहरीर चौक के दृश्य की पुनरावृत्ति की, भारतीय मीडिया और बुद्धिजीवी वर्ग उसकी तारीफ में पहले से कही ज्यादा मुखर हो उठे। जिस युवा वर्ग ने मीडिया और बुद्धिजीवी वर्ग को चमत्कृत किया है वह और कोई नहीं, सवर्णों की वे संताने हैं, जिन्होंने भूमंडलीकरण के दौर के नव-सृजित अवसरों का लाभ उठाकर खुद को एक ताकतवर वर्ग में तब्दील कर लिया है। उसके कृतित्व से अभिभूत एक बुद्धिजीवी ने हाल ही में उसके विषय में कुछ रोचक सूचनाएं उपलब्ध कराते हुए कहा है–'अब तक इस वर्ग के युवा इसलिए सो रहे थे क्योंकि जानते थे कि कुछ भी करना व्यर्थ होगा। उनकी 2001 तक देश की कुल आबादी में महज 6 फीसदी हिस्सेदारी थी। ऐसे में इस वर्ग के लोग जानते थे कि वे चुनावी नतीजों पर असर नहीं डाल सकते। लेकिन यह सब इतिहास है।

मध्यम वर्ग ने अभूतपूर्व गति से अपनी तादाद बढ़ाने के साथ यह भांप लिया है कि उसकी राजनीतिक अप्रासंगिकता का दौर अब लद गया है। 'नेशनल कौंसिल फॉर एप्लायड इकोनोमी' की रिसर्च के मुताबिक 2001-2002 में 5.7 फीसदी मध्यम वर्ग था, जो आज देश की कुल आबादी का 15 फीसदी है। उम्मीद है कि देश की कुल आबादी में इसकी हिस्सेदारी 2015-16 तक बढ़कर 20.3 और 2025-26 तक 37.2 फीसदी हो जायेगी। ऐसे में कोई आश्चर्य नहीं कि मध्यम वर्ग इस तरह का बर्ताव करने लगा है, मानो उसके पर लग गए हों और वह देश के भविष्य को अपने हाथों में लेकर इसे संवारना चाहता है।

मगर मध्यम वर्ग वास्तव में चाहता क्या है? इसका जवाब पाने के लिए आपको सिर्फ यह देखना है कि वे किस तरह के मसलों पर सड़कों पर उतर रहे हैं। पहला और सबसे महत्वपूर्ण, वे सुदृढ़ कानून-व्यवस्था तथा अपराधमुक्त सड़कें चाहते हैं। वे कानून का राज्य और नेताओं, नौकरशाहों, पुलिसकर्मियों से जवाबदेही की उम्मीद करते हैं। वे चाहते हैं कि भ्रष्टों को दण्डित किया जाय। वे बेहतर लोकसेवायें चाहते

हैं। वे उच्च गुणवत्ता युक्त शिक्षा चाहते हैं। यह सूची और भी लंबी है। जरा सोचें कि इस सूची की उन चीजों के बीच कितनी विसंगति है, जिनको लेकर अमूमन राजनेता अपना अभियान चलाते हैं। इन चीजों में मुफ्त खैरात (साईकिल, टीवी सेट्स इत्यादि) तथा विभिन्न जातियों और समुदायों के लिए आरक्षण शामिल है। ... भारतीय राजनीति व्यापक बदलाव की दहलीज पर खड़ी है। नए मध्यम वर्ग को अपनी क्षमताओं का अहसास हो गया है। हालांकि यह अबतक खुद अपनी मुखर आवाज नहीं खोज पाया है, लेकिन तलाश जारी है और यह उसे पा भी लेगा। दुनिया भर के अनुभव बताते हैं कि जब मध्यम वर्ग खेल में उतरता है तो लोकतंत्र में मजबूती आती है और शासन भी सुधरता है। '

तो पाठक बंधुओं! अरब जनविद्रोह के बाद भारतीय मध्यम वर्ग ने भ्रष्टाचार और बलात्कार के नाम पर रह-रह कर जो जनसैलाब पैदा किया है, उसके पीछे उसका अघोषित लक्ष्य देश का नहीं, बल्कि अपने बाल-बच्चों का भविष्य सवारने के लिए सत्ता की बागडोर अपने हाथ में लेना है। वह 2025-26 को ध्यान में रखकर, जब भारत विश्व का आर्थिक महाशक्ति बन जायेगा तथा उसकी (मध्यम वर्ग) कुल आबादी में 37.2 प्रतिशत हिस्सेदारी हो जायेगी, छोटे-मोटे मुद्दों पर संगठित होकर सत्ता कब्जाने का पूर्वाभ्यास कर रहा है।

भारतीय राज्य पर कब्जा जमाने का पूर्वाभ्यास कर रहे मध्यम वर्ग के कुत्सित षड्यंत्रों के तरफ पाठकों का ध्यान आकर्षित करने के लिए मैं 2011 के उस दौर की याद दिलाना चाहूंगा जब हमारा मध्यम वर्ग इंडिया अगेंस्ट करप्सन वालों के पीछे लामबंद हुआ था। तब टीम हजारे हो या मध्यम वर्ग अथवा मीडिया और बुद्धिजीवी वर्ग, हर किसी को भ्रष्टाचार के खात्मे की एकमेव दवा नजर आई थी-जनलोकपाल समिति का निर्माण। इनमें किसी ने भी भ्रष्टाचार के पीछे क्रियाशील सामाजिक मोविज्ञान; 'भ्रष्टाचार का जातिशास्त्र'; धन-तृष्णा के पीछे क्रियाशील आकांक्षा-स्तर (लेवल ऑफ एस्पिरेशन) तथा उपलब्धि- अभिप्रेरणा (एचीवमेंट मोटिवेशन) इत्यादि को समझने की कोशिश ही नहीं की। बहरहाल जनलोकपाल/लोकायुक्त की कवायद के पीछे भूमंडलीकरण के दौर के सवर्णों का बहुजन प्रधान राजनीति पर सुपर-कंट्रोल स्थापित करना था, यह बात इस कॉलम में कई बार लिख चुका हूं, लिहाजा इसके विस्तार में न जाकर दिल्ली गैंग रेप पर आता हूं।

जनलोकपाल के अभियान के दौरान मैंने जो आशंका व्यक्त की थी वह दिल्ली गैंग-रेप के खिलाफ युवक-युवतियों की लामबंदी के बाद यकीन में तब्दील हो गयी, जिसे पुख्ता करने में उपरोक्त सूचना ने बड़ा योगदान किया है। इसका अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि मध्यम-वर्ग इसके पीछे क्रियाशील सामाजिक और यौन-मनोविज्ञान की एक बार फिर पूरी तरह अनदेखी कर, अबिलम्ब जबरन बलात्कारियों को फांसी या नपुंसक बनाने की उग्र मांग उठा रहा है। वैसे ऐसा नहीं है कि वह

कठोर कानून की व्यर्थता से नावाकिफ है। वह देख रहा है कि जबसे कठोर कानूनों की मांग उठ रही है, तबसे देश के विभिन्न इलाकों में पहले की भांति ही नियमित अंतराल पर दुष्कर्म की घटनाएं हो रही हैं। बावजूद इसके वह उठा रहा तो इसलिए कि जब एक बार जनदबाव में आकर सरकार उसकी फौरी मांग मान लेती है, वह जनभावना से जुड़े तरह-तरह के मुद्दों के नाम पर सरकार को झुकाता चला जायेगा। इस तरह एक अंतराल के बाद शासन-प्रशासन का मामला अपने हाथ में ले लेगा।

यदि वह सदिच्छा के साथ दुष्कर्म की घटना की तह में जाता तो पता चलता कि बलात्कार जैसी वैश्विक समस्या हिंदी पट्टी में ही महामारी का रूप धारण कर चुकी है। इसलिए कि यह इलाका मानव-सभ्यता की दौड़ में लगभग 600 साल पीछे है, जहां के लोगों में मानवाधिकारों की कोई कद्र नहीं तथा अधिकतम लोग ही यौन-कुंठा के शिकार हैं। ऐसा है इसीलिए इस इलाके में शरत चटर्जी की 'देवदास', विमल मित्र की 'खरीदी कौड़ियों के मोल' या निमाई भट्टाचार्य की 'मेमसाब' जैसी कोई साहित्यिक रचना वजूद में नहीं आई। तब वह हिंदी पट्टी के सर्वोत्तम शहर दिल्ली में हर साल औसतन साढ़े 600 से ऊपर होने वाली दुष्कर्म की घटनाओं को कोलकाता के 47 घटनाओं के स्तर पर लाने का उपक्रम चलाता; वह उपलब्धि करता कि दिल्ली रेप के पीछे यदि यौन-कुंठा है तो सुदूर इलाकों में भूरि-भूरि घटनाओं के पीछे उभरते वंचित समाज का मनोबल तोड़ना है। मुख्यतः हिंदी पट्टी का यह खुद कुंठित मध्यम वर्ग, यदि महिला अधिकारों के प्रति जरा भी संवेदनशील होता तो इस जनसैलाब का इस्तेमाल वह शक्ति के स्रोतों-आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक में लैंगिक विविधता के प्रतिबिम्बन की मांग उठाता, ताकि भारत महिला सशक्तिकरण के मोर्चे पर बांग्लादेश जैसे पिछड़े राष्ट्र से पीछे रहने के कलंक से निजात पा सके। लेकिन ऐसा न करके उसने इच्छाकृत रूप से नारी-अशक्तिकरण के बजाय बलात्कार को नारी-जाति की सबसे बड़ी समस्या के रूप में स्थापित कर दिया है। इससे महिला सशक्तिकरण का मामला सालों पीछे चला गया है। बहरहाल मेरा मानना है कि मीडिया और बुद्धिजीवी वर्ग, जिसने जनलोकपाल और दिल्ली गैंग रेप में मध्यम वर्ग की भूमिका का अंधा समर्थन किया, मध्यम वर्ग के युवाओं के साथ मिलकर भारतीय राज्य के खिलाफ एक भयंकर षड्यंत्र कर रहा है। अगर उसमें सत-साहस है तो उसे मुझ जैसे 51 किताबों के लेखक को भ्रांत प्रमाणित करने के लिए सामने आना चाहिए। अगर नहीं करता है तब मान लिया जाएगा कि वह षड्यंत्र रच रहा है।

–देशबन्धु, 5 जनवरी, 2013

एक ऐतिहासिक प्रायश्चित की जरूरत

–एच. एल. दुसाध

16 जनवरी को दिल्ली गैंग रेप की घटना के एक माह पूरे हो चुके हैं, लेकिन मध्यम वर्ग के युवाओं का इसके खिलाफ ऐतिहासिक प्रतिवाद अब भी थोड़ा-बहुत जारी है। अब भी वह बलात्कारियों को फांसी पर लटकाने या नपुंसक बनाने की अपनी एक सूत्रीय मांग पर टिका हुआ है। उसकी भूमिका को दृष्टिगत रखते हुए मैंने अपने पिछले कॉलम में बहुत ही आहत मन से लिखा था-'मुख्यतः हिंदी पट्टी का यह खुद कुंठित मध्यम वर्ग, यदि महिला अधिकारों के प्रति जरा भी संवेदनशील होता तो इस जनसैलाब का इस्तेमाल वह शक्ति के स्रोतों-आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक में लैंगिक विविधता के प्रतिबिम्बन की मांग उठाने के लिए करता ताकि भारत महिला सशक्तिकरण के मोर्चे पर बांग्लादेश जैसे पिछड़े राष्ट्र से भी पीछे रहने के कलंक से मुक्ति पा सके। लेकिन ऐसा न करके उसने नारी-अशक्तीकरण के बजाय बलात्कार को नारी-जाति की सबसे बड़ी समस्या के रूप में स्थापित कर दिया है। इससे महिला सशक्तिकरण का मामला सालों पीछे चला गया है। ' बहरहाल आज जबकि दिल्ली गैंग रेप के जरिये नारी समस्या केन्द्र में आ गई जरूरत इस बात की है कि भारत में महिला अशक्तीकरण की समस्या पर नए सिरे से रोशनी डाली जाय ताकि यह मुद्दा सही स्पेस बना सके।

यदि सारी दुनिया में महिला अशक्तीकरण की समस्या पर गौर किया जाय तो एक ही कॉमन बात दिखाई पड़ेगी, वह यह कि जिनके हाथ में सत्ता की बागडोर रही उन्होंने तरह-तरह के उपायों द्वारा शक्ति के स्रोतों में महिलाओं को न्यायोचित भागीदारी न देकर ही इस समस्या को जन्म दिया। भारत में इसकी सृष्टि का कारण बनी वह वर्ण-व्यवस्था, जो हिंदू धर्म का प्राण व आधार है एवं जिसे विवेकानंद जैसे संत बड़े गर्व से मानव-जाति को ईश्वर प्रदत्त सर्वश्रेष्ठ उपहार कहा करते थे। किन्तु असल में वर्ण-व्यवस्था विभिन्न वर्णों के मध्य शक्ति के स्रोतों की वितरण व्यवस्था रही। इसमें स्व-धर्म पालन की आड़ में कर्म-संकरता की निषेधाज्ञा और कर्म-शुद्धता की अनिवार्यता के जरिये शिक्षा, पौरोहित्य, राज्य संचालन में मंत्रणादान, शासन-प्रशासन,

भूस्वामित्व, सैन्यवृत्ति, पशुपालन, व्यवसाय-वाणिज्य का अधिकार मात्र ब्राह्मण-क्षत्रिय और वैश्यों से युक्त सवर्णों के मध्य वितरित की गई। इसमें दलित-आदिवासी और पिछड़ों के लिए शक्ति के स्रोतों में रत्ती भर भी भागीदारी नहीं दी गई। इनके हिस्से में आई सिर्फ शक्तिसंपन्न तीन उच्चतर वर्णों की सेवा, वह भी पारिश्रमिकरहित।

वर्ण-व्यवस्था में शुद्रातिशूद्रों की भांति ही महिलायें भी शक्ति के स्रोतों से पूरी तरह वंचित की गईं जिसका अपवाद सवर्ण महिलाएं तक न हो सकीं। इसमें उन्हें न तो स्वतंत्र रूप से अर्थ संचय करने का और न ही राजसत्ता में हिस्सेदारी का ही रत्ती भर भी अवसर रहा। जहां तक धार्मिक शक्ति का सवाल है न तो वे किसी धाम का शंकराचार्य बन सकती थीं न ही किसी मंदिर का पुजारी। और तो और उनके लिए जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य, मोक्ष अर्जित करने के लिए आध्यात्मानुशीलन भी निषेध रहा। सभी जाति/वर्ण की महिलाओं के लिए ही मात्र पति चरणों (चाहे पति अय्यास और कुष्ठ रोगी ही क्यों न हो) में ही मोक्ष संधान का प्रावधान किया गया। हजारों साल के मानव जाति के इतिहास में धर्म की आड़ में ऐसा कहीं कोई अर्थशास्त्र तैयार नहीं हुआ, जिसके तहत देश की 93 प्रतिशत आबादी को निर्ममतापूर्वक शक्तिहीन रखने का सफल उपक्रम चलाया गया हो। लेकिन भारत में ऐसा इसलिए हुआ कि वर्ण-व्यवस्था के प्रवर्तक विदेशी थे। हम सभी जानते हैं कि दुनिया में सर्वत्र ही विदेशी हुक्मरानों का मुख्य लक्ष्य किसी भी तरह से पराधीन बनाये गए देश के सम्पदा संसाधनों पर कब्जा जमाना होता है, जिसके अपवाद भारत के आर्य न हो सके।

भारत में तमाम वर्णों की महिलाओं को ही शक्तिहीन बनाने का जघन्यतम कार्य इसलिए अंजाम दिया गया कि आर्य अपने साथ महिलाओं को नहीं लाए थे। इसीलिए उन्होंने जिन देशीय महिलाओं को अपनी जैविक जरूरतवश जीवन संगिनी बनाया उनके प्रति भी वे सदय न हो सके, क्योंकि उनकी हैसियत दासी से भिन्न नहीं रही। यही कारण है उन्होंने शक्ति के बंटवारे की व्यवस्था को चिर-स्थाई बनाने के लिए जो सुरक्षात्मक उपाय किये उनमें सर्वाधिक कुरबानी सवर्ण महिलाओं को देनी पड़ी।

दुनिया भर के समाजशास्त्री हैरान रहते हैं कि सारी दुनिया की तमाम आदिम व्यवस्थाएं अतीत की चीज बनकर रह गईं, किन्तु वर्ण-व्यवस्था आज भी अटूट है। इसका एक अन्यतम कारण यह है कि कहीं भी एक व्यवस्था को अक्षत रखने के लिए, भारत जैसा विपुल साहित्य तैयार नहीं हुआ। वैदिक काल के वेद-स्रष्टा अनाम मनीषियों; मध्य युग के सुर-तुलसी, मीरा से लेकर आधुनिक युग के बंकिम-रवि-निराला और उनके अनुसरणकारियों द्वारा रचित सम्पूर्ण साहित्य का ही लक्ष्य प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से वर्ण-व्यवस्था के अर्थशास्त्र को बलिष्ठता प्रदान करना है। किन्तु यह वर्ण-व्यवस्था के अमरत्व का एकमेव व प्रधान कारण नहीं है। प्रधान कारण तो यह है कि आर्यों ने स्व-धर्म पालन की ही आड़ में वर्ण-शुद्धता की अनिवार्यता और वर्ण-संकरता के

निषेध के लिए कुछ ऐसी प्रथाओं और प्रावधानों को जन्म दिया जिसके कारण ही उनकी भावी पीढ़ी का शक्ति के स्रोतों पर ऐसा एकाधिकार कायम हुआ, जो इक्कसवीं सदी में भी लगभग अटूट है।

वर्ण-व्यवस्था के अर्थशास्त्र को प्रत्येक हमले से सुरक्षित रखने के लिए उसके प्रवर्तकों ने अछूत-प्रथा के साथ जिन तीन विशेष प्रथाओं को जन्म दिया वे हैं, सती-विधवा और बालिका विवाह-प्रथा। दुनिया ने मृत्यु का साडम्बर अनुष्ठान रोम के ग्लेडियेटर युद्ध और स्पेन के बुल फाईट में देखा है। किन्तु ये सारे अनुष्ठान सतीदाह के आध्यात्मिक अनुष्ठान के समक्ष फीके रहे। सतीदाह-प्रथा में मां, बहन, बेटी के रूप में बिधवा बनी महिला को अग्निदग्ध करने में उसके ही पुत्र, बाप और भाई को जरा भी विवेकदंश नहीं होता था। बहु-पत्नीवादी व्यवस्था के कारण कभी-कभी एक साथ कई-कई दर्जन महिलाओं को जला डाला जाता था। महापंडित राहुल सांकृत्यायन के अनुसार भारतवर्ष के समग्र इतिहास में सवा करोड़ नारियों को अग्निदग्ध कर मार डाला गया तो विधवा प्रथा के तहत अरबों नारियों को जिन्दा लाश में परिणत कर दिया गया। इसी तरह बालिका-विवाह प्रथा के तहत आज तक कितनी बच्चियों को बाल्यावस्था से सीधे युवावस्था में उछालने का जघन्य कार्य अंजाम दिया गया, इसकी कल्पना कोई भी कर सकता है। यह काबिले गौर है कि सारी दुनिया में पुरुषवादी सत्ता के संचालकों ने महिलाओं को शक्ति के स्रोतों से वंचित रखकर उन्हें शक्तिहीन बनाने का कार्य अंजाम दिया। किन्तु भारत के सत्ताधारियों ने वैसा करने के साथ ही सती-विधवा और बालिका विवाह-प्रथा के तहत अरबों महिलाओं को जो शारीरिक-मानसिक यंत्रणा देने का ऐतिहासिक अपराध किया, उसकी विश्व में कोई और मिसाल हो तो पाठक इस लेखक का ज्ञानवर्द्धन करें। मुट्ठी भर विदेशगत लोगों के हित में वर्ण-व्यवस्था के अर्थशास्त्र को अक्षत रखने के लिए भारतीय महिलाओं को जो कुर्बानी देनी पड़ी है उसका शक्ति के समस्त स्रोतों में लैंगिक-विविधता का सम्पूर्ण प्रतिबिम्बन अर्थात् महिलाओं की 50 प्रतिशत हिस्सेदारी ही एकमात्र प्रायश्चित हो सकता है। क्या दिल्ली गैंग रेप के खिलाफ अभूतपूर्व जनसैलाब पैदा करने वाले मध्यम वर्ग के युवक-युवतियां और उनके समर्थन में जमीन आसमान एक करने वाली प्रिंट व इलेक्ट्रॉनिक मीडिया तथा देश का बुद्धिजीवी वर्ग ऐतिहासिक प्रायश्चित की बिन्दु पर विचार करेगा?

–देशबन्धु, 19 जनवरी, 2013

अध्याय-3

भगाणा की निर्भयायें

अध्याय-3

भगाणा की निर्भयायें और बुद्धिजीवी

उग्र हिन्दूवाद के द्वारा किये जा रहे दमन का निवारण

–बुद्धशरण हंस

बहुत दुख की बात है कि आज की तारीख में भी हिन्दू मानसिकता भारत के महान संविधान की भावनाओं से ज्यादा हिन्दू शास्त्रों की भावनाओं का ज्यादा कद्र करती है। भारत का संविधान भारत के सभी नागरिकों को समान मानने का आग्रह करता है, यह हिन्दू मानसिकता के सामंत, जागीरदार, मठाधीश के लिए कोई मायने नहीं रखता है। हिन्दू शास्त्र धर्म के आधार पर ब्राहमण, सवर्ण को श्रेष्ठ और शेष बहुजनों को नीच मानती है, यह शास्त्रदेश ब्राह्मण, सवर्ण के लिए बहुत मायने रखता है। इस विरोधाभाष में भारत के बहुसंख्यक नागरिक आज भी जी रह हैं।

हिन्दू उग्रवादी तत्वों द्वारा अपने ही गांववासियों पर जाति घृणा के आधार पर क्रूर दमन का सिलसिला भारत देश के गांवों में आज भी भयानक रूप से जारी है। इसी हिन्दू उग्रवाद से दहशतगर्द होकर यहां तक कहा जाने लगा है कि ब्राह्मणवाद मे जीना जीवित सन्तान की शोकसभा करना है। दिल्ली बार्डर पर नोएडा के कनावनी गांव में 29 अप्रैल को गांव के दबंग सामंतों ने दलितों की बस्ती में जमकर उत्पात मचाया। दलितों के घरों को सामंतों ने तहस-नहस कर दिया। गांव के स्कूल को ढाह दिया। गांव के गरीब मजदूरों के जानमाल पर आफत मचाने के निहित दबंगों ने कई चक्र गोलियां भी चलाई, जिससे एक युवक की मौत भी हो गयी। इस भयानक आतंक के बाद खानापुरी के लिए पुलिस आई। मगर पुलिस आने के बाद भी गांव के गरीब प्राणरक्षा के निमित गांव छोडकर अन्य सपरिवार भाग गये।

इस भयानक घटना के बाद पहले की तरह न केन्द्र सरकार को शर्म आयेगी, न राज्य सरकार को, न पुलिस प्रशासन को, कार्यपालिका को न न्यायपालिका को, न वहां के स्थानीय सांसद को, न विधायक को, न मुखिया को न सरपंच को। जैसे पूर्व में अन्य दमनकारी घटनाओं का हस्र हुआ, वैसे ही इस क्रूर घटना का भी हस्र होगा। पुलिस कुछ सही-गलत लोगों की गिरफ्तारी की खानापुरी करेगी, छोटे या बडे नेता बयानबाजी करेंगे, घड़ियाली आंसू बहायेंगे, सरकार कुछ अनुदान या रसद पानी देकर रस्म अदायगी करेगी और न्यायपालिका हिन्दू मानसिकता से सराबोर होकर न्याय के नाम पर अन्याय करेगी। जिस गरीब को मरना था, वह बेचारा होकर मार गिराया गया। गांव के शेष बेचारे बेसहार होकर फिर अपने गांव के उसी क्रूर सामंत के सामने जीविका के लिए घुटने टेक देंगे और भविष्य में पुनः गांव के सामंतों की बंदूकों से मरने के लिए चौबीस घंटे सिहरे और सिकुड़े जीते रहेंगे।

दलितों के सम्मान का विरोध करते हैं सामंत। दलितों की शिक्षा का विरोध करते हैं सामंत। दलितों के रोजगार का विरोध करते हैं सामंत। दलितों की आर्थिक सम्पन्नता का विरोध करते हैं सामंत। दलितों की राजनीति का विरोध करते हैं सामंत। दलितों की धर्म संस्कृति का विरोध करते हैं सामंत। इन सब विरोधों को सह और शक्ति देते है ब्राहमण और उसका खूनी ब्राहमणवाद। हिन्दू आतंक के द्वारा किये जा रहे दमन को दूर करने के क्या उपाय हो सकते हैं?

हिन्दू आतंक के द्वारा दलितों के हो रहे दमन को रोकने के लिए तीन उपाय कारगर हो सकते हैं।

1-हिन्दू जमात को गौतम बुद्ध की सदाचार की शिक्षा से बौद्ध भिक्षु-भिक्षुणी, उपासक, उपासिका कार्यक्रम चलाकर अवगत करायें। शील की शिक्षा उग्रवाद को शान्त और समाप्त करने का सबसे कारगर उपाय है।

2-संविधान के प्रावधानों के तहत सरकार इमानदार होकर सख्त होकर दमनकारी को दण्डित करे और निदोष को बचाने का सतत प्रयास करे।

3-दमन से पीड़ित परिवार को बचाने और दमनकारी को उसके किये का जवाब देने के लिए पीड़ित परिवार और उसके हितकारी संस्था, संगठन जैसे को तैसा जवाब देने की आवाज के साथ मार्च करें।

शील की शिक्षा देने के क्रम में गौतम बुद्ध ने एक नहीं अनेक जगहों पर लोगों को समझाया और आगाह किया कि यह संसार नाशवान है। यहां अमर होकर कोई नहीं आया है-न सामंत न असहाय गरीब। यह प्रकृति का नियम है कि

जो कोई अपने बल और विवेक का दुरूपयोग कर दूसरों को मारता है, उसे मारनेवाला दूसरा कोई अना याश पैदा हो ही जाता है। अन्तर सिर्फ समय का रहता है। तुमने किसी को आज मार दिया, तुम्हें कोई कल मार देगा। फिर इस मारा-मारी से फायदा? बुद्ध की शील की शिक्षा से गांववासियों को समझाने का दायित्व बौद्ध भिक्षुओं का है। बेशील लोग ही किसी इनसान को पीड़ित करते हैं। शीलवान इनसान की रक्षा करते हैं। हिन्दू शास्त्रों ने हिन्दुओं को गरीबों के प्रति असहिश्णु बनाया है। तभी बाबा साहब अम्बेडकर ने हिन्दू शास्त्रों को डायनामाइट से उड़ा देने की बात कह डाली। मगर इन जहरीले और खूनी शास्त्रों को डायनामाइट से उड़ायेगा कौन? निश्चय ही यह कठिन प्रश्न है। इस कठिन प्रश्न के समाधान पर न विवेकशील चिंतन हुआ, न विवेकशील प्रयाश। यही कारण है कि भारत के संविधान की भावनाओं के विरूद्ध खूनी और जहरीले हिन्दू शास्त्र न सिर्फ पूर्ववत कायम हैं, बल्कि वे पूर्ववत पूजित और प्रतिष्ठित भी हैं। किसी लकड़ी को जलाना हो तब उसपर पानी नहीं डाला जा सकता। किसी लकड़ी को जलाने के साथ-साथ उसपर पानी डालने से वह लकड़ी कभी जल ही नहीं सकती। हिन्दू धर्म के खूनी और जहरीले शास्त्रों के साथ ऐसा ही हो रहा है।

एक तरफ हिन्दू शास्त्रों के खूनी और जहरीले आदेश से बर्बर हिन्दुओं द्वारा गांव के दलितों की निर्मम हत्याएं हो रही है और दूसरी ओर वे सारे के सारे खूनी और जहरीले शास्त्र पूर्ववत पूजे जा रहे हैं, पढ़े जा रहे हैं। इन खूनी और जहरीले शास्त्रों को डायनामाइट से उड़ाना मानवीय दायित्व तो है ही साथ-साथ संवैधानिक दायित्व भी है। जबतक इन जहरीले और खूनी शास्त्रों को नेस्तनाबूद नहीं किया जायगा, जाति हीनता के आधार पर असहाय इनसान का कत्लेआम होता ही रहेगा। इस देश में भारतीयों का वैचारिक शोषक ब्राहमण हैं, शारीरिक शोषक सामंत और आर्थिक शोषक पूंजीपति उदयोगपति हैं। ये तीनों शोशक अपने स्वार्थ में खूनी और जहरीले हिन्दू शास्त्रों की रक्षा करने में लगे हुए हैं। अफसोस इस बात का है कि भारत का संविधान भले उदारवादी और हितकारी है, मगर भारत देश पर सत्ता की पकड़ इन्हीं तीन शोषकों-ब्राहमण, सामंत और पूंजीपति उदयोगपतियों की सांठगांठ की है। दलितों के दमन पर उनकी रक्षा के लिए कौन आगे आता है?

दलितों पर जब भी और जितने भी दमन हुए, उनमें किसी भी हिन्दू मठ या मन्दिर के पुरोहित या प्रबन्धक ने पास आकर कुछ भी राहत देने का प्रयास नहीं किया। देशभर के तमाम छोटे-बडे मन्दिरों के पुरोहितों की यह हृदय हीनता ही

नहीं यह दलितों के विरूद्ध उनकी निरंकुशता है। बड़े ही गर्व से मन्दिर के महन्त, पुरोहित दलितों को न सिर्फ हिन्दू कहते हैं, बल्कि स्वर्ग और मोक्ष जैसे बाहियात धन्धा के लिए दलितों को ये निरंकुश पुरोहित झांसा दिया करते हैं। करोड़ो, अरबो, खरबों की जायज, नाजायज सम्पत्ति पर कब्जा रखवाले ये पण्डे-पुरोहित दलितों के नम्बर वन दुश्मन हैं। दलितों के भौतिक कष्ट निवारण के लिए अपनी दुष्प्रवर्ती के कारण ये कभी आगे नहीं आये और न कभी आयेंगे ही। इनकी पुरोहितगिरी, पण्डागिरी पर लानत है।

दलितों पर किये जा रहे दमन के निवारण के लिए किसी सामंत को आगे आने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। सामंत की विचारधारा ही नाशकारक होती है, तब वे राहत किस मानसिकता से देंगे। दलित कभी उम्मीद भी नहीं करते कि कोई सामंत संकट की बेला में उनके दुख की घड़ी में किसी तरह का दुख निवारण कर सकें। कोई न कोई सामंत ही तो दलितों पर यहां वहां या कहीं भी दमन किया करते हैं। सामंत सामंत हैं, वे अगर उदार और सदविचार के हो जायें, तब फिर सामंती रह ही नहीं जायेगी।

दलितों पर जब भी जहां भी दमन हुआ, कोई पूंजीपति, उद्योगपति भी उनकी खैर-खबर लेने नहीं आया। पूंजीपतियों के पास जायज नाजायज अपार सम्पत्ति होती है। मगर दलितों के प्रति उदारता उनमें लेशमात्र भी नहीं होती है। जो उदार नहीं होगा, वह मौके बेमौके लूटेरा ही रहेगा, परोपकारी नहीं। भारत में उदयोगपति भी बढ़ रहे हैं और उदयोगपतियों की अकूत सम्पत्ति भी बढ़ रही है। मगर उद्‌योगपतियों में सिर्फ़ एक चीज़ नहीं बढ़ रही है और वह चीज़ है तमीज़। अगर उद्‌योगपतियों में तमीज होती, वे परोपकारी होते, कल्याणकारी होते, भरोसेमंद होते। मगर अफसोस है कि भारत के उदयोगपति न परोपकारी हैं, न कल्याणकारी हैं और न भरोसेमंद हैं। तभी तो किसी भी उदयोगपति की स्वाभाविक या अस्वाभाविक मौत पर देशवासियों को खुश होती है, गम नहीं होता। यह कडवी सच्चाई है। आधुनिक भारत में आज की तारीख तक सिर्फ एक परोपकारी, कल्याणकारी और भरोसेमंद उद्‌योगपति पैदा हुए। वे हैं-पैरियार रामासामी नायकर।

दलितों की रक्षा उनके सामाजिक संगठन बेहतर कर सकते हैं

वर्ष 1990-2000 के बीच बिहार में कोई ऐसा महीना नहीं होता था, जिसमें बिहार के किसी न किसी गांव में एकाकी या सामूहिक नरसंहार दलितों का न होता रहा। बिहार के हर गांव में दलितों की बस्ती में प्रत्येक रात भय और सिहरन की रात हुआ करती थी। आज अप्रैल 2014 में भगाणा और कनावनी गांव में दलितों के साथ जैसा दमन हुआ, वैसा दमन बिहार में कभी आम बात थी। हर दुर्घटना के बाद पीड़ित गांव में पुलिस फोर्स जाती थी राजनीतिज्ञों का काफिला जाता था और बाद में प्रशासन के बेशर्म कारिन्दों के हाथों हजार दस हजार रुपयों का राहत पैकेज जाता था। तंग और तबाह होकर पीडितजनों के हितैषियों ने अपने संगठन का रुतवा दिखलाया। मोर्चे बने और दो चार गांवों में दमनकारियों के हितैषियों पर दमन का पहाड़ गिरा दिया गया।

यह सत्य नहीं है कि दलितों के ऊपर दमन करने का शौक सभी सामंतों को होता है। मगर यह चौबीस कैरेट सत्य है कि मारे जाने का खौफ सभी सामंतों को होता है। क्योंकि सामंत एक नकारात्मक और निंदाजनक सोच और सच्चाई है। इस कारण जब सामंतों पर कहर बरप जायेगा, तब जौ के साथ घून का पिस जाना स्वाभाविक है। बिहार में यही हुआ। जैसे ही सामंतों पर जवाबी तौर पर हमला होने लगा, तब जौ से ज्यादा घून ही पीस गये। इसका परिणाम हुआ कि सामंत अब इस उद्देश्य से गोलबन्द होने लगे कि भूलकर भी किसी दलित बस्ती पर किसी तरह की वारदात नहीं किया जाय। जब बदले की भावना से दलितों के जुड़े हाथ बचाव की मुद्रा में आक्रामक हो गये तब हर सामंत की रात भय से बीतने लगी।

दलितों के जागरूक और दिलेर संगठनों से सरकार उनको बचाने और राहत देने के लिए हरकत में आयेगी। दलित संगठनों ने समय-समय पर अपनी ताकत दिखलाई है। महाराष्ट्र के दलित पैंथर की याद अभी भी ताजी है। दलित पैंथर के महानायक नामदेव ढसाल हमारे बीच नहीं रहे, मगर उनके द्वारा जलायी गयी दलित पैंथर की मशाल की रोशनी तो अभी भी हमारे पास है। महानायक रामासामी नायकर हमारे बीच नहीं हैं, मगर उनके द्वारा जलायी गयी 'ब्लैक शर्ट मूवमेन्ट' और 'सेल्फ रेस्पेक्ट मूवमेन्ट' की मशाल की रोशनी तो हमारे पास है।

बाबा साहब अम्बेडकर ने जिस सूझबूझ और दिलेरी से महाड के तालाब का पानी हजारों समर्थकों के साथ पीकर दलितों के अधिकारों की रथा की, वैसी ही सूझबूझ और दिलेरी से दलितों के हितैषी संगठन पीड़ित परिवार की रक्षा के लिए मोर्चाबन्द होकर सरकार को हरकत में लाने के लिए मार्च करें। दलितों के हजारों हितैषी संगठन हैं। ऐसे आपातकाल में अपनी ही जगह से संगठित होकर यदि आक्रामक आवाज भी बुलंद कर दें तो भी सरकार हरकत में आ जायगी। दलित समाज के बुद्धिजीवी अपना सामाजिक दायित्व निभाते नहीं, इस कारण दलितों के जान माल पर संकट आते रहता है।

अनुसूचित जाति/जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम के तहत मामला दायर हो। अनुसूचित जाति/जनजाति के लोगों पर जब भी गैर-अनुसूचित जाति/जनजाति के किसी लोग द्वारा जान माल प्रतिष्ठा की हानि पहुंचाने के लिए कोई गैर-कानूनी काम किया जाय, तत्क्षण उपरोक्त अधिनियम के प्रावधानों के तहत स्थानीय न्यायालय, हाई कोर्ट या सीधे सुप्रीम कोर्ट में पीड़ित जन को साथ। लेकर दलितों के हितैषी संगठन मामला दायर कर सकता है। किसी भी न्यायालय चाहे सिविल कोर्ट हो, हाई कोर्ट हो या सुप्रीम कोर्ट हो एक दो मिशनरी एडवोकेट हैं। जरूरत है मिशनरी संगठनों को ऐसे एडवोकेट से सम्पर्क करें और मामला दायर करने के लिए जिस तरह का ब्रीफ डाकुमेन्ट के साथ मांगें, उन्हें देकर दलितों पर हुए दमन के विरूद्ध मामला जरूर दायर करें।

देशभर के दलितों की सुरक्षा का सबसे बडा कवच यह हो कि देशभर के सामंतों को यह अहसास हो कि देश का कोई भी दलित अकेला और असुरक्षित नहीं है। हर दलित के पीछे दलितों के अनेकानेक कारगर और फौलादी संगठन हैं। इस तरह का एहसास देशभर के मुसलमानों के प्रति देशभर के हिन्दुओं के मन में है। इसी एहसास के कारण हिन्दू उग्रवादी मुसलमानों पर आक्रमण करने में भय खाते हैं। अपनी सुरक्षा के लिए मुसलमान जमात हिन्दुओं के लिए खौफनाक हैं। कहीं भी मुसलमानों पर हिन्दू उग्रवादी आक्रमण करने करते हैं, तब तत्क्षण एक दो हिन्दू मारे भी जाते हैं। दलितों के मारे जाते समय यदि तत्क्षण एक दो सामंत उग्रवादी हिन्दू मार गिराये जायें, तब दलितों को मारने में उग्रवादी वैसे ही दहशत में रहेंगे, जैसे मुसलमानों को मारने में। सर काटनेवालों को अपना भी सर काटे जाने का खौफ निश्चित रूप से होना चाहिए। यह स्वाभाविक नीति कर्म है।

अनुसूचित जाति/जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम के तहत मामला दायर करते समय एफआइआर को तैयार करते समय बहुत सावधानी की जरूरत है। भावना के आधार पर एफआइआर तैयार नहीं करना चाहिए। प्राथमिकी नामजद हो, उसमें अपराधी के पिता के नाम के साथ उनका पूरा पता हो। प्राथमिकी में घटना का दिन तारीख, समय सब सोच समझकर लिखा जाना चाहिए। घटना का चश्मदीद गवाह कम ही हो, मगर ठोस हो। गवाह को घटना के तथ्य, समय, तारीख अपराधियों के नाम ठीक से रटा दिया जाना चाहिए, ताकि जो बात फरियादी कहे। वही बात गवाह भी कहे किसी भी कीमत पर अत्याचार के बाबत दायर मामला में समझौता नहीं हो। अनुसूचित जाति/जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम के तहत जैसे ही मामला दायर होता है, आरक्षित वर्ग के

विधायक, सांसद, मुखिया, सरपंच को आगे कर पीड़ित परिवार को कुछ हरजाना देकर, माफी मांगकर मामला को रफा दफा करने का उपाय होने लगता है। यह सबसे दुष्परिणाम की स्थिति होती है। ऐसा होना अपमानजनक है। बलात्कार के मामले में अपराधी की मां बहन बेटी के साथ बलात्कार कराकर कोई समझौता आजतक नहीं हुआ। फिर कुछ मुआवजा लेकर दलित पीड़ा और अपमान का समझौता क्यों करे? सौ में नब्बे मामलों में अपराधी का परिवार पीड़ित व्यक्ति के दमदार लोगों को अपने विश्वास में लेकर मामले को रफा-दफा करा देता है। ऐसा हरगिज नहीं होना चाहिए। मानवाधिकार आयोग में भी उत्पीड़न का मामला दायर होना चाहिए दलितों पर दमन का मामला मानवाधिकार आयोग में तुरत दर्ज होना चाहिए। उत्पीडन का मामला थाना या कोर्ट में जाने के बाद भी मानवाधिकार आयोग में मामला दर्ज कराना चाहिए। मानवाधिकार के तहत पूरा प्रशासन, पुलीस प्रशासन होता है। केन्द्र सरकार, राज्य सरकार की बाध्यता होती है, मांगे गये प्रतिवेदन और दिये गये आदेश का पालन करना। मानवाधिकार आयोग सशक्त संस्था है। मानवाधिकार में दमन पीड़ा के विरुद्ध सख्त कार्रवाई होती है।

मानवाधिकार आयोग केन्द्र यानी दिल्ली में है और उसकी शाखा राज्य की हर राजधानी में है। दमन का मामला मानवाधिकार आयोग दिल्ली के साथ-साथ राज्य के मानवाधिकार आयोग कार्यालय में दायर किया जाना चाहिए। इस तरह कहीं न कहीं से दमनकारी को दण्डित करने की कार्रवाई निश्चित रूप से हो, ऐसा प्रयास हो मानवाधिकार आयोग में पीडित परिवार अपने स्तर से फरियाद लिखकर भेज देगा, तब भी मानवाधिकार आयोग द्वारा मामले का संज्ञान ले लिया जाता है। अगर वकील के द्वारा मामला आयोग में मूव किया जाता है, तब कार्रवाई तुरत होती है।

अनुसूचित जाति/जनजाति आयोग में भी मामला दायर किया जाना चाहिए

अगर पीड़ित परिवार अनुसूचित जाति/जनजाति का हो, तब उत्पीड़न के मामले की शिकायत पूरे विवरण के साथ अनुसूचित जाति/जनजाति आयोग में भी दर्ज किया जाना चाहिए। ऐसे मामलों में त्वरित संज्ञान लेने का अधिकार आयोग को है। पीड़ित परिवार के दो उद्देश्य होते हैं। पहला दमनकारी से पीड़ित परिवार की पूरी संरक्षा, दूसरा दमनकारी के विरुद्ध सख्त और तुरत कार्रवाई। इस कारण दमनकारी के विरुद्ध हर सम्भव कार्रवाई की जानी चाहिए। मामला अनुसूचित जाति थाना में निश्चित रूप से दर्ज हो अनुसूचित जाति/जनजाति के ऊपर जब भी

गैर अनुसूचित समाज के लोगों द्वारा दमन हो, सबसे पहले अनुसूचित जाति थाना में प्राथमिकी दर्ज हो। अनुसूचित जाति थाना को सामान्य थाना से ज्यादा पावर मिला हुआ है। जनरल थाना का दारोगा अपने एस. पी. के अधीन काम करता हे। मगर अनुसूचित जाति थाना का दारोगा के अधीन जिले का एस. पी रहता हैं। अनुसूचित जाति के थाने का दारोगा जिले के एस.पी. को दमनकारी को गिरफ्तार करने का आदेश देता है। ऐसा प्राविजन बनाया गया है। अनुसूचित जाति थाना सीधे राज्य के आइ.जी. के नियन्त्रण में काम करता है। अनुसूचित जाति थाना में दर्ज मामला बहुत गम्भीर माना जाता है। इस कारण देर हो या सवेर हर उत्पीडन के मामले की शिकायत अनुसूचित जाति थाना में जरूर दर्ज होना चाहिए। एक ही मामला को सामान्य थाना और अनुसूचित जाति थाना में प्राथमिकी दर्ज कराने में किसी तरह की आपत्ति या हर्ज नहीं है। अनुसूचित जाति थाना ज्यादा गम्भीर है वनिस्पत सामान्य थाना के। मगर सरकार ने अनुसूचित जाति थाना को हैन्डीकैप बनाकर रख दिया है।

(लेखक अम्बेडकर मिशन पत्रिका के सम्पादक व दलित चिंतक हैं। सम्पर्क : 09507826323)

एक ही रास्ता

–श्रवण कुमार

भारत मे दलित उत्पीड़न कोई नई बात नहीं है सदियों से चली या रही हिन्दू परम्परा की घिनौनी रूढ़िवादिता, सामंतशाही और सत्ता के केन्द्रों मे मुट्ठीभर लोगों का प्रभुत्व बना रहना एक महत्वपूर्ण कारण रहा हैं। दलित समाज के जो भी लीडर हुए वो दलित समाज के ऊपर हो रहे हमले, चाहे वो सामाजिक हों या आर्थिक गैर बराबरी, दैहिक शोषण हो या फिर सामूहिक हत्या, बलात्कार की घटना को गंभीरता से नहीं लिया ना उसपर स्पष्ट प्रतिक्रया ही व्यक्त किया जिसके कारण इनके मनोबल उत्तरोत्तर बढ़ते गये। वर्तमान समय में यह भयंकर रूप लेता जा रहा है जिसका खास कारण प्रशासनिक स्तर पर देश के मूलनिवासियों के प्रति इनका नाकारात्मक रवैया अपनाना और सवर्णो को फायदा पहुंचाना भी रहा है।

बिहार के सामूहिक नरसंहार हो चाहे देश के दूसरे जगहों के नरसंहार, दलितों का सामाजिक बहिष्कार, या हरियाणा की दिल दहला देनेवाला भगाणा सामूहिक बलात्कार की जघन्य, वीभत्स घटना, इन पर न्यायपालिका की दोरंगी दोगली दृष्टिकोण भी दलित उत्पीड़न बढ़ाने मे मददकार सिद्ध हुआ है। मैंने बार-बार कहा है कि न्यायपालिका, इलेक्ट्रॉनिक, प्रिंट मीडिया हमारे (दलितों) के खिलाफ भयानक साजिश मे लगा हुया है जिसका आभाष दलित बुद्धिजीवी, लेखकों सामाजिक कार्जकर्ता से लेकर नेताओं को महसूस ही नहीं पूरी तरह विश्वास हो गया है कि इनके गठजोड़ से मूलनिवासी पर लगातार हमले बढ़ते जा रहे हैं। निर्भया की छोटी सी घटना को सवर्ण मीडिया से लेकर न्यायपालिका पूरे देश मे कोहराम मचा दिया, लेकिन उससे कई गुना जघन्य हरियाणा की घटना पर इनका चुप रहना सिद्ध करता है कि मूलनिवासी को इनके नजरों मे कीड़े-मकोड़े से ज्यादा तरजीह नहीं दिया जा सकता है देश के दलित (मूलनिवासी) के लिए एक ही रास्ता बचा है वो है आर-पार कि लड़ाई लड़ने की चाहे सरकार के खिलाफ हो, न्यायपालिका के खिलाफ हो या दोगली मीडिया को सबक सिखाने की बात हो उसको उसी की भाषा मे जवाब देना होगा।

इंसाफ किससे मांगोगे बहुत इंसाफ मांग चुके उनको उसी की भाषा मे जवाब देना सीखो, बदला लेना सीखो, खौफ पैदा करो, डर पैदा करो तभी बात बन सकती है अन्यथा समय हाथ से निकलता चला जायेगा। खौफ पैदा करने के साथ-साथ हमें आर्थिक रूप से बहुत मजबूत बनना होगा। बाबा साहेब ने दलित अत्याचार का कारण बताते हुए कहा है दलितों के पास धन-बल न होना ही अत्याचार-जुल्म का मुख्य कारण है। दुख के साथ कहना पड़ता है कि दलितों का धनवान बनाने के लिए आजाद भारत में ठोस काम ही नहीं हुआ हिन्दुओं के जुल्मों-सितम से दलितों को बचाने के लिए अब दलितों के धन-बल से लैस करना हमारा मुख्य लक्ष्य होना चाहिए। इसके लिए उद्योग-व्यापार और समस्त आर्थिक गतिविधियों से संख्यानुपात में हिस्सेदारी के लिए कमर कसना होगा। जरूरत पड़े तो दलित युवा इसके लिए हथियार उठाने को तैयार रहें।

(संयोजक : भारतीय सामाजिक न्याय आंदोलन। संपर्क : 9934294283)

दलितों को शक्ति के स्रोतों में लेनी होगी हिस्सेदारी

–देश दीपक दुसाध

हरियाणा के भगाणा गाँव की चार बच्चियों के साथ दो दिनों तक वहां के जाट दबंगों द्वारा सामूहिक बलात्कार, बलात्कार की आम घटना नहीं है। इसके तह में जायें तो आप पायेंगे इसके पीछे सवर्णों की सामंती मानसिकता काम कर रही है। वे मूलनिवासी स्त्रियों का बलात्कार इसलिए नहीं करते कि वे यौन कुंठा से ग्रसित हैं, वे इसलिए करते हैं कि सदा से उनकी पैरों के नीचे रहने वाले मूलनिवासी, इन्सान न बन सकें, सम्मान से जीना न सीख सकें, गुलामी से मुक्त होने का ख्याल दिल में न ला सकें।

बलात्कार शोषण के कई तरीकों में एक तरीका है। यदि यह विशुद्ध रूप से बलात्कार की घटना होती तो उन्हें शिक्षा लेने से वंचित क्यों किया जाता? उन्हें भूमिहीन क्यों किया जाता? उन्हें नर-पशु की भाँति जीने को विवश क्यों किया जाता? उनसे गुलामों की तरह बेगारी क्यों कराया जाता? और यह सिर्फ हरियाणा नहीं, पूरे देश की सच्चाई है। दरअसल मनुस्मृति तो जल गई लेकिन असमानता का धर्म, बहुजनों से नफरत करने वाला धर्म, बहुजनों पर अत्याचार को प्रेरित करने वाला धर्म अर्थात हिन्दू धर्म आज भी जीवित है। सवर्ण के संतानें अपने धर्म से प्रेरित होकर ही यहाँ के मूलनिवासियों को कभी, अपना नहीं पाये। यहाँ के मूलनिवासियों को सम्मान और सुखी से जीते देखना नहीं चाहते। मूलनिवासियों के शोषण, अत्याचार की जड़ सवर्णों की तथाकथित हिन्दू धर्म है। काश! मनुस्मृति दहन के साथ ही हिन्दू धर्म का भी दहन हो गया होता तो आज 21वीं सदी में मूलनिवासी समुदाय मध्ययुग में वास नहीं करता।

दिल्ली का निर्भया कांड विशुद्ध रूप से बलात्कार की घटना थी। जिसमें पीड़िता सवर्ण समुदाय से थी। इस घटना ने कितना तूल पकड़ा आप सभी जानते हैं। मीडिया ने इसे अन्तर्राष्ट्रीय न्यूज बना दिया। नेता, अभिनेता, आम जनता सभी मर्माहत हुए। पूरे देश के कोने-कोने से कैंडिल मार्च निकला। सरकार पर दबाव बनाया गया। कानून पास हुआ। दोषियों को फाँसी की सजा मिल गई। हो गया इन्साफ। क्या भारत देश की बेटी के साथ यह पहला बलात्कार था? जैसा मीडिया ने बताया। नहीं, दरअसल

यह सवर्ण की बेटी के साथ पहला बलात्कार था जो देश की बेटी कहलायी।

अगर आप में थोड़ी भी तर्क करने की शक्ति हो तो आप पायेंगे कि देश की समस्याओं की लिस्ट में बहुजनों की समस्या ही गायब है। आप जिन-जिन समस्याओं को देश की प्रमुख समस्या मानते हैं, दरअसल वो सवर्णों की समस्यायें है। सवर्णों की समस्या के केंद्र में है, बहुजनों का बढ़ता मनोबल। सवर्णों का एजेंडा है बहुजन के बढ़ते कदम को रोकना। सवर्णों की क्रांति का लक्ष्य है फिर से मनुविधान को वापस लाना। बाबा साहेब भीम राव अम्बेडकर के बनाये संविधान को तहस-नहस करना। अब बहुत बड़ा प्रश्न उठता है कि देश के 85 प्रतिशत बहुजनों की समस्या देश की समस्याओं की लिस्ट से गायब क्यों है? इसका जवाब है - देश की समस्त शक्ति के स्रोतों से बहुजनों का प्रतिनिधित्व गायब है अर्थात देश का प्रतिनिधित्व 15 प्रतिशत सवर्ण कर रहे हैं। देश पर कब्जा 15 प्रतिशत सवर्णों का है।

सिर्फ बलात्कार की मुद्दा पर ऊर्जा खर्च करना बिल्कुल वैसा ही है जैसे किसी विशाल वृक्ष से एक पत्ते को तोड़कर अलग कर देना। इससे समस्या स्थायी रूप से बिलकुल नहीं जायेगी। हम एक पत्ता तोड़ेंगे कुछ समय बाद उसी जगह पर चार नये पत्ते निकल आयेंगे। सिर्फ बलात्कार नहीं, सारे शोषण-अत्याचार से बहुजनों को मुक्त होने के लिए देश के शक्ति के स्रोतों में अपनी संख्यानुपात में प्रतिनिधित्व हासिल करनी होगी तभी उनकी समस्या देश की समस्या बन पाएगी और उनके निवारण का उपाय किया जाएगा। क्या सवर्ण जो सदियों से शक्ति के स्रोतों पर कब्जा किये बैठे हैं, बहुजनों को आसानी से प्रतिनिधित्व देंगे, बहुजनों को उनका अधिकार देंगे। कभी नहीं देंगे। हमें अपना अधिकार छीनना होगा। शक्ति के स्रोतों में प्रतिनिधित्व की लड़ाई बुलन्द करनी होगी। डाईवर्सिटी की लड़ाई बुलन्द करनी होगी। अपने संविधान को जानना होगा। बहुजनों की शक्ति को संगठित करना होगा। उन्हें क्रांति के लिए ललकारना होगा।

जय भीम! जय भारत!

(लेखक छात्र नेता हैं। संपर्क : 8235280969

दलित अत्याचार का माकूल जबाब : आर्थिक सशिक्तकरण

–डॉ. विजय कुमार त्रिशरण

भारतीय समाज व्यवस्था की नींव चातुष्वर्ण विधान पर टीकी हुई है। इस समाज संरचना में ब्राह्मण सबसे श्रेष्ठ और शूद्र सबसे निकृष्ट माना जाता है। वर्णव्यवस्था के घेरे से बाहर अतिशूद्रों का स्थान है जिनसे अस्पृश्यता का व्यवहार किया जाता है। यह वर्ग अछूत कहलाता है। इनके साथ ऊपर के चारों वर्णों द्वारा ऊँच-नीच और छुआछूत का भेद भाव किया जाता है। इसी भेद-भाव के कारण सवर्णों और सामंतों द्वारा उन पर हजारों वर्षों से अन्याय और अत्याचार होता आ रहा है। यह कटु सत्य है कि ब्राह्मणों और सामंतों की भांति जाट, यादव और कुर्मी जैसे शूद्र वर्ण की वर्चस्वी जातियां भी अछूतों को अन्याय और दमन का शिकार बनाती हैं।

कुछ लोग यह मानने लगे हैं कि जातीय भेद-भाव अब गुजरे जमाने की बात हो चुकी है परन्तु सच्चाई यह है की आजादी के 67 साल पूरे हो जाने बावजुद अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजातियों पर पर निरंतर दमन जारी है। जातीय विद्वेष के कारण दलितों पर शासक वर्ग द्वारा घोर जोर-जुल्म ढ़ाया जाता है। उनकी अस्मत सरेआम लूट ली जाती है और समाज तथा शासन के लोग मूकदर्शक बने रहते हैं। ऑक्सफाम इंडिया के फरवरी 2000 के रिर्पोट के अनुसार ‘‘भारत में कहीं न कहीं प्रति घंटा दो दलितों को बेरहमी से पीटा जाता है, प्रति दिन दो दलितों की हत्या कर दी जाती है, तीन दलित महिलाओं का बलात्कार किया जाता है, दो दलित घरों को आग के हवाले कर दिया जाता है एवं उनके खेतों को तहस-नहस कर दिया जाता है तथा अनेक दलितों को पुलिस हिरासत में इतना सताया जाता है कि उनकी मृत्यु हो जाती है।” बिहार-झारखण्ड में तो एक के बाद एक लोमहर्षक नृशंश सामूहिक नरसंहार होते गए। बिहार के तिसखोरा (9 फरवरी 1991 को किसान संघ द्वारा 14 दलितों की हत्या), देव-सहियारा (23 जून 1991 की रात सामंती गुंडो द्वारा 14 दलितों की हत्या), मीन-बरसीमा (23 दिसम्बर 1991 की रात सवर्ण लिबरेशन फ्रंट द्वारा 9

दलितों की हत्या), बथानी टोला (11 जुलाई 1996 को रणवीर सेना द्वारा 21 दलितों की हत्या), हैवसपुर (26 मार्च 1997 को रणवीर सेना द्वारा 10 दलितों की हत्या), लक्ष्मणपुर बाथे (1997 को रणवीर सेना द्वारा 61 दलितों की हत्या), शंकरबिगहा (25 जनवरी 1998 को रणवीर सेना द्वारा 23 दलितों की हत्या), मियांपुर (16 जून 2000 को रणवीर सेना द्वारा 33 दलितों की हत्या), झारखण्ड के मलवरिया (4 जून 1991 को सनलाइट सेना द्वारा 11 दलितों की हत्या) और भागोडीह (सनलाइट सेना द्वारा 10 दलितों की हत्या) यह बताता है कि दलितों का महत्व और स्थान भारतीय समाज में कितना है तथा सवर्ण/सामंत लोग इन्हें कैसे पशुओं से भी हीन समझते हैं।

राष्ट्रीय अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति आयोग के रिर्पोट के अनुसार सन 2004 के अंत तक देश भर में 45000 दलित उत्पीड़न की शिकायतें दर्ज़ हो चुकि थीं अर्थात इस वर्ष प्रतिदिन 125 दलितों के साथ अत्याचार के अपराध किये गये। देश में प्रतिवर्ष औसतन 25, 000 जातिगत अत्याचार[1] अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के विरूद्ध होते हैं। 16.5 करोड़ आबादी वाले अनुसूचित जाति में चार करोड़ बंधुआ मजदूर[2] के रूप में कार्य करने के लिये मजबूर हैं। विश्व में सबसे अधिक असुरक्षित भारत की ही नारी है। राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो-2007[3] के अनुसार भारत में 20, 737 बलात्कार की घटनाएँ हुई थी जो विश्व के किसी भी देश की तुलना में सबसे अधिक था। बलात्कार की शिकार महिलाओं में दलित-पिछड़े वर्ग की 80 प्रतिशत महिलाएँ थी। इस रिर्पोट से अंदाज लगाया जा सकता है कि दलित अपने ही देश में गुलामों की भाँति जी रहे हैं। आज भी दरिंदगी के हद को पार करते हुये सामंतों द्वारा दलित महिलाएं नंगी घुमाई जाती हैं तथा दलित पुरूषों के साथ पशुवत व्यवहार किया जाता है। मार्च 2007 में गुजरात के सरोड़ा गाँव के दलित महिला के साथ सामूहिक बालात्कार के बाद उसे तेजाब से जिंदा जला देना और 17 जून 2006 को दलित सरपंच इंदिरा कुशवाहा[4] (मध्य प्रदेश के छतरपुर जिले में) के सरेआम पिटाई करने के बाद निर्वस्त्र करके घुमाने जैसी घटना इसका ज्वलंत उदाहरण है। ''प्रोटेक्शन ऑफ सिविल राइट्स एक्ट आफॅ अनटचेब्लिटी" के ऊपर नेशनल लॉ स्कूल बंगलोर ने पूरे भारत में सर्वेक्षण कराया था जिसके रिर्पोट का झलक 27 जुलाई 2007 को टाइम्स ऑफ इंडिया में प्रकाशित हुई थी। इस रिर्पोट में बताया गया है कि भारतवर्ष के अधिकांश गांव-देहातों में छुआछूत जारी है। कर्नाटक, तामिलनाडु, महाराष्ट्र, हरियाणा, मध्यप्रदेश, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश एवं गुजरात तथा देश के कई हिसों में दलितों को सार्वजनिक कुओं से आज भी पानी भरने नहीं दिया जाता है। इन्हें मंदिर में प्रवेश नहीं करने दिया जाता है, शादी-विवाह के समय घोड़ी पर चढ़ कर बारात नहीं लगाने दिया जाता है। यज्ञ में शामिल होने के लिये दलितों का पवित्र होना जरूरी है, इसके लिये उन्हें गाय का पेशाब पिलाया जाता है। छुआछूत का व्यवहार न केवल अनुसूचित जातियों के साथ होता है बल्कि

अतिपिछड़ा वर्ग के साथ भी होता है। छुआछूत और जातिगत भेद-विभेद के कारण अपमान और पक्षपात के डर से देश में 10 प्रतिशत अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अति पिछड़ा वर्ग का सदस्य अपनी जाति छिपा कर रहते हैं। नेशनल लॉ स्कूल बंगलोर ने रिर्पोट में कहा है कि ''समाज सुधारक राजा राम मोहनराय के जन्मस्थान जिला हुगली में राधानगर में भी ब्राह्मणों और गैर-ब्राह्मणों की मशान-भूमियाँ अलग-अलग हैं। कर्नाटक के बांग-नगर में एक कुएं में कुत्ता गिर कर मरने के बावजूद वहाँ के 120 अनुसूचित जाति के सदस्यों को जाति भेदभाव के कारण उसी कुएं से पानी निकाल कर पीने को मजबूर किया गया। दलितों के बच्चे को स्कूल में अलग बिठाया जाता है। कानपुर के भलसा गांव में ग्रामप्रधान का पद अनुसूचित जाति के लिये आरक्षित है लेकिन कोई भी इस वर्ग का सदस्य चुनाव लड़ने का साहस नहीं जुटा पाता है क्योंकि वहाँ ठाकुरों का शासन चलता है। राजस्थान में पाली के निकट ढ़ोलनी गांव में नये आगंतुकों से उसकी जाति पूछी जाती है, दलित होने पर उसे अपने पांव की जूती को सर पर रख कर ही गांव से गुजरना पड़ता है। वे सर पर पगड़ी भी नहीं बांध कर गांव से गुजर सकते। "[5] बुनियादी अधिकार आन्दोलन और सीआरवाई द्वारा कराये गये सर्वे के अनुसार गांधी जी की जन्मस्थली गुजरात[6] के ग्रामीण विद्यालयों में दलित छात्रें से सवर्ण छात्रों और शिक्षकों द्वारा घोर छुआछूत किया जाता है। दलित छात्रों को स्कूल में पीछे वैठाया जाता है तथा स्कूल की गतिविधियों में भाग नहीं लेने दिया जाता है। उन्हें मध्यान्ह भोजन सवर्ण रसोइया द्वारा नहीं परोसा जाता है। सवर्ण छात्र अलग बैठा कर खिलाये जाते हैं।

''छुआछूत के कारण 33 प्रतिशत गाँवों में पब्लिक हेल्थ वर्कर राष्ट्रीय अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के सदस्यों के घर सेवा नहीं देते। 27.6 प्रतिशत दलित थाना में प्रवेश नहीं पा सकते, 37.8 प्रतिशत सरकारी विद्यालयों में दलित बच्चे अलग बैठाये जाते हैं, 23.5 प्रतिशत देहातों में डाकिया दलितों के घर पत्र अथवा मनी आर्डर नहीं देने जाते, 48.4 प्रतिशत गाँवों में दलितों को सार्वजनिक नलों, कुओं आदि से पानी नहीं लेने दिया जाता है। "[7] विजयादशमी-2009 के मौके पर गुजरात[8] के 43 गाँवों में दलितों के लिये अलग गर्बा-नृत्य की व्यवस्था सरकार द्वारा की गई क्योंकि उन्हें सार्वजनिक गर्बा नृत्य में प्रवेश की अनुमति नहीं मिली। उड़ीसा[9] में अभी भी कुछ ऐसे गांव हैं जहाँ दलित समाज के सदस्य गांव के भीतर और परिधि में सायकल, मोटर-सायकल, बैलगाड़ी और घोड़ागाड़ी आदि में सवार होकर नहीं चल सकते। वे गांव की सीमा से बाहर निकल कर ही सवारी कर सकते हैं। भुनेश्वर से 10 कि. मी. दूर नरसिन्हपुर गांव इस तरह की असभ्य परम्परा का ज्वलंत उदाहरण है । गुजरात[10] में अनुसूचित जाति के सदस्यों को सवर्णों के गाँवों में प्रवेश करने से पहले सायकल से उतरना पड़ता है और जूते-चप्पल उतार कर चलना पड़ता है। इस प्रकार ये तथ्य यह प्रमाणित करते हैं कि भारतीय समाज में जातीय-भेद, अस्पृश्यता और जातिगत

अत्याचार का कितना घिनौना रूप विद्यमान है? फिर भी भारत के कुछ लोग बड़ी ही वेशर्म की तरह कहते हैं कि दुनियाँ को नीति-सिद्धांत की बात जिसके नियामक ब्राह्मण थे, हमने ही सिखाई है।

भगाणा कांड के मायने क्या

ब्राह्मणी शास्त्रों के अनुसार जाट शूद्र (ओबीसी) और धानुक अतिशूद्र (अछूत) वर्ण में आते है। दोनों हिन्दू हैं परन्तु दोनों जातियों को वे सारे अधिकार प्राप्त नही है जो हिन्दू धर्म का एक और घटक ब्राह्मण वर्ण को प्राप्त है। जाट और धानुक दोनों ही चतुर्वर्णीय व्यवस्था में ऊपर के तीनों वर्णों से नीचे हैं और निकृष्ट माने जाते हैं। दोनों मूलनिवासी हैं परन्तु जातिव्यवस्था में जाट धानुक जाति से अपने को दबंग और श्रेष्ट मानता है। यह ब्राह्मणों की बनाई श्रेणीबद्ध असमानता के कारण है। न जाने कितने बार जाटों ने जाटवों पर नृशंस अत्याचार किये हैं; परन्तु इस बार उन्होंने धानुकों को शिकार बनाया है। 23 मार्च 2014 को हरियाणा प्रदेश के हिसार के भगाणा नामक गांव के जाट दरिंदों ने चार धानुक युवतियों का अपहरण कर लगातार दो दिनों तक अपने हवस का शिकार बनाया है। पीड़ित परिवार प्रदेश में इंसाफ न मिलते देख 16 अप्रैल को दिल्ली आ गया ताकि निर्भया की तरह उन्हें भी पूरे देश की जनता उमड़ कर इंसाफ दिलायेगी। गौरतलब है कि दिलो-दिमाग को झंकृत कर देने वाली इतनी बड़ी शर्मनाक घटना पर 16 दिसम्बर की हुई बलात्कार काण्ड के बाद उमड़े विरोध वाले जन-सैलाब नहीं दिखाई पड़ रहे हैं। तथाकथित समाज सेवियों, महिला संगठनों और भ्रटाचार विरोधी ब्रिगेडों की तरफ से कोई आन्दोलन या कैंडल मार्च नहीं होते दिख रहा है। अन्ना, केजरी और किरण जैसे सर्टिफिकेटधारी सामाजिक आन्दोलनकारियों का जंतर-मंतर पर पीड़ितों के पक्ष में भारतमाता की कोई जयकारी नहीं सुनाई दे रही है। मीडिया कर्मियों का मैराथन न्यूज कवरेज दिखाई नही दे रहा है। यह सब सिद्ध करता है कि जाति-व्यवस्था ने जनचेतना को कितना कुचल डाला है। प्रेम, प्रीति, दया, सहानुभूति, भ्रातृत्व, मान-सम्मान, प्रशंसा इंसान में सब कुछ है, किंतु जाति तक ही सीमित हो गया है। दलित समाज विखरा समाज है। इसके पास न तो जनबल है, न धनबल और न ही मनबल। हमारे नेता मानसिक दासता से ग्रसित मन के मारे हैं, लाचार और स्वार्थी हैं। वे हमारे आंसू पोछने में अक्षम हैं। कानून पंगु बन गया है और उसका संचालक शासक वर्ग के ही हाथों में है। संगठनहीनता, हीनमानसिकता और निर्धनता तीनों ही के कारण दलित परिवार एक दूसरे से अपने को अकेला पाता है। ऐसे में दरिंदों और दबंगों का आसान शिकार दलित वर्ग के लिए न्याय कितना महंगा होगा?

क्या है अत्याचार

सामान्यतः अत्याचार का अर्थ होता है-घोर, जघन्य और क्रूरतापूर्ण कृत्य। भारत सरकार के गृह मंत्रलय द्वारा 'अत्याचार' (A trocity) शब्द के संबंध में स्पष्ट किया गया है कि ''अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के विरुद्ध किया गया कोई भी अपराध जो भारतीय दंड संहिता के अन्तर्गत आता हो, अत्याचार कहलाता है''।

अत्याचार की घटना के बाद अत्याचार का शिकार व्यक्ति न केवल शारीरिक और मानसिक पीड़ा के दौर से गुज़रता है बल्कि उसमें अत्यधिक असुरक्षा का भाव भी पैदा हो जाता है। यह असुरक्षा का भाव किसी दूसरे अत्याचार के शिकार व्यक्ति में नहीं पाया जाता है। पीड़ित व्यक्ति अपने को काफी दीन-हीन समझता है। यदि उसकी शारीरिक पीड़ा ख़त्म भी हो जाती है तो भी वह बाकि के शेष जीवन मानसिक पीड़ा के माहौल में जीता है। वह लज्जित और अपमानित महसूस करता है। पीड़ित व्यक्ति असुरक्षा के भावना के कारण अपना मकान और गाँव छोड़कर दूसरे जगह बसने को लिए मजबूर हो जाते हैं जहाँ वे मुश्किल से रहने का सुरक्षित और स्थायी ठिकाना ढूंढ पाते हैं। संक्षेप में यह कहा जा सकता हैं कि वह अत्याचार की पीड़ा को जीवन भर झेलने को मजबूर हो जाता है, परिणामतः पीड़ित व्यक्ति शारीरिक और मानसिक क्षति के साथ शैक्षणिक, सामाजिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक नुकसान के कारण बिल्कुल टूट सा जाता हैं। किसी दलित के विरूद्ध हुए अत्याचार न केवल पीड़ित को प्रत्येक प्रकार से प्रभावित करता है बल्कि यह उस सम्पूर्ण समाज के स्वाभिमान पर चोट करता करता है जिस समाज के सदस्य के साथ यह बारदात होती है। इसका मतलब है कि दलित अत्याचार एक सामाजिक मुद्दा है।

किसी-किसी अत्याचार के कारण पीड़ित व्यक्ति विकलांग और बेकार हो जाता है। काम में अयोग्य हो जाने के कारण परिवार का बोझ बन जाता है। कभी-कभी अत्याचार के अपराध में मकान नष्ट कर दिया जाता है तथा आय के स्रोत को तहस-नहस कर दिया जाता है। इससे परिवार में आर्थिक तंगी आ जाती है और बच्चों की पढ़ाई का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। अत्याचार के कारण पीड़ित व्यक्ति समाज में लज्ज़ित महसूस करता है तथा उसके मन में आक्रोश भी पैदा होता है; परिणामस्वरूप जातीय द्वेष के कारण व्यक्ति में भाईचारा का भाव समाप्त हो जाता है तथा समाज का विखण्डन शुरु हो जाता है। यही बाद में जातीय दंगा, नरसंहार और उग्रवाद का रुप धारण कर लेता है। समाज में अधिकतर आत्याचार जातीय द्वेष, भूमि विवाद, न्यूनतम मजदूरी और महिलाओं के साथ यौन-दुर्व्यवहार के कारण होता है। इलाके के दबंग और सामंती संस्कार वाले लोग चाहते हैं कि अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के सदस्य उनके सामने खड़े न हो, सिर उठा कर न चले तथा हमेशा दब कर रहें। वे दलितों की सम्पति हड़पना चाहते हैं तथा काम करा कर बहुत कम मजदूरी

देना चाहते हैं; अगर इसका विरोध होता है तो अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के सदस्यों की आवाज़ को कुचलने का प्रयास किया जाता है, परिणामतः अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के लोग कई प्रकार के आत्याचार के अपराध का.ाकिार हो जाते हैं।

अत्याचार के पीड़ित व्यक्ति पर पुलिस का असहयोग रवैया और अभियुक्त के प्रति पक्षपात पूर्ण भावना या इसके विपरीत पुलिसिया जुल्म अत्याचार की गंभीर पहलू है। पुलिस कानून का रखवाला होता है और उसका कर्त्तब्य होता है कि वह अत्याचार के शिकार व्यक्ति की दूसरों से रक्षा करे; परन्तु पुलिस जब रक्षक के बजाय भक्षक की भूमिका निभा कर मानवता और कानून की धज्जियाँ उड़ाता है तो स्थिति और भी गंभीर हो जाती है। इस प्रकार अत्याचार के शिकार व्यक्ति का जीवनधारा ही बदल जाता है जिसमें सकारात्मकता बहुत कम ही देखने को मिलता है।

हिन्दू कानून और अत्याचार

हिन्दू धर्म असमानता पर आधारित धर्म है। चातुष्वर्ण विधान इस धर्म की आधारशीला है। इस विधान के अन्तर्गत हिन्दू समाज को श्रेणीबद्ध असमानता के आधार पर बांटा गया है, अर्थात एक दूसरे से श्रेष्ठता-निकृष्टता के आधार पर समाज को विभाजित किया गया है। चतुर्वर्णीय हिन्दू समाज के श्रेणीबद्ध असमान विभाजन को कानूनी और दंड-विषयक मान्यता प्रदान की गई है ताकि उस व्यक्ति को दंडित किया जा सके जो अपने वर्ण के विहित कर्म से विलग आचरण एवं व्यवहार करता है। चारों वर्णो (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र) को उर्ध्व स्थिति (ऊपर से नीचे) में रखा गया है जिसमें सबसे ऊपर ब्राह्मण, उसके नीचे क्षत्रिय, क्षत्रिय के नीचे वैश्य और सबसे नीचे शूद्र का स्थान रखा गया है। अतिशूद्रों को न केवल समाज-विभाजन के सबसे नीचले स्तर पर रखा गया है बल्कि उन पर अनगिनत कलंक और निर्योग्यताएँ लाद दी गई है ताकि उन्हें नियमों द्वारा बांध कर उनकी तरक्की को रोका जाय। एक दूसरे के ऊपर या नीचे होने से चारों वर्णों में ईर्ष्या और द्वेष था। इससे आपसी शत्रुता पैदा हुई। हिन्दू-कानून के अनुसार कोई भी वर्ण एक दूसरे का कार्य नहीं कर सकता था। इस कानून का उल्लंघन करने वाला विधर्मी कहा जाता था तथा कठोर दंड का अधि ाकारी होता था। एक ही प्रकार के अपराध के लिये सभी वर्णों के लिये अलग-अलग दंड का विधाान था। शूद्र को सबसे कठोर दंड तथा ब्राह्मण को नाममात्र के लिये सजा का प्रावधान था। सजा में असमानता हिन्दू-कानून की प्रमुख विशेषता थी जिसका सबसे ज्यादा लाभ ब्राह्मणों को मिलता था। जिस प्रकार आज भारतीय दंड संहिता में वर्णित विभिन्न धाराओं के आधार पर अपराधी को उसके अपराध के अनुसार दंड का प्रावधान है उसी प्रकार स्मृतिकाल में विभिन्न स्मृतियों में विहित नियमों, जिसमें

मनुस्मृति प्रमुख है, के अनुसार सजा दी जाती थी। परंतु स्मृतिकाल में दंडविधान वर्णाधारित था। मनु हिन्दू-कानून का प्रमुख नियामक था। भारत में अपराधिक कृत्यों का नियमन सर्वप्रथम मनु के ही काल में हुआ था। यह सर्वविदित है कि उस समय विभिन्न प्रकार के अत्याचारों से शूद्र वर्ण ही सबसे ज्यादा पीड़ित था, जो पीड़ा की टीस भी झेलता था और असहाय अवस्था में छोड़ भी दिया जाता था।

मनु तथा कौटिल्य के हिन्दू-विधानों से स्पष्ट है कि उसने एक ही अपराध के लिये वर्णानुसार अलग-अलग दंड निर्धारित किये थे। सबसे कठोर विधान शूद्रों के लिये था, यही कारण है कि अपराध करने वाले दासों, कर्मकारों, और अन्य श्रमिक वर्गों को उनके मालिक कठोर शारीरिक दंड देते थे। “छोटे से छोटे अपराध के लिये भी उन्हें अत्यंत कठोर और क्रूर दंड दिये जाते थे। नियम था कि मालिक उसके बाल नाचेगा, उसे पीटेगा या लोहे के शिकंजों और बेड़ियों में जकड़ देगा, काठ में उसके पाँव ठोक देगा, उसे जेल में बंद कर देगा, उसके हाथ और पाँव को कड़ी में जड़ देगा और उन्हें तोड़ देगा, उसके हाथ या पाँव या कान या नाक या ओंठ या सिर अथवा चेहरे को काट देगा। उसकी टाँगे चीर देगा, आँखे और दाँत निकाल लेगा, जीभ काट लेगा, उसे रस्सी से लटका देगा उसके ऊपर घोड़े दौड़ा देगा, चाक पर चढ़ा देगा, सूली पर चढ़ा देगा, उसके घावों पर तेजाब डाल देगा, गँड़ासे काट देगा, उसे सिंह के दुम से या साँड़ के दुम से बाँध देगा, किसी जंगल में जला डालेगा, कौवों और गिद्धों से उसकी बोटियाँ नोचवाएगा, उसका खाना-पीना बंद कर देगा, आजीवन कारावास में रख देगा तथा उसे ऊपर बताई गई किसी भी प्रकार की भीषण मृत्यु का शिकार बना देगा।” इस प्रकार का क्रूरतम दंड शायद ही दुनियाँ के किसी देश में नौकारों को उसके मालिकों द्वारा दिया जाता होगा, परंतु भारत ही ऐसा देश है जहाँ यह सब ज़ायज माना जाता था और आज भी इस प्रकार का अत्याचार किसी न किसी रूप में भारत के विभिन्न भागों में देखा जा सकता है।

आर्थिक सशक्तिकरण अत्याचार का माकूल जबाब

उपरवर्णित अत्याचारों की कई वजहे हो सकती है; परन्तु एक सर्वस्वीकृत तथ्य यह है कि प्रत्येक परिस्थितियों में भुक्तभोगियों की “आर्थिक विपन्नता” का शिकार होना। दलित समाज के पास न तो रोजी-रोजगार है, न खेत-बारी और न ही उद्योग-धंधा। नौकरी कुछ ही लोगों को नसीब हो पाती है। अधिकांश दलित नौजवान बेरोजगार हैं। जाति-भेद के कारण कोई अछूत छोटे स्तर पर चाट-पकौड़ी की दुकान तो चला नहीं सकता। अतः जीविका निर्वाह के लिये मजदूरी ही उसका मात्र आधार होता है। जब पेट ही मुश्किल से भरता है तो शिक्षा और स्वाभिमान की बात कैसे सोचा जा सकता है। फिर भी जब समय के बदलते अन्तराल में दलित जवानों में

आत्मस्वाभिमान जगी तो सामंत अपनी वर्चस्व कायम करने के लिए एकल हत्या से सामूहिक नरसंहार पर उतर आये। दलितों में दशहत फैलाने का यह बर्बर सामंती तरीका है। अतः यह स्पष्ट है कि आर्थिक गैरबराबरी दलितों को जालिमों द्वारा होने वाले जुल्म सहन करने को विवश करती है। आज जहाँ दलित आर्थिक रूप से मजबूत है वहाँ किसी भी सामंत की हिम्मत नही होती उसके आगे सर उठाने की। यह बात राजनीति तथा उच्च पदों पर आसीन नौकरशाहों पर भी लागू होती है। जगजीवन राम चमार जाति के थे, परन्तु ब्राह्मणों के लिये बाबू जी थे, जिनके चरण छूने के लिए ब्राह्मण पंक्ति में खड़ा हो कर अपनी बारी का इंतजार करते थे। वर्तमान संदर्भ में बहन मायावती पूर्व मुख्यमंत्री उ. प्र. के साथ भी यही हाल है। ब्राह्मण और सामंत तो उन्हें देवी के रूप में दर्शन करते हैं। मा. राम विलास पासवान और छेदी पासवान को भला कौन झुका सकता है? कहने का तात्पर्य है कि यदि आर्थिक रूप से सक्षम दलित से अगर कोई सामंत अथवा दबंग टकराता भी है तो उसे करारा जबाव मिलता है। भारत के भुतपूर्व राष्ट्रपति एवं मिशाइल मैन एपीजे अब्दुल कलाम के अनुसार शक्ति से सम्मान मिलता है। शक्ति ज्ञान, धन और सत्ता से आती है। और ये तीनों डाइवर्सिटी से ही प्राप्त हो सकती है।

इस प्रकार यह यह प्रमाणित हो जाता है कि अगर देश का 25 प्रतिशत दलित समाज, जो सदियों से देश की सत्ता, सम्पति और सम्मान से वंचित है, अगर उसे आर्थिक रूप से सशक्त बना दिया जाय तो सामंती संस्कार वाले लोग उन्हें आँखें नहीं दिखा सकेंगे। इससे छुआ-छूत का भेद भी समाप्त हो जायेगा। आर्थिक सशक्तिकरण के लिए डाइवर्सिटी के सिद्धांत से बेहतर और कोई नहीं हो सकता है। सरकारी, गैरसरकारी नौकरियों के अलावें देश के सभी विकास के क्षेत्रों जैसे उद्योग-व्यापार, ठेका, आपूर्ति, पार्किंग, मिडिया, फिल्म-कला, सेना, न्यायपालिका तथा देश के तमाम धन-धरती में सभी सामाजिक समूहों के जनसंख्यानुपात के अनुसार भागीदारी सुनिश्चित कराना डाइवर्सिटी है। इस प्रकार डाइवर्सिटी दलितों की उन्नति और मुक्ति का द्वार है। इससे सभी वर्गो में धन और अवसर का एक समान वितरण होगा। भारत विकसित देशों की पंक्ति में खड़ा हो जायगा। आर्थिक संपन्नता व्यक्ति के मनोबल को उँच्च बनाये रखती है तथा भीतरी ताकत की क्षमता में वृद्धि करती है। कहावत भी है ''कोठे धान तो ओठे ज्ञान'' यह सिर्फ और सिर्फ डाइवर्सिटी से संभव है। अतः प्रत्येक दलित-बहुजन समाज के सदस्यों को डाइवर्सिटी आन्दोलन में भाग लेना चाहिए, इसे तीव्रतर करना चाहिए तथा अपनी उन्नति और समृद्धि के मार्ग को प्रशस्त करना चाहिए। परिस्थितियां चाहे जो भी हो, जो पीड़ित वर्ग है उसी को न्याय के लिए आगे कदम बढ़ाना पड़ेगा, डाइवर्सिटी के लिए संघर्ष करना पड़ेगा।

जिसका पूंजी पर नहीं अधिकार। वह नित सहता अत्याचार। ।
संघर्ष हमारी मजबूरी है। डाइवर्सिटी जरूरी हैं। ।

सन्दर्भ

1. www.ambedkar.org (ह्युमन राइट वाच के अनुसार)
2. वही..
3 इंडिया टूडे, 8 जूलाई 2009
4 आउट लूक, मासिक पत्रिका- 01 अक्टूबर
5 वॉयस ऑफ दी वीक, अगस्त 2009, नई दिल्ली
6. www.ambedkar.org
7. www.stopatrocity.com
8. w.stopatrocity.com
9. वॉयस ऑफ द वीक, नई दिल्ली अक्टूबर 2005
10. हिन्दुस्तान, राँची, , 12 अप्रैल 2007

(लेखक अम्बेडकर चेतना परिषद्, गढ़वा के अध्यक्ष वह दर्जन भर किताबों के रचनाकार हैं। संपर्क : 9431785496)

आखिर क्यों चुप हो, भगाणा की लड़कियां भी इसी देश की बेटियां हैं, ना।

–हरिशंकर शाही

हरियाणा के हिसार जिले के भगाणा गांव में 13-18 साल की चार लड़कियों के साथ सामूहिक बलात्कार का वीभत्स अपराध हुआ। और इस घटना को बीते करीब एक माह से भी अधिक का समय हो चुका है। अपने साथ हुए इस अपराध के लिए इंसाफ मांगने के खातिर दिल्ली के जंतर-मंतर पर ये लड़कियां गुहार लगाते हुए धरना भी दे रही हैं। लेकिन इस पर हर तरफ एक खामोशी सी है, चैनलों पर चुनावी चर्चाएं हो रही हैं, तो कहीं फैशन शो के मॉडलों और फिल्म अदाकारों से वोटिंग के पक्ष में अपील करवाई जा रही है। साथ ही दिल्ली में भी एक खामोशी फैली हुई है। इस पूरे घटनाक्रम को कहीं न कहीं दृश्यपटल से ओझल किया जा रहा है। घटना के आरोपियों की गिरफ्तारी और वहां इस तरह की घटनाओं पुनरावृत्ति व सामूहिक बलात्कार को सामाजिक रुप से एक समुदाय के मौन समर्थन पर कहीं कोई सवाल नहीं उठ रहे हैं।

आखिर क्या कारण हैं कि दिल्ली से लेकर पूरे देश का बौद्धिक जगत और ''जागरूक जनता'' व ''जाग चुकी जनता'' कहीं सोई हुई सी महसूस हो रही है। इस बात को पूछने का मतलब ये है कि यही वो देश व समाज था, जिसने दिल्ली में पिछले साल 16 दिसबंर में हुई बलात्कार की ही एक घटना को लेकर मोमबत्तियों की लड़ियों से पूरे देश को भर दिया था। वो चैनल कहां गए और कहां गए उनके वो एंकर जो गला फाड़-फाड़कर निर्भया या दामिनी के लिए इंसाफ की अलख जगा रहे थे।

इन लड़कियों के प्रति इस अनदेखे रवैए के पीछ अगर कारणों की पड़ताल करें तो सबसे पहले जो बात पता चलती है कि वो दलित बिरादरी से आती हैं, और उनके अपराधी दिल्ली व आस-पास के इलाकों में ताकतवर जाट समुदाय से आते हैं। दलित बिरादरी की इन लड़कियों के साथ हुए अपराध को लेकर समाज का राजनैतिक तबका भी कहीं दूर खड़ा है। यहां तक कि सत्ताधारी कांग्रेस की ओर से दलित समुदाय के प्रतिनिधि बनकर दिखने वाले केंद्रीय गृहमंत्री सुशील कुमार शिंदे से भी इन लड़कियों और इनके परिवारों ने मिलने की कोशिश की, लेकिन वहां भी कोरे आश्वासन ही मिले। और जब 4 मई को संसद घेरने का आह्वान किया गया तब तक भी पुलिस और सुरक्षा के नाम पर लाठी जरुर मिली लेकिन राजनैतिक सहायता नहीं दी गई।

दलित चिंतकों और सामाजिक सक्रिय कार्यकर्ताओं की पहल के बाद इस मुद्दे ने जंतर-मंतर के धरने को एक बड़े आंदोलन में परिवर्तित करने में सफलता पाई है। इस पहल के बाद एक बात और उजागर हुई कि हरियाणा के दलित समुदायों पर ऐसा अत्याचार पीढ़ियों से चलता रहा है। मतलब की दलित समुदाय की महिलाओं की अस्मत को तार-तार करना वहां का एक शगल भर है।

शायद ये पीढ़ियों से सह रहे अत्याचार के बांध के टूट पड़ने का शोर है कि भगाणा के करीब 100 दलित परिवारों ने इस पूरे मामले को अपने अस्तित्व का ही प्रश्न बना लिया है। उनके ही शब्दों में इस अत्याचार के पेवस्त घावों को समझा जा सकता है, इस आंदोलन में शामिल एक महिला ने लोगों से अपनी बातों में कहा, ''पहले मेरी सास के साथ होया, फिर मेरे साथ होने लग्या, अब बेटियन के करां लगा हैं...की करां जी, कहां जावां...ऐसी जिंदगी से अच्छा तो मर जानां है...''

यानि अब सवाल केवल एक घटना भर का ही नहीं है, बल्कि एक पूरे समुदाय एक पूरे समाज का है। और इस मामले में पूरे समाज की वो हिंसक हकीकत भी दिख रही है, जहां हर चीज एक खास सामाजिक संदर्भ से तय होता है।

इस सबको देखते हुए ''अब देश में जाति कहां हैं'', ''कहां कोई जाति की बात करता है'', ''अब सब एक हैं'', ''ये राजनीति सबमें अंतर पैदा करती है'', जैसे तमाम सारे कथ्य या जुमले जो बड़े शहरों की युवा पीढ़ी हर सामाजिक बात-चीत में उछालती रहती है, झूठे लगते हैं। बड़े शहरों मॉलों और बहुराष्ट्रीय पूंजी के महाविस्फोट की चकाचौंध में डूबी उतराई ये पीढ़ी जाति के सामाजिक ताने-बाने को ऐसे देखती है कि गोया ये कहीं आसमान से उतरी व्यवस्था की बात हो रही है। लेकिन भगाणा जैसे कांड़ को देखने जानने और समझने के लिए इनके पास कोई मौका ही नहीं है। क्योंकि ये देश के परिदृश्य को मीडिया के आईने से देखते हैं। और अब जो नई परिपाटी चली है उसके अनुसार जब तक कोई एनजीओ मंच बनाकर आंदोलन को एक इवेंट के रुप में न प्रस्तुत करे तब तक सरोकार जगते ही नहीं है।

दिल्ली में ही कैंडिल मार्च को इवेंट बनाकर और मीडिया के जरिए जोश की पंपिंग करके देश भर में माहौल बना दिया जाता है। लेकिन भागाणा कांड पर किसी भी एनजीओ या संगठनों की नजर ही नहीं पड़ती है। आखिर ऐसा क्यों? क्या लड़की

की अस्मिता भी जाति या वर्ग भेद के आधार तय होती हैं? हमारा समाज आज भी दलितों को कहां रखता है?

इन लड़कियों के साथ बलात्कार और इसके बाद विपरीत परिस्थितियों में चल रहे इंसाफ के आंदोलन से किनारे बने हुए बुद्धिजीवी और अभी हाल ही में दिल्ली में बहुत राजनैतिक धमक के साथ कूदते एनजीओ और संगठन कहां गायब हैं। वहां चूल्हे पर खाना बनाते खाते परिवार और वहीं पास में खेलते उनके बच्चे, मतलब कुल मिलाकर ये इंसाफ की ऐसी जंग है, जहां उन्हें सामाजिक प्रताड़ना अधिक है, मदद के हाथ कम। लेकिन ऐसी परिस्थितियों में न्याय जंग जारी है, इसके लिए ये लड़कियां और उनके साथ देने वाले परिवार हमारे सलाम के हकदार हैं। और जो इस समय इनके न्याय के मुद्दे पर साथ नहीं दिख रहे हैं, उनकी सामाजिक हकीकत और जाति चश्में को आसानी के साथ पहचाना जा सकता है।

एक सवर्ण परिवार में जन्म लेने या सुविधा संपन्न होने में कोई दोष नहीं है, लेकिन केवल इसी बिना पर हम सामाजिक अपराधों, जिसमें मानव को कुल-जाति के आधार पर प्रताड़ित किया जाए, उस पर चुप रहें, तो यह हमारे मानव होने पर ही प्रश्नचिन्ह लगा देता है। भगाणा की बेटियों के इंसाफ की जंग मानवता और समाज की जंग है, वो लड़ने उतर चुके हैं। अब देश और समाज को तय करना है कि वो किस ओर हैं।

(लेखक पत्रकार व सामाजिक कार्यकर्ता हैं।)

जंतर-मंतर पर भगाणा की बलात्कार पीड़िताएं

–सरोज कुमार

पिछले 23 मार्च को भगाणा गांव की दो नाबालिग समेत चार दलित लड़कियों का अपहरण गांव के ही जाट युवकों ने कर लिया और बलात्कार किया था। इन पीड़िताओं में दो नाबालिगों की उम्र 15 वर्ष और 17 वर्ष है तो दोनों बालिगों की उम्र 18 वर्ष है। घटना के बाद इंसाफ और पुर्नवास की मांग को लेकर पीड़िताएं अपने परिजनों और गांव के करीब 90 दलित परिवारों के साथ दिल्ली के जंतर मंतर पर धरना दे रही हैं।

पीड़िताओं का आरोप है कि 23 मार्च की रात करीब 8 बजे जब वे शौच के लिए पास के खेतों में गई थीं तो पांच युवकों ने उन्हें जबरन चारपहिया गाड़ी में बिठा लिया और कुछ सूंघा कर बेहोश कर दिया। उन्हें होश आया तो उन्होंने खुद को अगले दिन पंजाब के भटिंडा रेलवे स्टेशन के किनारे पड़ा पाया। खुद की हालत से उन्हें पता चला कि उनके साथ रात में बलात्कार किया गया है।

लेकिन कहानी इतनी भर नहीं है। 17 वर्षीय बलात्कार की शिकार लड़की के पिता कहते हैं, ''इसी वर्ष जनवरी में गांव के सरपंच राकेश कुमार पंघाल ने उन्हें मारा-पीटा और बुरा अंजाम भुगतने की धमकी भी दी थी। वे राकेश के खेतों में ही काम करते थे। वे कहते हैं, मैं रात में खेतों में पानी देने के बाद थोड़ी देर के लिए सो गया था तो इससे नाराज होकर राकेश ने मारपीट की थी।'' उनका कहना है कि एसपी तक से गुहार लगाने के बाद भी कोई मामला दर्ज नहीं हुआ और ना ही कोई कार्रवाई की गई।

और इस तरह कहानी महज बलात्कार तक सीमित नहीं रहती। यह हरियाणा में दलितों के लगातार जारी उत्पीडन की कहानी बन जाती है।

हिसार मुख्यालय और बलात्कार पीड़ित प्रेतात्माएं

हरियाणा के हिसार के जिला मुख्यालय पहुंचते ही मुझे अहसास हुआ कि आप किसी भी शहर के कोर्ट, थाने या अन्य प्रशासनिक मुख्यालय चले जाइए आपको बलात्कार

पीड़िताएं प्रेतात्माओं की तरह मंडराती मिल जाएंगी। जी हां, प्रशासनिक उदासीनता और लापरवाही से तंग, न्याय की आस लिए चक्कर काटती असंतुष्ट प्रेतात्माओं की तरह ही। और शायद प्रशासनिक अधिकारी भी उन्हें प्रेतात्माओं या अन्य जगह की प्राणी टाइप ही देखते हैं, जिनके साए से वे दूर रहना चाहते हैं। हिसार जिला मुख्यालय जहां डिप्टी कमिनश्नर और एसपी ऑफिस से लेकर कोर्ट तक मौजूद हैं, वहां पहुंचते ही मेरी मुलाकात डाबड़ा गांव की उस 17 वर्षीय दलित लड़की से हुई जिसके साथ 2012 में जाट युवकों ने सामूहिक बलात्कार किया था। इस घटना के बाद उसके पिता ने आत्महत्या कर ली थी। वह लड़की उस कोर्ट में एक 10 वर्षीय बच्ची को लेकर आई थी, जिसके साथ किसी अधेड़ शख्स ने बलात्कार किया था। इसी तरह वह अपनी ही तरह दरिंदगी की शिकार लड़कियों के लिए आवाज उठाती है और भगाणा गांव में बलात्कार शिकार लड़कियों के आंदोलन में उतरी हुई है।

और वहीं थोड़ी देर में मुझे एक और बलात्कार शिकार युवती मिल जाती है जिसके साथ एक जाट युवक ने बलात्कार किया था लेकिन अब तक उसे सजा न मिल पाई है और इसकी वजह यह थी कि उस आरोपी युवक का मामा एक जज है। जाहिर है अपने रूतबे से उसने तमाम तिकड़मों से युवती को ही टॉर्चर कराया। यहां तक कि पुलिस ने इस युवती को गिरफ्तार कर बुरी तरह से टॉर्चर किया था जिसकी वजह से वह विक्षिप्त-सी हो गई थी। अब वह इंसाफ के लिए अब तक लड़ तो रही है लेकिन उसके चेहरे पर अदालतों-प्रशासनिक ढांचों के प्रति वितृष्णा साफ नजर आ रही थी। हां, यह ध्यान देने वाली बात जरूर थी कि इन दोनों लड़कियों ने हार नहीं मानी और न ही किसी तरह की झिझक के भाव के साथ दिखाई पड़ी, जैसा कि अमूमन पीड़िताओं को प्रदर्शित करने की कोशिश की जाती है। साफ कहूं तो बलात्कार पीड़ितों को लाचार या 'मुंह न दिखाने लायक' मानने वाले समाज के ठेकेदारों के मुंह पर वे कड़े तमाचे की तरह मुझे दिखाई पड़ीं।

भगाणा वाया हिसार

मुख्यालय की छत के नीचे ही भगाणा गांव के वे दलित भी मिल गए जो दो साल से वहां धरने पर बैठे हुए हैं। भगाणा गांव 2012 में सुर्खियों में आ गया था जब सामुदायिक जमीन को लेकर यहां विवाद हुआ था। दलितों का आरोप है कि उन्होंने ग्राम पंचायत की जमीन पर बाबा साहेब भीम राव अंबेडकर की मूर्ति लगाने और खेल के मैदान पर पट्टे देने की मांग के खिलाफ जाटों ने सामाजिक बहिष्कार कर दिया। उनकी धमकियों से तंग आकर 136 दलित परिवारों ने हिसार के मिनी सचिवालय में धरने पर बैठ गए और दिल्ली तक पैदल मार्च किया था। लेकिन उन्हें मिला कुछ नहीं।

हिसार के मिनी सचिवालय पर ये दलित परिवार आज भी अपने दिनचर्या की चीजों के साथ धरने पर बैठे हुए हैं। वहां धरने पर बैठे भगाणा के 32 वर्षीय सतीश

काजल बताते हैं, ''यहां अब भी हमें धरना देना पड़ रहा है। न तो प्रशासन और ना ही सरकार ने हमारी बात सुनी है।'' उनके अनुसार करीब 80 परिवार अब भी वहां डेरा जमाए हुए हैं। मैंने वहां करीब दर्जन भर लोगों को धरने पर बैठा पाया। सतीश बताते हैं कि अधिकतर लोग काम-काज (मुख्य रूप से मजदूरी या छोटी-मोटा काम) करने निकल जाते हैं और देर शाम लौटते हैं। इन परिवारों की महिलाओं और बच्चों ने आसपास के गांवों में अपने रिश्तेदारों के यहां शरण ले रखी है। कुछ परिवार गांव लौटे भी हैं तो लाचार होकर।

और प्रशासन यहां भला अलग कैसे हो सकता है

और प्रशासन और पुलिस का नजरिया भला यहां अलग कैसे होता। हिसार के पुलिस अधीक्षक शिवास कविराज से इस संबंध में मुलाकात के लिए उनके पीए से मिलना पड़ा। उनके पीए ने पहले ही अनऑफिसिअली जो बात बताई वह बिल्कुल महिला विरोधी पुरूष मानसिकता का बयान था। उन्होंने यह कहते हुए लड़कियों को कटघरे में खड़ा करने की कोशिश की कि दरअसल एक आरोपी जाट युवक से एक पीड़िता का प्रेम-प्रसंग था और वह अपनी मर्जी से गई थी। बाकी तीन लड़कियां भी उसके साथ हो ली थीं। जाहिर है एक चाहे तरूण तेजपाल प्रकरण हो या हिसार जैसे कस्बों का मामला स्त्री की मर्जी की बात कह कर उसे ही कटघरे में खड़ा करने का रिवाज हमेशा से रहा है। एसपी शिवास कविराज का भी ठीक यही रवैया था, उन्होंने बताया, ''चीजों को बढ़ा-चढ़ा कर पेश किया जा रहा है। वे बताते हैं कि गांव में लगातार पुलिस गश्त होती है।'' दो साल से जारी भगाणा के दलितों के धरने के बारे में पूछने पर भी वे यही कहते हैं, ''बैठे लोग गांव जाएं तो सही, हम उनके लिए पूरी सुरक्षा का बंदोबस्त कर देंगे।'' लेकिन जिस गश्त और सुरक्षा की बात वे कर रहे हैं वह तो प्रशासन ने दो साल पहले भी कहा था। फिर ऐसी घटनाएं कैसे जारी हैं। हालिया गैंगरेप की घटना के बारे में पूछने पर वे कहते हैं, ''मामले का बहुत ज्यादा राजनीतिकरण किया जा रहा है। हमने 24 घंटे के अंदर तीन आरोपियों और फिर दो दिन बाद ही बाकी दो आरोपियों को गिरफ्तार कर लिया।'' पुलिस ने एक नाबालिग और एक बालिग किशोरी के साथ रेप की पुष्टि की है। चार किशोरियों का अपहरण और बलात्कार और दो दिन बाद एफआइआर दर्ज होना पुलिसिया सुरक्षा की बात पर सवाल तो खड़ा करता ही है।

दरअसल एसपी जिस राजनीतिकरण की बात कर रहे हैं, उसे क्लीयर करते हुए वह अनऑफिशिएली बसपा की ओर इशारा करते हैं। जाहिर है प्रशासन-सरकार और जाटों को ये बात चुभ रही है कि आखिर दलितों राजनैतिक जमीन कैसे मुहैया हो रही हैं।

वही हिसार के डिप्टी कमिश्नर एम.एल. कौशिक भी इसी लकीर पर हैं। उन्होंने कहा ''बलात्कार को दलित-उत्पीड़न से जोड़ना ठीक नहीं है। हर समुदाय में अपराधी

तत्व के लोग होते हैं। पीड़ितों को मुआवजा दिया जा चुका है।'' भगाणा के सामाजिक बहिष्कार के मुद्दे पर उन्होंने कहा ''मैं गांव का दौरा कर चुका हूं। गांव में बहिष्कार जैसा कुछ नहीं है।''

उत्पीड़न की धर्मस्थली भगाणा में

प्रसाशन ने सब कुछ सामान्य बताया लेकिन हिसार के करीब 20 किमी दूर भगाणा गांव में माहौल की तल्खी साफ महसूस की जा सकती है। यहां पहुंचते ही महिलाओं को गले के नीच तक पूरा घूंघट किए देखा जा सकता है, जो यहां की सामाजिक रूप-रेखा की अनायास चुगली कर देते हैं। वहीं दलितों और जाटों के बीच यहां बोल-चाल भी दिखाई नहीं पड़ रहा था। उनके बीच बना फासला साफ महसूस हो रहा था। दलित परिवारों के धरने प्रदर्शन के खिलाफ जाट तल्ख हैं। यहां मामले का दूसरा पक्ष भी उभर कर सामने आता है। बलात्कार की शिकार किशोरियों के खिलाफ ये लोग उसी तरह के स्त्री-विरोधी आरोप लगा रहे हैं जैसा कि खाप पंचायतों का होता है। गांव के फूल सिंह हों या सूरजमल, दलवीर सिंह या नफे सिंह इंडिया टुडे ने दर्जन भर जाटों से बातचीत की और सभी पीड़िताओं को ही दोषी ठहराते नजर आए। वहां के जाट फूल सिंह पूछते ही फट पड़ते हैं, ''वे अपनी मर्जी से गईं थी कोई जबरदस्ती नहीं ले गया था।'' वहीं यह ध्यान दिलाने पर कि दो किशोरियां तो नाबालिग थीं। लेकिन इसपर भी जाट समुदाय के लोगों का जवाब होता है, ''इससे क्या जी, सब मर्जी थी उनकी।'' गांव के जाट सामाजिक बहिष्कार की बात से भी इंकार करते हैं।

वहीं अपने ऊपर लगे आरोपों से गांव के सरपंच राकेश बेफिक्र नजर आते हैं। वे पूरी धमक के साथ कहते हैं, ''लगाने दीजिए आरोप, आरोप से क्या होता है। पुलिस जांच कर रही है।'' वे दावा करते हैं ''हम भी तो मुख्यमंत्री तक जा सकते हैं।'' कृष्णा की बात पूछने पर वह कहते हैं, ''हां, मैंने उस समय दो-तीन थप्पड़ मार दिया था क्योंकि वे खेतों के काम में लापरवाही बरत रहा था। लेकिन फिर हमारा समझौता हो गया था।'' जाहिर है कि उन्हें या यों कहें उनके जाट समुदाय को किसी प्रकार का डर नहीं है और उन्हें अपनी ताकत पर पूरा भरोसा है।

सामाजिक बहिष्कार की बात पूछने पर वे स्वीकार करते हैं, ''हां, जाटों ने अपनी सेफ्टी के लिए ही उस समय सामूहिक रूप से अपने खेतों में दलितों को काम देने या घास वगैरह ले जाने से मना कर दिया था। ताकि वे हमारे खेतों में आकर हमारे ही खिलाफ कोई आरोप न लगा दें। लेकिन अब ऐसा नहीं है।'' जाटों में इस बात को लेकर भी नाराजगी है कि आखिरी दलित परिवार धरना देने चले क्यों जाते हैं। एक जाट धर्मवीर सिंह उलाहना देते हैं, ''सरकार उन्हें मुआवजा दे देती है इसी वजह से वे धरना करते हैं। सरकार ने उनका मन बढ़ाया है।'' जाहिर है यहां की फिजाओं में नफरत की बू बरकरार है।

गांव के दलितों का आरोप बरकरार है। वे थोड़े झिझके या हो सकता है जाटों की डर की वजह से उनमें झिझक मौजूद हो। पर जैसे-जैसे उन्हें लगा कि उनकी बात सुनने कोई आया है तो वे सब अपनी पीड़ा बयान करने लगते हैं। 22 वर्षीय दलित सुरेंद्र बताते हैं, ''जाटों ने हमसे बातचीत, खेतों में काम देना, मंदिरों में जाने देना सबकुछ बंद कर दिया था जो अब तक कायम है। जो जाट हमसे बता करेगा उस पर 1,100 रु. का जुर्माना लगाने की बात कही गई है।'' इनका घर विवादित सामुदायिक जमीन के सामने ही है। बगल में ही सुरेंद्र के चाचा का घर है जो 2012 के विवाद के बाद से ही घर छोड़ कर कहीं और रहने चले गए हैं। प्रशासनिक सुरक्षा की बात पर 21 वर्षीय सुखबीर उपेक्षा से कहते हैं, ''पुलिस मीडिया के आने की की भनक पर ही गांव आ जाती है वरना कोई सुरक्षा नहीं रहती।''

इस बार जिन दलित किशोरियों का बलात्कार हुआ है वे उन धानुक नामक दलित समुदाय से हैं जिन्होंने उस समय गांव नहीं छोड़ा था और वहीं रह रहे थे। जाहिर है गांव में रहने की कीमत उन्हें चुकानी पड़ी। मैं उनके घरों की ओर भी जाता हूं, जो जाटों के घरों से अलग बसे हुए दलितों के मोहल्ले में है। यहां पीड़ित लड़कियों के घर के बाहर ताला लटकता नजर आ रहा है।

आखिर में जाट महिलाओं से बात करने की कोशिश की तो उन्होंने कह दिया कि जाइए मर्दों से ही पूछिए। गांव से वापस लौटते हुए मैंने गांव की सीमा पर तैनात दो एएसआइ से बात की। पूछने पर उन्होंने बताया कि वहां सुरक्षा के लिए पुलिस 24 घंटे तैनात है। लेकिन जैसा कि पहले एसपी मुझे बता चुके थे कि वहां गश्त करवाई जाती है। जाहिर है गश्त करवाने का यह मतलब नहीं कि 24 घंटे पुलिस तैनात रहती है।

ताकतवर समुदायों के लिए हथियार है बलात्कार डाबड़ा की पीड़ित किशोरी कहती है, ''जाट दलितों के प्रतिरोध को कुचलने, उन्हें सबके सीखाने और अपमानित करने लिए बलात्कार को हथियार की तरह इस्तेमाल कर रहे हैं। वे चाहते हैं कि दलित चुपचाप उनकी बात मानते रहें।'' और इस तरह वह बलात्कार को जरूरी तरीके से समझने का नजरिया देती है। यह अनायास भी नहीं है कि एनसीआरबी के मुताबिक पिछले तीन वर्षों में हरियाणा में दलितों का बलात्कार बढ़ा है।

प्रतिरोध की प्रयोगशाला वाया दलित राजनीति

जाहिर है कि जैसे-जैसे दलितों के प्रतिरोध की प्रयोगशाला बनती जा रही है, जाटों में नफरत बढ़ रही है। दूसरी ओर प्रशासन भी इसे स्थानीय राजनीति के लिए अनावश्यक बढ़ा-चढ़ा कर पेश करने की कोशिश बता रही है।

दरअसल यही वह मुख्य मुद्दा है जिसे सबसे ज्यादा समझने की जरूरत है। हरियाणा की राजनीति में जाट ही केंद्रीय ताकत हैं। यहां के दोनों प्रमुख दलों का नेतृत्व जाटों के हाथ में है। हिसार में भी ठीक ऐसा ही है। जबकि अपने उत्पीड़न के खिलाफ दलितों

को गैर-जाट केंद्रीयता वाले दल की जरूरत है। इसी वजह से वे अपनी अलग राजनैतिक जमीन की कोशिश कर रहे हैं। सपाट तरीके से देखने पर तो बस हमें लगेगा कि यहां हो रहा उत्पीड़न या जाटों में दलितों के प्रति आक्रमकता बस सामाजिक मुद्दा है। लेकिन नहीं यह राजैनितक मुद्दा भी है। यहां दलितों की एकजुट राजनैतिक जमीन तैयार करने में बसपा जुटी हुई है। और इसका ही असर देखने को मिल रहा है। दलितों का इन जगहों पर आंदोलन इसी दृष्टि से ही हो रहा है, और जहां तक मैं समझ पा रहा हूं, यह सब बसपा की जमीन तैयार करने की कोशिश भी है। यह यों ही नहीं था कि एसपी भी इशारों में ही बसपा को जिम्मेदार ठहरा रहे थे और गांव का सरपंच भी बसपा पर ही आरोप लगा रहा था कि लड़कियां अपनी मर्जी से जाट युवकों के साथ गई थीं, लेकिन जिस दिन (25 मार्च) को बसपा की रैली हिसार में हुई, उसके बाद ही लड़कियों और उनके परिजनों को भड़का कर एफआइआर दर्ज कराई गई और उन्हें दिल्ली ले जाया गया। जाहिर है प्रशासन, सरकार और जाटों को यह कतई रास नहीं आ रहा है कि दलितों की अपनी कोई मजबूत जमीन तैयार हो।

मिर्चपुर आंदोलन समेत दलितों के उत्पीड़न के खिलाफ कई आंदोलनों के अगुआ और इस बार भी पीड़ितों के दिल्ली तक लाने वाले सर्व समाज संघर्ष समिति के अध्यक्ष वेदपाल सिंह तंवर कहते हैं, ''वे मनुष्य को मनुष्य नहीं मानते, अधिकार की बात तो दूर है। यह लड़ाई इसी अधिकार की है।'' 2010 में मिर्चपुर कांड के पीड़ित कई दलित परिवारों ने अब तक इन्हीं के फॉर्म हाउस पर शरण ले रखी है।

हरियाणा में आखिर क्या वजह है कि दलितों का उत्पीड़न बदस्तूर जारी है और वे उपेक्षा के शिकार है। तंवर इस ओर ध्यान दिलाते हुए कहते हैं, ''दरअसल हरियाणा की राजनीति में जाटों का ही वर्चस्व है। राजनैतिक नेतृत्व इन्हीं के हाथों में है। इतना ही नहीं बल्कि राजनैतिक पार्टियां जाटों को किसी भी तरह नाराज नहीं करना चाहतीं।'' यही वजह है कि उनके लिए दलित मायने नहीं रख रहे। पलायन के शिकार मिर्चपुर के दलित भी इसी ओर इशारा करते हैं, ''हमें तो चुनाव के समय भी कोई पूछने नहीं आता, इस बार भी कोई नहीं आया। गांव में भी हम डर के नहीं जाते जिसकी वजह से इस बार भी इक्का-दुक्का लोगों को छोड़ हम वोट देने नहीं गए।'' इसी 10 मई को हिसार में लोकसभा का चुनाव संपन्न हुआ है।

हिसार और भगाणा के आबादी भी कुछ ऐसा ही बयान करती है। हिसार में दलित आबादी करीब 22 फीसदी है। हालांकि हरियाणा में कुल मिलाकर करीब 19 फीसदी दलित हैं। जाहिर है दलितों की आबादी कम नहीं है। लेकिन उनके मुकाबले जाट कहीं अधिक हैं। भगाणा इसका उदाहरण है। यहां जाट आबादी करीब 60 फीसदी है तो दलितों की आबादी करीब 27 फीसदी। जाहिर है हरियाणा में जाट बहुसंख्यक हैं। इसलिए सरकार और पार्टियों के लिए वे ज्यादा जरूरी हैं। और राजनैतिक रसूख की वजह से प्रशासन भी उन्हीं के पक्ष में खड़ा रहता है।

यहां दलितों के प्रतिरोध में वेदपाल तंवर की बात भी जरूरी हो जाती है।

इनके आलीशान मकान जाने पर आपको अहसास हो जाता है किसी रईस के यहां पहुंच गए हैं। वे इन आंदोलनों में दलितों को न केवल अपने बूते शरण दे पा रहे हैं बल्कि एकजुट कर रहे हैं। उनका दूसरा पहलू यह भी है कि वे बीजेपी से होते हुए अब बीएसपी में हैं। और मुझे यहीं लगता है कि बीएसपी के लिए दलितों की जमीन तैयार करना भी की उनकी इस सक्रियता की एक वजह है। बाकी उनके बारे में और भी किस्से हैं कि जाटों ने उनके बेटे की हत्या कर दी थी। जाहिर है कोई भी वजह हो, उनकी अपनी राजनैतिक जमीन तैयार करने की कवायद हो, वे गैर-जाट राजनैतिक मोर्चा बनाने के लिए पूरा जोर लगा रहे हैं, और इसके लिए दलित उनके लिए काफी महत्व रखते हैं। लेकिन जो भी हो, इस शख्स ने मिर्चपुर से लेकर भगाणा जैसे तमाम दलित उत्पीड़न के खिलाफ के आंदोलन को सालों अगुआई कर रहा है, इस जरिए अगर हरियाणा में दलित भी अपनी राजनैतिक जमीन तैयार कर सकें या फिर राजनैतिक रूप से एकजुट हो सकें तो यह दलितों के अधिकारों की जीत होगी। और इसलिए हमें तमाम संदेहों के बावजूद उम्मीद करनी चाहिए कि यह दलित आंदोलन हरियाणा में बदलाव की एक बड़ी वजह बन सकता है।

दिल्ली के रंग-ढंग में खलल पड़ेगा?

कहते हैं इंसाफ पाने के लिए दिल्ली तक गुहार या चोट करना जरूरी होता है। स्थानीय प्रशासन और राज्य सरकार की ओर से लगातार हो रही उपेक्षा से भगाणा के बलात्कार पीड़ित परिवारों ने इस बार भी दिल्ली गुहार लगाई है। वे गांव में वापस नहीं जाना चाहते। किशोरियों का आरोप है कि जाट युवक अकसर उनके साथ छेड़खानी और परेशान किया करते थे। इसी वजह से उन्हें अपनी पढ़ाई भी बंद करनी पड़ी थी। नाबालिग पीड़िता की मां कहती हैं, ''हम तो बच्चों को बाहर भी पढ़ाने नहीं भेज सकते। वे आते-जाते भी उन्हें रोक कर परेशान किया करते हैं। आखिर हम गरीबों की कौन सुनता है।'' पीड़ित उचित मुआवजा, पुर्नवास, और किशोरियों की पूरी शिक्षा की गारंटी की मांग कर रहे हैं। 27 अप्रैल को जंतर-मंतर से जेएनयू के छात्रों समेत कई सामाजिक संस्थाओं ने गृहमंत्री सुशील कुमार शिंदे के घेराव के लिए बड़ा प्रदर्शन किया। पीड़ितों की ओर से हरियाणा के कांग्रेसी मुख्यमंत्री भूपेंद्र सिंह हुड्डा के खिलाफ नारेबाजी से जंतर-मंतर गूंज रहा था। पीड़ितों के प्रतिनिधिमंडल की मुलाकात गृहमंत्री से भी कराई गई लेकिन उन्हें कोरे आश्वासनों के अलावा कुछ न मिला। 29 अप्रैल को आम आदमी पार्टी के प्रवक्ता योगेंद्र यादव भी जंतर-मंतर पहुंचे और उन्हें आश्वासन दिया। लेकिन पीड़ित परिवारों को इस बात का डर कायम है कि कहीं उनका हाल भी पिछली बार की तरह ना हो जाए, जहां अभी तक इंसाफ बाट जोह रही है। आखिर दिल्ली अब मौन क्यों है?

ब्लॉग से साभार

(लेखक पत्रकार हैं। सम्पर्क : 9899549366)

भगाणा रेप : कुछ सवाल

–वीर भारत तलवार

हरियाणा के हिसार जिले के भगाणा गाँव की चार दलित लड़कियों के साथ हुए सामूहिक बलात्कार ने इस देश के प्रशासन, राजनीतिक नेतृत्व, न्याय व्यवस्था और नागरिक समाज सब पर गंभीर सवाल खड़े कर दिए हैं। इसने एक हताश कर देने वाली बेचैनी को जन्म दिया है जो निश्चित रूप से समय आने पर हिंसक और प्रतिशोधमूलक विस्फोट में बदल सकती है। गाँव की दबंग जातियों के दमन उत्पीड़न के खिलाफ आवाज उठाने पर गाँव की दबंग भू स्वामी जाति (जाट समुदाय) के लोगों ने पिछले दो साल से गाँव के दलितों का सामाजिक वहिष्कार कर रखा है जिसकी वजह से गाँव के अधिकांश दलित पिछले दो साल से गाँव के बाहर झुग्गियां डालकर रहने को मजबूर हुए। लेकिन कुछ एक दलित परिवारों ने गाँव में ही डटे रहने का संकल्प किया तो उनको सबक सिखाने के लिए इन दबंगों ने इन परिवारों के चार नाबालिक लड़कियों का अपहरण किया और दो दिनों तक उनसे सामूहिक बलात्कार किया। यह अपराध करने वालों में सरपंच के रिश्तेदार भी शामिल थे। किसी तरह जब बच्चियों को छुड़ा कर गाँव लाया गया तो अपराधियों को पकड़ने और सजा देने के बजाय सरपंच ने उल्टे इन पीड़ित लड़कियों और उनके परिवार वालों को ही धमकाया और पुलिस ने भी कोई सक्रियता नहीं दिखाई। अपने साथ न्याय करने की मांग को लेकर ये दलित परिवार अपनी बच्चियों को साथ लेकर पिछले कई दिनों से दिल्ली में जंतर-मन्तर पर धरना-प्रदर्शन कर रहे हैं। जेएनयू छात्र संघ और जे एन यू के -खासकर दलित-पिछड़ी जाति के संगठनों से जुड़े-विद्यार्थियों ने उनके समर्थन में आन्दोलन किया और अपराधियों को गिरफ्तार कर कड़ी सजा देने की मांग की है. इसके बावजूद इन पीड़ित दलित परिवारों को अपनी लड़ाई में समाज से जैसा प्रबल समर्थन मिलना चाहिए था उसका सौंवा हिस्सा भी नहीं मिला. टेलीविजन के चैनलों में इस वीभत्स काण्ड की कहीं भी कोई चर्चा नहीं है। जनसत्ता और एक आध अखबारों को छोड़ कर बाकी अखबारों ने इस घटना को कोई महत्त्व नहीं दिया और अंग्रेजी अखबारों ने तो बिलकुल नहीं। हरियाणा पुलिस ने सिर्फ एक बलात्कारी को गिरफ्तार किया और बाकी सारे छुट्टे घूम रहे हैं। हरियाणा सरकार को इस घटना पर कोई शर्म नहीं महसूस हुई और उसने इन उत्पीडित दलित परिवारों को सुरक्षा प्रदान करने और फिर से गाँव में बसाने के लिए कुछ भी नहीं किया। इसी दिल्ली में निर्भया काण्ड के समय उत्पीड़न और अन्याय के खिलाफ गुस्से से उमड़ी हजारों-हजार की भीड़ इस दलित परिवार के साथ कहीं दिखाई नहीं देती।

क्या यह शर्मनाक नहीं है? क्या यह घटना हमें अपनी सारी व्यवस्था पर फिर से सोचने के लिए मजबूर नहीं कर देती? इन दलित परिवारों का मुट्ठी भर लोगों के सहयोग से लड़ाई को लड़ना और बाकी समाज का निष्क्रिय और उदासीन बने रहना किस मानसिकता को सूचित करता है? निर्भया कांड के बाद स्त्रियों के खिलाफ हिंसा और बलात्कार सम्बन्धी इतने कड़े कानूनों के बन जाने के बावजूद हरियाणा में दलित महिलाओं से बलात्कार की इतनी घटनाएँ और उसके अपराधियों का बेखौफ घूमना कैसे संभव हुआ है? जनतंत्र, प्रशासन, पुलिस, न्यायालय और इतने सारे कड़े कानूनों के होने के बावजूद इन सबका दलितों को कोई लाभ नहीं मिल रहा और उनपर अत्याचार जारी है- ऐसा क्यों है? क्यों हमारे राजनीतिक दल इस घटना पर निष्क्रिय बने रहे? यहाँ तक कि उत्तर भारत में दलित राजनीति के सबसे बड़े संगठन और उसकी नेता मायावती तक इन दलित परिवारों के आन्दोलन में कहीं नजर नहीं आयीं. मायावती ही नहीं दूसरे बड़े दलित नेता उदितराज वगैरह भी कहीं दिखाई नहीं पड़े. यहाँ तक कि हर बात के लिए आन्दोलन करने वाली आम आदमी पार्टी ने भी शुरू में कुछ सक्रियता दिखा कर इस मुद्दे पर कोई आन्दोलन नहीं किया जबकि यह घटना खुद अरविन्द केजरीवाल के जिले की है? सुप्रीम कोर्ट में यह मामला दर्ज तो है लेकिन सुप्रीम कोर्ट की ओर से भी इस घटना पर अभी तक कोई तत्परता नहीं दिखाई गई है। ऐसा क्यों है? क्यों चारो ओर चुप्पी और निष्क्रियता है? क्यों इन उत्पीड़ित दलित परिवारों के लिए एक शक्तिशाली आन्दोलन खड़ा नहीं किया गया? क्यों इन्हें लड़ने के लिए असहाय छोड़ दिया गया? अखबारों टीवी चैनलों और पत्रकारों की इस नितांत संवेदनहीनता की क्या वजह हो सकती है? इन सवालों का कोई जवाब नहीं मिलता है सिवाय इसके कि हमारे समाज और जनतंत्र की सभी महत्पूर्ण संस्थाओं और शक्तियों की संवेदनशीलता उनके वर्गीय और जातिगत स्वार्थों की संकीर्ण सीमाओं से बाहर आने में असमर्थ है। यह बड़ी निराशापूर्ण स्थिति है जो एक हताशापूर्ण बेचैनी को जन्म दे रही है। इस बेचैनी का परिणाम क्या निकलेगा?

(लेखक जेएनयू के पूर्व प्राध्यापक एवं प्राख्यात आलोचक हैं। सम्पर्क : 9560857548)

दलित सशक्तिकरण एवं अत्याचार प्रतिकार हेतु सकारात्मक पहल की आवश्यकता

–ई. बृजपाल भारती

भारतीय लोकतान्त्रिक संवैधानिक राज्य (Indian democratic Constitutional state) की स्थापना 26 जनवरी 1950 के ऐतिहासिक दिन से मारनी जा सकती है। यह ऐतिहासिक दिन लोकतंत्र में विश्वास करने वालों एवं लोकतंत्र के अभाव में प्रताड़ित समाज के लिए बहुत महत्व का दिन है। 26 जनवरी 1950 को भारतीय राज्य (Indian state) को लोकतान्त्रिक तरीकों से चुनी हुई विभिन्न स्तरों की प्रतिनिधि सत्ताओं (Representative powers) द्वारा संवैधानिक तरीके से संचालित कने का दायित्व भारतीय समाज को मिला है भारतीय संविधान के अनुसार कोई व्यक्ति या समाज, जाति, वर्ण, लिंग, धर्म तथा अन्य किसी भी तरह की श्रेष्ठता-मनोग्रंथि को आधार बनाकर दूसरे व्यक्ति या समाज को प्रताड़ित नहीं करेगा। फिर क्या कारण है कि लगभग 65 साल गुजरने पर भी दलित समाज को प्रताड़ित करने की घटनाऐं आज भी घटित हो रही हैं। इसका ताजा उदाहरण हरियाणा के जिला हिसार, गाँव भगाणा एवं उत्तरप्रदेश के जिला गौतम बुद्धनगर के गाँव कनावनी में दलित उत्पीड़न एवं अत्याचार है। दोनों ही घटनाओं में झगड़े के कारण भिन्न हैं, मगर उत्पीड़न के तरीके समान हैं;

–दलित समाज को सामाजिक रूप से बेइज्जत करना एवं गाँव छोड़ने पर मजबूर करना।

–दलित समाज की लड़कियों/स्त्रियों पर बलात्कार जैसे अत्याचार।

–दलित समाज के लोगों की सम्पत्ति का विनष्टीकरण एवं जबरन अतिक्रमण तथा अधिग्रहण।

आधुनिक भारत कें दलित उत्पीड़न की ये घटनाऐं दलित समाज के सरकारी एवं सामाजिक सशक्तिकरण की पोल खोलतीं हैं एवं दलित सशक्तिकरण के सरोकारों पर पुर्नचिन्तन हेतु आवाहन करती हैं।

दलित सशक्तिकरण का कार्य भारतीय संविधान की मौलिक भावना, समता, स्वतन्त्रता, बन्धुता एवं न्याय के अनुसार जहाँ भारतीय राजनैतिक सरकारों द्वारा किया गया, वहीं दलित समाज ने बाबा साहब डॉ. भीम राव अम्बेडकर के विचारों को आधार बनाकर जन-जागरूकता द्वारा इस कार्य को गति देने का प्रयास किया है। सरकारी एवं सामाजिक प्रयास में कोताही के कारण ही आज भी दलित उत्पीड़न की घटनाऐं घट रहीं हैं। इन घटनाओं की रोकथाम एवं दलित सशक्तिकरण हेतु डॉ. अम्बेडकर के विचारों द्वारा मार्गदर्शन एवं आत्मसात करने की महती आवश्यकता है, न कि शासन, प्रशासन एवं प्रताड़क समाज पर दोषारोपण करने की। कोई भी समाज अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों के लिए बाहरी समाज एवं कारणों को दोषी मानकर, बिना भविष्य की राजनीति बनाये अत्याचार मुक्त नहीं हो सकता। इसलिए दलित समाज के बुद्धिजीवी, जागरूक नागरिक एवं विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत कार्यकर्त्ताओं का दायित्व है कि वे कारणों की तरह में जाकर दलित सशक्तिकरण का कार्य करें। क्योंकि दलित समास्या बड़ी जटिल (complex) एवं सदियों पुरानी है, इसलिए इसके लिए स्पष्ट, सशक्त, श्रेणीबद्ध, चरणबद्ध, संस्थाबद्ध तरीके ईजाद करने की जरूरत है। दलित सशक्तिकरण हेतु दलित-बहुजन महापुरुषों के ज्ञान व मार्गदर्शन के आलोक में कुछ उपाय निम्नवत सुझाएँ जा रहे हैं। ये उपाय दलित समाज को सकारात्मक पहल की आवश्यकता के लिए अवश्य प्रेरित करेंगे।

किसी भी नागरिक एवं समाज को आधुनिक समय में प्रभावित करने वाली शक्तियों को चार श्रेणीयों–सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनैतिक, में बाँटा जा सकता है। इन चारों प्रभावकारी तत्वों (effecting factors) को पुनः निम्न प्रकार दो-दो क्षेत्रों में बाँटने पर कुल आठ क्षेत्र बैठते हैं, जिनमें दलित समाज को स्वयं एवं सरकारों को सशक्तिकरण का कार्य करना पड़ेगा ताकि सकारात्मक परिणाम आयें।

प्रभावीकारी शक्ति श्रेणी	प्रभावकारी शक्ति क्षेत्र
(I) सामाजिक श्रेणी	1. सामाजिक व्यवहार क्षेत्र
	2. स्वास्थ्य क्षेत्र
(II) सांस्कृतिक श्रेणी	3. धार्मिक क्षेत्र
	4. शिक्षा क्षेत्र
(III) आर्थिक श्रेणी	5. नौकरी क्षेत्र
	6. व्यवसाय क्षेत्र
(IV) राजनैतिक श्रेणी	7. प्रशासनिक क्षेत्र
	8. शासन/सत्ता क्षेत्र

विस्तार से बचते हुए प्रत्येक क्षेत्र से सम्बन्धित तीन-तीन समस्याओं एवं समाधानों पर संक्षेप में चर्चा की जा रही है ताकि हम दलित समाज हेतु स्थायी सशक्तिकरण रणनीति की योजना पर आगे बढ़ सकें।

1. सामाजिक व्यवहार क्षेत्रः-नागरिक जीवन को प्रभावित करने वाला यह प्रथम क्षेत्र है, एवं इसी क्षेत्र से दलित समाज के उत्पीड़न की शुरुआत होती है। बाबा साहब से पहले के संतों, गुरुओं से लेकर बाबा साहब के बाद के विभिन्न कार्यकर्त्ताओं एवं विद्वानों ने दलित समाज के उत्पीड़न एवं उससे मुक्ति के मार्ग ज्यादातर इसे क्षेत्र में तलाश किये हैं। सामाजिक व्यवहार में दलित समाज की गैर-दलित समाज के साथ क्रियाएं (A ctivities) एवं दलित समाज की अन्तःक्रियाएं (Interactivities) शामिल हैं। सामाजिक व्यवहार क्षेत्र में निम्न तीन समस्याओं को चिन्हित किया जा सकता है, एवं इनके सम्भावित समाधान साथ-साथ दिये जा रहे हैं।

(A) जाति आधारित समस्या एव समाधानः-दलित समस्याओं के निराकरण हेतु इस समस्या को प्रधानता के साथ लिखा जाता है। सिद्धान्ततः इस समस्या का निराकरण जातिविहीन समाज का निर्माण करना है जोकि एक आदर्श समाधान है। लेकिन अन्तिम समाधान तक पहुँचने हेतु इसमें गैर-दलित समाज की भूमिका प्रधान है, क्योंकि वह समाज की जाति के आधार पर दलित समाज का उत्पीड़न करता है। इसीलिए कई विद्वान अब जातिविहीन समाज निर्माण के समाधान को आदर्श एवं अन्तिम नहीं मानते। गैर-दलित समाज जातीय व्यवस्था रखना चाहता है क्योंकि वह इस व्यवस्था से लाभ की स्थिति में है, जबकि दलित समाज इस व्यवस्था को खत्म करना चाहता है क्योंकि वह इस व्यवस्था द्वारा प्रताड़ित है। मौजूदा में इसका समाधान बाबा साहेब द्वारा ही गई अनुसूचित जाति एवं जनजाति वर्ग व्यवस्था में दिखाई देता है। इसके लिए जाति तोड़ने जाति मिटाने आदि के कार्यो में ऊर्जा नष्ट करने की बजाय दलित समाज को विभिन्न जातियों को जोड़ने का कार्य करके अनुसूचित जाति एवं जनजाति वर्ग बना लेना चाहिए। वर्ग निर्माण हेतु 'जाति जोड़ों, वर्ग बनाओ—दलितों को मजबूत बनाओं' की भावना विकसित करने का कार्य करें। गाँव से लेकर जिले तक की सभी परिवर्तन को अंजाम दे सकती हैं। मौजूदा में एक जाति पर अत्याचार करने की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है जोकि वर्ग विकसित होने पर अत्याचारी उत्पीड़न करने से पहले परिणाम की सोचकर अपने कदम वापिस अवश्य ले लेगा। वर्ण, जाति से ज्यादा शक्तिशाली है जिसका अपयोग अभी तक उत्पीड़क स्वयं कर रहे हैं। उत्पीड़क, एक वर्ग के रूप में शक्तिशाली हैं जबकि दलित समाज जातियों में बँटा होने की वजह से कमजोर है। इस कार्य को करने की दलित समाज की स्वयं की जिम्मेदारी है।

(B) पेशेगत समस्या और उसका समाधानः- दलित समाज की पेशेगत निम्न समस्याएं हैं, जिनको ज्ञान का उपयोग करके सुलझाया जा सकता है। जीवन को संचालित करने वाले श्रम से जुड़े हुए पेशों को एक साजिश के तहत घृणित एवं आर्थिक रूप से कम आमदनी प्रवृत्ति आज भी कहीं प्रत्यक्ष तो कहीं अप्रत्यक्ष रूप से कार्य कर रही है। 'श्रम की पूरी मजदूरी पाना श्रमिक का वैधानिक अधिकार है, ' जिसे हमारी लोकतान्त्रिक सरकारों ने येन-केन-प्रकारेण श्रमिक समाज में जागरूकता

लाने को कार्य किया है। श्रम का पूरा मुआवजा पाने की जागरूकता ने जहाँ एक तरफ दलितों में पलायन की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया है, वहीं दलितों एवं गैर-दलितों में टकराव की घटनाओं को भी बढ़ाया है। पलायन एवं टकराव की मानसिकता से दलित अत्याचार की कुछ घटनाएं मीडिया में सुर्खियाँ पाती हैं, जबकि बहुत-सी घटनाएं सामान्य एवं स्वाभाविक मानकर तवज्जों नहीं पातीं हैं। यह समस्या हालाँकि जाति-आधारित समस्या से जुड़ी हुई है लेकिन इसका अपना अलग अस्तित्व है, क्योंकि अब पेशों को जाति के आधार पर अपनाने की सामाजिक बाध्यता नगण्य है। इस समस्या का समाधान यह है कि सभी पेशेवर, श्रमिक, कामगार, कारीगर आदि स्वयं को संगठित करनें एवं अपने अधिकारों के लिए संगठित एवं संस्थाबद्ध होकर करें। अभी तक सिर्फ फेक्ट्री, कम्पनी, एवं सरकारी-अर्धसरकारी कार्यालयों में ही श्रमिक एवं कर्मचारियों में संगठित होने की प्रवृत्ति पनप पायी है। कृषि क्षेत्र, असंगठित निर्माण क्षेत्र, दैनिक आवश्क सेवा क्षेत्र आदि में श्रमिक एवं कर्मचारियों को संगठित होने की आवश्यकता है। संगठित होकर अधिकारों हेतु कानूनी सहायता के लिए कानूनी सलाहकार एवं विशेषज्ञों की सहायता प्रति व्यक्ति कम खर्च में उपलब्ध की जा सकती है।

दलित समाज की जनसंख्या पूरे देश में 'छितरी हुई जनसंख्याा' (Scattered population) के रूप में बाबा साहब ने चिन्हित की है। ऐसी स्थिति में कुछ दलित समाज के परिवार ज्यादा संवेदनशील अवस्था में रह हरे हैं, तथा मजबूरीवश गैर-दलितों के अत्याचार सहने को मजबूर हैं। इस तरह की अवस्था वाले परिवारों को 'स्वेच्छा से परित्याग' (Willful quite) करना चाहिए एवं किसी भी कस्बे या शहर में खुशी से बसना चाहिए। मनुष्य का आवास पेशे के साथ जुड़ा हुआ है। ग्रामीण समाज में पेशेगत समस्या से जूझ रहे लोगों हेतु दलित संगठनों को 'गाँव परित्याग अभियान' (Quit village campaign) संगठित तरीके से चलाना चाहिए। यह अभियान बाबा साहब की 'अलग पुनर्वासन' (Seperate resettlement) नीति की भावना के अनुरूप होगा एवं गैर-दलित समाज श्रम की अनुपलब्धता के संकट को भाँपते हुए दलित समाज पर अत्याचार नहीं करेगा। वैसे भी मजबूरी में पलायन से अच्छा है कि खुशी से त्याग करके नये मौकों को तलाश कर मुक्ति पायें।

(C) लिंग आधारित अन्याय एवं उसका समाधानः- वैसे तो ऐतिहासिक रूप से लिंग आधारित अन्याय की दलित संस्कृति नहीं रही है, लेकिन समय के विभिन्न पड़ाव व आयामों ने स्वयं दलित समाज में इस प्रवृत्ति को विकसित कर दिया है। दलित समाज के लोग भी अपनी बहन, बेटियों के साथ, शिक्षा स्वास्थ्य, अवसरों, अधिकारों एवं अन्य सामाजिक व्यवहारों (Man dominated Society) बन चुका है जिसमें स्त्री समाज की प्रत्येक सामाजिक सुरक्षा की जिम्मेदारी पुरुष समाज पर है, एवं इसमें वह जाने-अनजाने सक्षम नहीं है। समय की आवश्यकता है कि दलित समाज

अपनी बेटियों, बहुओं एवं अन्य स्त्रियों के साथ, शिक्षा से लेकर सुरक्षा तक समानता का व्यवहार अपनाऐ। दलित समाज की स्त्रियों को सबसे पहले स्वयं दलित समाज को ही और न्याय की व्यवस्था देनी होगी। यह तो हुआ आन्तरिक संघर्ष एवं व्यवस्था हेतु दीर्घकालीन उपाय। अब मैं कुछ तात्कालिक उपाय उपर्युक्त घटनाओं के सन्दर्भ में सुझा रहा हूँ, जिससे थोड़ी राहत मिल सकती है एवं दीर्घकालिक उपायों की तरफ अग्रसर हुआ जा सकता है।

—पीड़ित स्त्रियों को न्याय दिलाने हेतु जिलेवार कानूनी सहायता प्रकोष्ठ (Legal help wing) तैयार की जाय, एवं इसकी जिम्मेदारी दलित वकीलों को दी जाये। दलित वकीलों की उपलब्धता ना होने की स्थिति में अन्य पेशेवर वकीलों की सहायता ली जाये। शासन एवं प्रशासन द्वारा भी दलित समाज हेतु कुछ व्यवस्थाएं की हुई हैं उनका भरपूर उपयोग किया जाये। जिम्मेदारी समाज के जागरूक लोगों को ही लेनी पड़ेगी, तभी शासन-प्रशासन एवं समाज की सहायता प्राप्त हो सकेगी। जिलेवार कानूनी सहायता प्रकोष्ठ पूरे प्रदेश में आपस में नेटवर्क द्वारा जुड़े हों तो समस्या एवं समाधानों का प्रदेशवार आँकड़ा मासिक से लेकर वार्षिक तक मिलता रहेगा।

पीड़ित परिवारों को आर्थिक सहायता मुहैया कराने हेतु जहाँ प्रशासन से पहल की जाये, वहीं समाज के लोगों द्वारा समाज में भी यह सहायता अभियान चलाया जाये एवं एक सामाजिक कोष का निर्माण किया जायें। दलित समाज आज भी कमजोर स्थिति में इसलिए है क्योंकि यह भविष्य में आने वाली मुसीबतों से मुकाबला करने हेतु पहले से ना तो आंकलन करता है और ना ही इन्तजार। आपातकालीन सामाजिक कोष (Social fund for emergency) निर्माण करने हेतु गाँव से लेकर जिले तक टीमें तैयार करें एवं इस पर संघटित तथा संस्थाबद्ध तरीके से कार्य करें तो समाज की परम्परागत खर्च करने की आदतों में भी सुधार हो सकता है। इसके लिए अपने परम्परागत साधन गुल्लक का प्रयोग करें। सामान्य से लेकर विषय-विशेष से सम्बन्धित कोष निर्माण करने हेतु गुल्लक अभियान की शुरुआत करेंगे तो समाज में संचय, बचत, मितव्यता आदि गुणों का विकास होगा। कुछ उदाहरणों द्वारा इशारा समझ जायेंगे।

— दलित सशक्तिकरण हेतु ''भीम गुल्लक अभियान'' (Bheeam Gullak campaign for dalit empower mehtt)

— भगाणा पीड़ितों की आर्थिक सहायता हेतु; ''भीम गुल्लक वितरण समारोह''

— कनावनी गाँव के पीड़ितों को कानूनी सहायता के लिए फण्ड निर्माण हेतु; ''भीम गुल्लक यात्रा''

— दलित समाज के युवा एवं युवतियों को आत्मरक्षा एवं बचाव हेतु प्रशिक्षण की व्यवस्था शुरू करनी होगी, ताकि समय पड़ने पर वे प्रताड़ित अवस्था को प्राप्त होने की बजाये 'मुकाबले में जीत या हार' को प्राप्त करें। आत्मरक्षा हेतु सामान्य तीन

फीट की छड़ी एवं 5 फीट की लाठी से लेकर स्वचालित हथियारों के प्रशिक्षण की व्यवस्था दलित समाज को करनी चाहिए। आत्मरक्षा हेतु प्रशिक्षण लेना, बहादुरी के गुण, कला एवं कौशल विकसित करना होता है, जोकि प्रत्येक समाज के लोगों में होने चाहिए। आत्मरक्षा में प्रशिक्षित स्त्री एवं पुरुष पूरा जीवन आत्मविश्वास एवं निर्भय होकर गुजारेंगे, यह सिद्ध वैज्ञानिक तथ्य है। आत्मरक्षा में प्रशिक्षित व्यक्ति दूसरों की रक्षा करने में भी आगे रहता है, तथा समय पड़ने पर इस शिक्षा को वह अपने रोजगार के रूप में अपना सकता है। कानूनी दायरे में ऐसे प्रशिक्षण केन्द्र समाज द्वारा शुरू करने चाहिए। यह कार्य वर्तमान में कार्य कर रहे संगठनों द्वारा संगठनिक तरीके से तीव्र गति से करना चाहिए। दलित समाज बचपन से ही सृजन एवं विध्वंस (Destory/ demolish) करने वाले औजारों से कार्य करता है एवं समय पड़ने पर ये औजार कैसे हथियार बनाये जाँय, यह सिद्धहस्त प्रशिक्षक ही बता सकता है।

(2) **स्वास्थ्य क्षेत्र**— स्वास्थ्य क्षेत्र से जुड़ी हुई समास्याओं एवं समाधानों हेतु मैं तीन मुख्य बिन्दुओं पर चर्चा कर रहा हूँ, जिनको अपनाकर दलित समाज के सशक्तिकरण का कार्य किया जा सकता है।

(A) सामाजिक स्वास्थ्य निर्माण कार्य (Social heather building work) : स्वास्थ्य निर्माण हेतु स्वास्थ्यवर्धक खाना, स्वच्छ वातावरण, स्वच्छ पानी, स्वास्थ्य जागरूकता, सामाजिक स्वास्थ्य संस्थाएं आदि फेक्टर कार्य करते हैं। इनमें से दलित समाज के पास कुछ चीजें उपलब्ध हैं तथा कुछ को आपसी सूझ-बूझ एवं सहयोग से निर्मित किया जा सकता है। इस हेतु हमारी राज्य एवं सरकारें भी सराहनीय कार्य कर रही हैं। दलित समाज के जागरूक लोग भी इस पर कार्य कर रही हैं। दलित समाज के जागरूक लोग भी इस पर कार्य करके दलित समाज की सामाजिक स्वास्थ्य छवि (Social health Image) को सुधार सकते हैं। मौजूदा में दलित समाज की स्वास्थ्य छवि वास्तव में अच्छी नहीं है, एवं दयनीय तथा बेचारगी जैसी छवि निर्मित हो गई है। इस छवि से उबारने हेतु मैं कुछ उपाय सुझा रहा हूँ जिन्हें अपनाकर दलित समाज सदैव के लिए अत्याचारों से मुक्त समाज (A ttrocities free society) में परिवर्तित हो सकता है।

—भीम अखाड़ा, फूले व्यायामशाला, कबीर खेल-कूद केन्द्र, रविदास शारीरिक प्रशिक्षण केन्द्र, कांशीराम एडवांस्ड शारीरिक प्रशिक्षण विकास केन्द्र, आदि सामाजिक संस्थाओं का निर्माण करके दलित समाज के युवा एवं युवतियों को शारीरिक रूप से स्वस्थ बनाने का कार्य अतिशीघ्र शुरू कर दनो चाहिए। इस योजना को सामाजिक स्वास्थ्य निर्माण योजना (Social/community health plan) के रूप में प्रचारित एवं क्रियान्वित करना आवश्यक है ताकि दलित समाज में शारीरिक रूप से स्वस्थ युवक युवतियों की उपलब्धता हो सके। स्वस्थ युवक-युवतियों हेतु पुलिस, फौज, प्राइवेट सिक्योरिटी इत्यादि में रोजगार के भी अच्छे मौके हैं जिनका फायदा उठाया जा सकता

है। संस्थागत स्वास्थ लाभ लेकर नौकरी पाने वाला व्यक्ति ना केवल संस्था के प्रति कृतज्ञ होगा बल्कि वह समाज के लिए भी जीवनपर्यन्त सहयोग हेतु उपलब्ध रहेगा।

–सामाजिक स्वास्थ को मौजूदा में संगठित करने हेतु संस्थाबद्ध तरीके से समता सैनिक दल जैसे संगठन आसानी से कर सकते हैं, एवं अत्याचार के प्रतिकार हेतु स्वयं को समाज के सामने प्रस्तुत कर सकते हैं। रोजगार हेतु अभियान चलाना तो अनवरत रूप से सम्भव है जिसके परिणाम भी बहुत अच्छे आयेंगे क्योंकि आज के समय में रोजगार की जरूरत सभी को है एवं मार्गदर्शन की दरकार है।

–स्वास्थ्य निर्माण की भावना पैदा करने हेतु चार्वाक दर्शन (कर्ज लेकर भी घी पीओ स्वस्थ बनने हेतु) से लेकर बुद्ध के अनुयायियों द्वारा मार्शल आर्ट का विकास, जैसे सैद्धान्तिक पक्ष को प्रचारित-प्रसारित किया जाये। पहला सुख निरोगी काया, Health is wealth, स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ दिमाग का वास होता है स्वस्थ दलित-स्वस्थ भारत, जैसे स्लोगन दलित समाज के प्रत्येक व्यक्ति को आत्मसात करने होंगे एवं अपने घरों की दीवारों पर लिखने होंगे। यह कार्य उन लोगों को सोचने को लिए विवश करेगा जो दलितों पर अत्याचार करते हैं।

(B) अत्याचार प्रतिकारक स्वास्थ शक्ति निर्माण कार्य (A ction for building opposable health power-against attrocities)–ऊपर बताये गये उपायों द्वारा तहसील, बनाम, जिला एवं प्रदेशवार प्रतिकारक स्वास्थ शक्ति का निर्माण किया जाये। अक्सर देखनें में आया है कि दलित समाज के साथ गैर दलित समाज के व्यक्तिगत झगड़े सामाजिक झगड़ों में तब्दील हो जाते हैं। कई बार व्यक्तिगत रूप से गैर दलित व्यक्ति या परिवार दलित से कमजोर अवस्था में होते हुए भी सामाजिक रूप से मजबूत अवस्था में होता है। ऐसी स्थिति में व्यक्तिगत झगड़े ज्यादातर सामाजिक झगड़ों के रूप में तब्दील हो जाते हैं एवं दलित समाज उत्पीड़न का शिकार बन जाता है। इसमें मुख्य रूप से स्थानीय रूप से दलित समाज का संख्या में कम होना होता है तथा दूसरे कारणों में दलित समाज का संगठित ना होना, रोजगार निर्भरता आदि आते हैं। दलित समाज को चाहिए कि वह संस्थाबद्ध तरीके से संगठित प्रतिकारक सामाजिक शाक्ति का निर्माण करे ताकि कम संख्या होने पर भी इस संगठित शक्ति का अहसास दोनों समाजों को हो। जहाँ गैर-दलित समाज स्थानीय दलित समाज को कम शक्तिवान नहीं आंकेगा, वहीं दलित समाज एक संगठिन शक्ति द्वारा अवलम्बन पाकर बेचारगी की स्थिति में प्रताड़ित नहीं होगा। यह शक्ति सामाजिक सन्तुलन बनाने हेतु आवश्यक भी है एवं प्राकृतिक भी, क्योंकि आत्मसुरक्षा हेतु समाज की संगठित शक्ति दिखनी चाहिए अन्यथा कमजोर समझकर अत्याचार और उत्पीड़न होता ही रहेगा।

लोकतन्त्र में सामाजिक विसंगतियों को दूर करने हेतु वैद्यानिक प्रावधानों के अलावा विभिन्न समाजों को अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों के खिलाफ संगठित प्रतिरोध करने के मौके उपलब्ध होते हैं। इसके उदाहरण स्त्री उत्पीड़न के खिलाफ 'गुलाबी गैंग', कालेज एवं बस्तियों के बिल्कुल नजदीक या फिर शराबखोरी रोकने हेतु शराब के ठेकों के खिलाफ स्त्री-पुरुषों के संगठित सफल प्रयास आदि खबरों में आये दिन सुर्खी पाते रहते हैं। दलित अत्याचार प्रतिकार हेतु आज संगठनों की आवश्यकता है। अगर यह कार्य गैर-दलित समाज के लोग भी करें तो वे बड़ी जल्दी प्रचार की पायेंगे एवं इतिहास में जिम्मेदार नागरिक के रूप में दर्ज होंगे। दलित समाज की स्वयं की तो यह महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारी है। ऐसे संगठन उद्देश्य परक तरीके से नियमित तौर पर समाज में सक्रिय रहने चाहिए ताकि समाज के लोग भयमुक्त वातारण का अहसास कर सकें। समाज में भी शक्ति पूजा एवं सम्मान की परम्परा का विकास होना चाहिए एवं धार्मिक/सांस्कृतिक विद्वानों को ऐसे प्रावधानों पर विशेष जोर होना चाहिए। एक सशक्त समाज का स्वयं का अस्तित्व एवं उसके धर्म की रक्षा शक्ति निर्माण एवं सम्मान से ही सम्भव होती है। इस कार्य की संचालन प्रक्रिया को निम्न बिन्दुओं द्वारा और स्पष्ट समझा जा सकता है।

– प्रत्येक जिले पर एक दलित अत्याचार प्रतिकारक संगठन की ईकाई बनाई जाये। इस ईकाई में उचित संख्या में समर्पित कार्यकर्त्ता होने चाहिए। पहले से संचालित संगठन अपनी एक विंग के रूप में इसे शुरू कर सकते हैं।

– स्वास्थ्य के प्रति जागरूक, हिम्मतदार, प्रशिक्षित कार्यकर्त्ताओं की यह ईकाई पूर्व में हुए अत्याचारों का अध्ययन एवं विश्लेषण करे तथा समाज में सम्पर्क अभियान शुरू करे। यह सम्पर्क अभियान जन जागरूकता अभियान की तरह हो एवं जिले के नीचे की ईकाइयों के निर्माण हेतु होना चाहिए ताकि संगठन का विस्तार गाँव तक पहुँच जाये।

– प्रति दस परिवारों में से एक समर्पित व्यक्ति इस संगठन का सक्रिय सदस्य हो, ऐसा टारगेट बनाकर कार्य करेंगे तो तहसील स्तर पर 100 से 200 लोगों का एक सशक्त संगठन तैयार हो जायेगा एवं जिले पर इसके सक्रिय सदस्यों की संख्या 500 से 1000 हो जायेगी।

– तहसील, ब्लाक एवं जिलास्तर की ईकाइयाँ पूरे जिले के दलित समुदाय की सुरक्षा सम्बन्धित समस्याओं पर विस्तार से अध्ययन करने जिला प्रशासन से सलाह-मशविरा करते रहें। संवेदनशील जगहों को चिन्हित करके प्रशासन को विशेष ध्यान रखने का आग्रह करें, ऐसी सम्वेदशील जगहों पर अपने संगठन के शिविर, बैठक, आदि भी रखें ताकि वहाँ का समाज (गैर दलित) दलितों को शक्तिविहीन ना मानकर चले।

–किसी भी तरह के झगड़े की स्थिति में अपनी शक्ति का अहसास शान्ति सन्तुलन हेतु करायें एवं प्रशासन की मदद से झगड़े को सामाजिक झगड़े में तब्दील होने से रोकने का कार्य करें।

(C) उपचार मार्गदर्शन कार्य (Treatment Guidance work)—दलित समाज को स्वस्थ रखने हेतु उपचार मार्गदर्शन की भी अति आवश्यकता है। ज्ञान के अभाव एवं अच्छे संस्कारों की प्रभावहीनता के कारण नशाखोरी, धूम्रपान, एड्स, कैंसर, टी. बी, इत्यादि बीमारियों से सबसे ज्यादा प्रभावित दलित समाज ही है। वैसे तो पहले दो कदमों द्वारा स्वास्थ्य के प्रति उत्साह संचार द्वारा बीमारियों से समाज को काफी दह तक दूर रखा जा सकता है, लेकिन सही एवं समय पर उपचार की व्यवस्था का मार्गदर्शन करना समाज के ही जागरूम लोगें का कार्य है। समाज में कार्य कर रहे संगठनों का दायित्व है कि वे समाज को स्वस्थ रखने हेतु 'स्वस्थ समाज-शक्तिशाली समाज' की भावना का अनुसरण करते हुए कार्य करें। प्राथमिक उपचार केन्द्र से लेकर जिला चिकित्सालय तक की प्रत्येक उपचार ईकाई से निरन्तर सम्पर्क बनाये रखने हेतु समाज के संगठनों को संस्थाबद्ध तरीके से कार्य करना चाहिए। इस कार्य को करने हेतु कुछ टिप्स दे रहा हूँ।

—स्वास्थ्य एवं उपचार मार्गदर्शन टीम का निर्माण करें। इस टीम में आर.एम. पी. से लेकर डॉक्टर एवं इस पेशे से जुड़े अन्य व्यक्तियों को समाज के सहयोग हेतु जोड़े।

— इस टीम का कार्य सहयोग एवं मार्ग दर्शन (Cooperation & Guidance) का होना चाहिए, ना कि सरकारी व्यवस्थाओं की सिर्फ खामियों पर आलोचना करके कार्यरत स्टाफ पर रुआव जमाना।

— सरकारी योजनाओं को सही तरह से लागू कराने हेतु समाज के लोगों के सहयोग की अति आवश्यकता होती है। दलित समाज के लोग प्रशासन का सहयोग करके चिकित्सा सुविधाओं से लाभान्वित हो सकते हैं। ऐसा करके वे चिकित्सा सेवा के क्रियान्वयन की कमियों को जानकर उन्हें दूर करने हेतु प्रयास भी कर सकते हैं।

— स्वस्थ्य समाज बनाने हेतु समय पर सही उपचार की व्यवस्था करना जहाँ सरकारों का महती कर्त्तव्य हैं वहीं समाज के जागरूक एवं प्रबुद्ध लोगों का कार्य उचित मार्गदर्शन का है। उचित मार्गदर्शन के अभाव में पहले से अस्वस्थता के वातावरण से घिरा हुआ दलित समाज कमजोर समाज बन गया है एवं इस कारण से भी उत्पीड़न का शिकार बनता है।

— सकारात्मक पहल (A ffirmative Initiatives) द्वारा ही समाज को स्वस्थ, सशक्त, संगठित एवं सम्पन्न बनाया जा सकता है।

— **प्रत्येक क्षेत्र में सकारात्मक पहल की आवश्यकता** : समय एवं स्थान-अभाव के कारण सिर्फ दो क्षेत्रों के तीन-तीन बिन्दुओं पर ही चर्चा करके निष्कर्ष पर पहुँचना आवश्यक है। ऊपर बताने गये आठों क्षेत्रों के मात्र तीन-तीन बिन्दुओं को आधार बनाकर अगर संगठनात्मक एवं संस्थाबद्ध तरीके से पहल की जाये तो दलित अत्याचारों को पूर्ण रूप से रोका जा सकता है तथा समाज को एक सशक्त समाज

बनाया जा सकता है। दलित समाज के सशक्तिकरण हेतु शासन, प्रशासन, गैर-दलित एवं स्वयं दलित समाज, चारों कर सकते हैं, मगर पहल तो स्वयं समाज को ही करनी होगी। जब समाज के अन्दर से सकारात्मक पहल होगी तो होगी तो हर क्षेत्र में विभिन्न लोगों का सहयोग भी अवश्य मिलेगा। अभी तक दलित समाज दूसरों की सहायता पर निर्भरता का आदि हो चुका है, इसमें दलित समाज के सम्पन्न एवं जागरूक लोगोां की जिम्मेदारी के अहसास की कम झलकती है। इसमें दो राय नहीं कि गैर-दलित समाज, उनकी धार्मिक-सामाजिक व्यवस्था दलित उत्पीड़न के लिए दोषी रही है, मगर लोकतान्त्रिक शासन व्यवस्था में कोई भी समाज संगठित प्रयास से पुरातन व्यवस्था को उलट सकता है। बाबा साहब का अनुयायी समाज बाबा साहेब के द्वारा सुझाये उपयों का गुणगान तो भरपूर करता है मगर उन पर अमल बहुत कम करता है, इसीलिए परिणाम भी कम आ रहे हैं। दलित समाज से कम संख्या में संगठित समाजों के अपने सार्वजनिक उपक्रम जैसे; स्कूल, चिकित्सालय, धार्मिक स्थान इत्यादि हमारे सामने उदाहरण हैं, फिर भी हमारी तरफ से सकारात्मक पहल की कोताही बरती जा रही है। ध्यान रहे, बुद्धधर्म के विनष्टीकरण का एक मुख्य कारण राज्य-व्यवस्था पर पूर्णतः आश्रित हो जाना था। दलित समाज के खिलाफ अत्याचार की घटनाओं की पुनरावृत्तियाँ इस ओर इशारा करती हैं कि अभी तक भी यह समाज सिर्फ राज्य-व्यवस्था के भरोसे अपना सशक्तिकरण का सपना संजोये हुए है। यह सपना एक दुस्वप्न में बदले, उससे पहले सशक्तिकरण की सकारात्मक पहल को तीव्र गति से शुरू करें।

— **दलित समाज में नये गुणों का जन्म होना मुक्ति हेतु आवश्यक** : दलित समाज मौजूदा स्थिति में घोर परम्परावादी, रूढिवादी एवं परिवर्तन-विरोधी है। ऐसा क्यों और कैसे बन गया है, इस पर ढेरों साहित्य लिखा जा चुका है। अब जरूरत है मौजूदा अवस्था को परिवर्तन करने की। मौजूदा अवस्था में परिवर्तन किये बिना दलित मुक्ति किसी भी क्षेत्र में सम्भव नहीं है। मौजूदा अवस्था एक सर्वहारा समाज की अवस्था है जिसमें दलित समाज का सामन्तवादी, पूँजीवादी, संस्कृतिवादी एवं अन्य वादियों द्वारा शोषण किया जा रहा है। अपनी मुक्ति हेतु सर्वहारा समाज के मार्गदर्शन के लिए बाबा साहब ने भरपूर सामग्री दे रखी है जिसका कुछ उपयोग वर्तमान में हो भी रहा है। सर्वहारा समाज की मुक्ति हेतु कार्ल मार्क्स का 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद' सिद्धान्त वैश्विक रूप से मान्य है। इस सिद्धान्त का मार्गदर्शन दलित समाज को सकारातम्क पहल हेतु लेना चाहिए। दलित समाज मात्रा में अधिक है मगर ऊँचे गुण की वर्ग चेतना, अनुशासन, संगठन एवं संगठन के सिद्धान्त की दृढ़ता, गैर-दलित समाज से कम है। गैर-दलित समाज मात्रा में कम होते हुए भी वर्ग चेतना, अनुशासन, संगठन एवं संगठन के सिद्धान्त की दृढ़ता जैसे गुणों को अपनाकर मजबूत स्थिति में है। जब तक दलित समाज के पास मौके नहीं थे, तब तक वह मजबूर था एवं गुण

का मात्रा में रूपान्तरण सम्भव नहीं था। मगर आज दलित समाज के पास मौके हैं अपनी मात्रा (संस्था) के अनुपात में मुक्ति, शक्ति एवं सत्ता हेतु आवश्यक गुणों के विकास करने के। विना आवश्यक गुणों के सर्वहारा यानी दलित समाज की मुक्ति सम्भव नहीं है, ऐसा मार्क्स से लेकर बाबा साहब एवं मा. कांशीराम का मानना था।

फूले-अम्बेडकरी मूवमेंट में कार्यरत संगठन, विद्वान, कार्यकर्त्ता सहयोगी एवं समर्थकों का दायित्व है कि दलित उत्पीड़न को रोकने हेतु तात्कालिक एवं दीर्घकालित योजना बनाकर संगठित तरीके से कार्य करें। योजनाबद्ध एवं संगठित तरीके से कार्य करते ही बाबा साहब द्वारा प्रदत्ता आरक्षण का विस्तार प्रत्येक क्षेत्र में संख्यानुपात में भागीदारी में हो पायेगा। 'जिसकी जितनी संख्या भारी-उतनी उसकी हिस्सेदारी' का नारा मा. कांशीराम द्वारा बाबा साहब प्रदत्त आरक्षण का विस्तार ही था, जोकि अभी अधूरा है। अपने महापुरुषों के सपनों को साकार करने का वैश्विक आधार हमारे विद्वानों ने 'डायवर्सिटी' के रूप में प्रस्तुत किया है, जिसकी शुरुआत चन्द्रभान प्रसाद जी द्वारा 'भोपाल दस्तावेज' से की गई एवं वर्तमान में मा. एच.एल. दुसाध एवं उनका संगठन इस पर तीव्र गति से कार्य कर रहा है। मा. एच. एल. दुसाध द्वारा लिखित एवं सम्पादित डायवर्सिटी साहित्य हमारे पास प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है, एवं समाज को सक्रिय एवं आन्दोलित करने हेतु इसका भरपूर उपयोग किया जा सकता है। मुझे उम्मीद है कि समाज सकारात्मक पहल करके दलित समाज को लोकतान्त्रिक तरीके से सशक्तिकरण ही राह अवश्य दिखायेगा।

(लेखक आर्थिक मामलों के विशेषज्ञ हैं। सम्पर्क : 09350846432)

खामोश, दलित महिलाओं पर अत्याचार जारी है

–सुरेश पंडित

संस्कृत में एक बहु प्रचलित कटावत है–''वीर भोग्या बसुन्धरा'' अर्थात् वसुन्धरा यानी पृथ्वी को वही भोग सकता है जो बलवान होता है। आजकल बलवान उसी व्यक्ति को नहीं माना जाता जो शारीरिक बल से ताकतवर होता है बल्कि आर्थिक रूप से सम्पन्न, सामाजिक रूप से कुलीन और राजनैतिक रूप से सत्ता का चहेता, पराक्रमी करने का हकदार बन गया है। शारीरिक रूप से कमजोर और अनेकों रोगों से ग्रस्त व्यक्ति भी यदि इनकें से एक भी अलंकरण धारी होता है तो दर्जनों ऐसे व्यक्तियों को अपनी सुरक्षा में रख सकता है जो उसके इशारे पर किसी की भी जीव ले सकते हैं और अपनी दे सकते हैं। तात्पर्य यह कि वीरता सत्ता की चेरी बन गई है। इसी तरह वसुन्धरा केवल पृथ्वी का पर्याय नहीं रह गई है। वह हर तरह की संपत्ति के अर्थ में भी इस्तेमाल होने लगी है। और जब हम हर तरह की सम्पत्ति की बात करते हैं तो उसमें जाहिर है औरत का भी शामिल रहना जरूरी है।

औरत वैसे तो एक जीती जागती इकाई है और उसमें कमोबेश वे सब गुण पाये जाते हैं जो पुरुष में होते हैं। लेकिन दुनिया का इतिहास उसकी सांस्कृतिक परम्परा और उसका दर्शन, धर्म और साहित्य इस बात का साक्षी रहा है जिसमें औरत एक संपत्ति के रूप में छीनी, लूटी, खरीदी व बेची जाती रही है। जो राजा, महाराजा या सामन्त जितनी अधिक स्त्रियों का मालिक रहा है उसे समाज ने उतना ही अधिक सम्मान दिया है। आज भी जब जमाना बहुत बदल चुका है ज्ञान-विज्ञान और तकनीकी ने मानव जाति की सोच को बदलने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है तब भी औरत के प्रति पुरानी सामन्ती सोच में विशेष बदलाव नहीं आया है। नियम कानून कितना भी व्यक्ति को एक पत्नी व्रती, सदाचारी और चरित्रवान बनाये रखने की कोशिश करते रहें हैं, औरत के प्रति उकसे मनोभाव को बदल पाने में विशेष सफल नहीं हुए हैं। यही वजह है कि स्त्री पुरुष के बीच का वह रिश्ता जो परस्पर प्रेम, आदर सम्मान और सौहार्द पर आधारित होना चाहिये था, वेसा नहीं बन पाया है।

बिषमता मूलक वर्तमान समाज व्यवस्था में पुरुष का वर्चस्व बढ़ा है और उसने

हर तरह छल-कपट का सहारा लेकर स्त्री को हर तरह के अधिकारों से विपन्न रखने की पूरी पूरी कोशिश की है। फलस्वरूप समाज में औरत की स्थिति आज भी एक सम्मान जनक नागरिक जैसी नहीं है। उसकी स्थिति तब और अधिक दयनीय हो जाती है जब वह आर्थिक सामाजिक व राजनैतिक रूप से उपयुक्त है स्थिति में सफल नहीं हो पाती है। उसकी हैसियत का पैमाना अधिकतर कुल और जाति के स्तर पर निर्भर रहता है यदि औरत गरीब भी है और दलित भी तो समझ लीजिये समाज में उसकी कोई हैसियत नहीं है। कोई भी आर्थिक या सामाजिक रूप से प्रभावशाली व्यक्ति उसकी स्वाधीन अस्मिता को कुचलने और उसके स्वाभिमान को रोकने में कभी संकोच नहीं करता।

सामाजिक आर्थिक रूप से पिछड़ी दलित और आदि जातियों की महिलायें आदिकाल से शोषण, उत्पीड़न का शिकार तो रही ही है, बर्बर यौन हिंसा की क्रूर स्थितियों से गुजरने के लिये भी अभिशप्त रही है। विडम्बना यह है कि उनके साथ होने वाले इस तरह के अमानवीय व्यवहारों के प्रति शेष समाज में विस्फोटक आक्रोश तो क्या समान्य सी प्रतिक्रिया तक का प्रकाश होते कभी देखा सुना नहीं गया है। इस तरह की संवेदनहीनता उसी हालत में पैदा होती है जब हम इस तरह की स्त्रियों को जीती जागती इकाई तक मानने से इन्कार कर देते है। ं कष्ट तब और अधिक होता है। जब हम एक ओर तो महिला मुक्ति आन्दोलन की अगुवाई कर धुरन्धर समाज सेवी भी होने की अपनी एक विशिष्ट छवियाँ इजहार करते हैं और दूसरी ओर इस तरह की नीच त्रासदियों का नोटिस तक लेना जरूरी नहीं समझते। पिछले दिनों हरियाणा के एक गाँव भगाणा में दलित लड़कियाँके साथ हुए सामूहिक बलात्कार की जो घटना सामने आई है उसके विरोध में मानवता वादी शक्तियों की ओर से जिस तरह की उग्र प्रतिक्रिया की अभिव्यक्ति अपेक्षित थी वैसा कुछ न होना साबित करता है कि समाज अब इतना कण्डीशन्ड (अनुकूलित) हो चुका है कि उसके पीछे दलित महिलाओं के साथ हुआ बलात्कार कोई मायने नहीं रखता।

लेकिन हैरानी सब होती है जब ये ही लोग निर्भया दामिनी के साथ हुए बलात्कार के मौके पर दिल्ली की सड़कों को जामकर सरकार को मजबूर कर देते हैं कि इस तरह की क्रूर घटनायें फिर न हो इसके लिये प्रचलित कानून को अधिक कठोर व कारगर बनाये। पर भगाणा की दलित कन्याओं के साथ जो कुछ होता है उसे वह अनदेखा छोड़ देता है। इसका अभिप्राय यही हो सकता है कि स्त्रियों के साथ होने वाले अभद्र व्यवहार पर उसकी प्रतिक्रिया उनकी जाति को देखकर होती है। समाज में जब इस तरह का भेदभवा पूर्ण रवैया किसी को नही खटकता तो मीडिया भी उसी रवैये को अख्तियार करने में जरा भी नहीं हिचकिचाता। वह दलित महिलाओं के साथ जो दुर्व्यवहार हुआ उसे दिखलाने से तो परहेज करता ही है, उसके विरोध में हुए धरना प्रदर्शनों से भी अपनी नजरें हटा लेता है।

इसके पीछे एक मनोविज्ञान यह भी हो सकता है कि हरियाणा में ऐसा अक्सर होता ही रहता है इसलिये लोग इसे सरसरी नजर से देखते हैं और अपने काम में लग जाते हैं। वैसे भी वह प्रदेश जाटबहुल प्रदेश हैं और यहाँ जो भी सरकार बनती है वह या तो इनके नेताओं की अगुवाई में बनती है या सरकार में उनका दबदबा रहता है। इसीलिये इस जाति के लोग अक्सर दलितों को सबक सिखाने और उनके स्वाभिमान को तोड़ने का साहसिक कार्य बड़े बेखौफ होकर करते हैं। वे जानते हैं कि कुछ दिन इस बात को लेकर हो हल्ला रहेगा, शासन-प्रशासन मुस्तैदी दिखायेगा फिर मामला ठण्डा पड़ जायेगा। जाट एक दबंग कौम है। लड़ने-भिड़ने में इन्हें देर नहीं लगती। पुलिस प्रशासन से नहीं डरते नहीं इसलिये इनके दुष्कर्मों का विरोध अन्य लोग या मिडिया भी करने से अलग रहते हैं। इनका विरोध करना अन्ततः उनसे दुश्मनी में बदलना होता है। दलितों के लिये सभ्य समाज क्यों खतरा मोल लें।

सभ्य समाज का काम तो तटस्थ रहकर चल सकता है लेकिन दलित इस तरह के अत्याचारों को कब सहन करते रहे। क्या उनकी औरतों की इज्जत समाज के अन्य वर्णो को स्त्रियों की इज्जत से कमतर होती है जो वे सब कुछ चुपचाप होता देखते रहे। सहन की भी आखिर कोई हद तो होती ही है। उसके बाद तो जान हथेली पर रखकर मैदान में आना होता ही है। यही वह मनोवृत्ति है, जो दलितों को चैन से बैठने नहीं देती। वे सोचते हैं कि जब वे किसी से छोटे या तुच्छ नहीं है तो समाज में उन्हें बराबरी का हक क्यों नहीं मिलना चाहिये। भारत का संविधान जब सबको बराबरी के अधिकार देता है कोई भेदभाव नहीं करता तो उन्हें दूसरों की तरह रहने से क्यों रोका जाता है! क्यों उन्हें बारबार यह अहसास कराया जाता है कि वे पहले की तरह अब भी निम्न जातीय या निम्नवर्णीय है?

लोकतन्त्र में सरकार बहुमत की उपेक्षा प्रायः कभी नहीं कर जाती। इसलिये बहुसंख्यक वर्ग के अच्छे बुरे हितों को सुरक्षित बनाये रखने के लिये वह हर समय कटिबद्ध रहती है। दलित संख्या बल में तो कमजोर है ही आर्थिक सामाजिक तौर पर भी कोई खास हैसियत नहीं रखते, इसलिये उत्पीड़न का शिकार होते रहते हैं। इस स्थिति को डॉ. अम्बेडकर ने पहले ही भाँप लिया था और दलितों को यह सलाह दी थी कि वो अपने आपको शिक्षित, संगठित व सब बनायें बिना; ताकत हासिल किये बिना अपने आत्मगौरव की रक्षा नहीं कर सकते वे अन्याय, अत्याचार के शिकार इसीलिये होते हैं क्योंकि वे कमजोर हैं और यह अपेक्षा करते हैं कि शासन, प्रशासन उनकी रक्षा करता रहे।

दरअसल दलितों का कोई अखिल भारतीय संगठन नहीं है, न ही कोई सर्वमान्य नेता है। इसलिये जहाँ-जहाँ दलित उत्पीड़न के शिकार होते है, उन्हें उसके विरोध में स्वयं ही अपने कदम उठाने होते हैं। उनके वोटे से लाभान्वित होने वाली बहुजन समाज पार्टी या राजनेता इस तरह की घटना को इतना महत्त्वपूर्ण मानते मानते ही

नहीं कि इसके विरोध में घटना, प्रदर्शन तो क्या एक करारा सा स्टेटमेन्ट ही दे दें। वैसे भी उनके प्रभाव क्षेत्र सीमित है और उन्हें विस्तृत करने की उनमें कोई विशेष इच्छा दिखाई नहीं देती। समाज के वंचित वर्गों के अधिकारों की रक्षा के लिये कुछ आयोग भी बने हुए हैं। लेकिन उनके प्रति कोई प्रभावी कार्रवाई करने के अधिकार नहीं है इसलिये वे भी सरकारो से घटनाओं की रिपोर्ट और उन पर की गई कार्यवाई का ब्यौरा लेकर अपना कर्तव्य पूरा हुआ मानते हैं।

(लेखक वरिष्ठ चिंतक हैं। संपर्क : 08058725639)

बस्स, बहुत हो चुका, अब और नहीं

–सुदेश तनवर

भगाणा की घटना को हिंदू धर्म की सामाजिक-सांस्कृतिक-धार्मिक-आर्थिक कुसंगतियों का कोढ कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। ऐसी घटनाओं की जितनी भी निंदा की जाए कम है। वैसे तो दलित और हिंदू धर्म के कमजोर तबकों की महिलाओं के साथ इस तरह की घटनाएं नई नहीं हैं। इनकी एक लंबी फेहरिस्त है लेकिन पिछले दो दशकों में इनमें लगातार इजाफा देखने को मिला है जो केवल घोर निंदनीय ही नहीं बल्कि आत्ममंथन, चिंतन और चिंता का विषय है।

सवाल उठता है कि यह चिंता किसकी हो और कौन करे। हिंदुओं का वह वर्ग जो गाहे-बगाहे इसके लिए जिम्मेदार होता है वही चिंता करे तो यह अजीब लगता है। वह चिंता क्यूं करें। अगर वाकई वह चिंता करता तो इस समस्या के वाजिब समाधान की ओर भी सोचता लेकिन चिंता करने का काम उसका नहीं। वह बड़े-बड़े लोगों, वर्गों और अपने धर्म से इतर समूह की चिंता करता है। वह इतना चालाक है कि कई बार तो वह चिंता करने की रस्म अदायगी करता है और हमें लगता है कि वह इस तरह की घटनाओं के प्रति वाकई चिंतित है। लेकिन वह होता नहीं है। और जब चिंता ही उसके हिस्से नहीं आती तो वह इस तरह की घटनाओं के समाधान पर चिंतन क्यों करे। उसे क्या जरुरत पड़ी है।

अभी लगभग डेढ साल पहले दिल्ली में कमोबेश एक ऐसी ही घटना हुई थी जिसकी चिंता और चिंतन से सारा जहां थर्रा उठा था। क्या शब्द और क्या शब्दों के अर्थ। क्या प्रिंट और क्या छापखाने। क्या आंखें, क्या कैमरा। क्या सडकें, क्या गलियां, क्या स्कूल-कॉलेज, क्या संसद, क्या न्यायतंत्र और क्या तमाम सरकारें। एक वर्ग ने तो सारा आकाश सर पे उठा लिया था। सबके सब गहरी चिंता में डूबे थे और समस्या के समाधान के चिंतन में जुटे थे। यह दिखावा था या कोई ऊपरी हवा थी इसका पता तब चलता है जब ऐसी घटनाएं उनके साथ नहीं किसी ऐरे-गैरे के साथ होती हैं। और पता चल रहा है लगभग एक पखवाड़े से लोग न्याय के लिए चीख रहे

हैं, चिल्ला रहे हैं, धरना-प्रदर्शन कर रहे हैं और सबकुछ शांत है, जैसे कुछ हुआ ही नहीं। बाजार की तर्ज पर थिरकने वाला डुमरू कहां गायब हो गया। वे अन्ना-पन्ना कहां सो गए, पता ही नहीं चला।

उनकी नजरों में सच में हुआ ही क्या। यह तो उनके लिए रोजमर्रा की घटनाएं। यह उनकी दिनचर्या का हिस्सा है। इसमें चिंता और चिंतन की कौन-सी बात है, भई। कौन-सी उनकी महिलाओं और बहू-बेटियों के साथ ऐसा हुआ है जो वे चिंता करे। सच कहूं दोस्त, पीड़ितों के प्रति यह फाड़ उन्हीं ने ही की है, हमने नहीं। हम तो सदियों से अन्याय-अत्याचार सहकर भी उनकी बहू-बेटियों को अपनी ही मानते रहे हैं। और यह कोई मेरी कमजोरी नहीं है बल्कि मेरे पुरखों के खून का हिस्सा है। सवाल यह है कि मेरी बहू-बेटियां उनकी क्यों नहीं है उनके लिए वे गांव-घर का सम्मान क्यों नहीं बनती बल्कि उनके लिए वे क्यों सामान में तब्दील कर दी जाती हैं। यह वाकई चिंता और चिंतन का विषय है।

यह उन लोगों और तबकों के लिए चिंता और चिंतन का विषय है जो उनके जैसा नहीं उनसे अलग सोचते हैं। जो वाकई सबकी बहू-बेटियों को अपनी बहू-बेटी मानते हैं। उनकी संख्या भले ही कम हो सकती है, वे रेलें नहीं रोक सकते हैं, सड़कें बंद नहीं कर सकते हैं, वे हल्ला नहीं बोल सकते हैं, वे संसद और न्यायतंत्र पर उंगली नहीं उठा सकते हैं वे हुडदंगी नहीं हो सकते हैं लेकिन वे पांचों उंगलियां एक मुटठी बन सकते हैं और वही कर भी रहे हैं। इसके सिवाय उनके पास कोई विकल्प है भी नहीं और जो है भी वह उनकी पहुंच और सोच से बाहर है। वह विकल्प है अपनी अस्मिता और अपने हक की लड़ाई जो उन्हें आज तक नहीं मिला है। जिन्होंने अपनी अस्मिता और अपने हक के लिए जिद्दोजहद की है, जो लड़े हैं, टकराए हैं उन्हें वाजिब तो नहीं लेकिन कुछ ही सही पर हक मिला है और पहचान भी।

भगाणा की निंदनीय घटना जागकर सोए हुए दलित-बहुजनों के लिए शर्म की बात है। आज भी हमारे लोग केवल हरी-हरी पत्तियों को चुनने, सहलाने और पाने की होड़ में ही लगे रहकर अपनी सारी उर्जा और शक्ति गंवा रहे हैं। इससे आगे वे सोचते ही नहीं हैं। बस ऊपरी तौर पर केवल और केवल वे सरकार की छोटी-मोटी नौकरियां पाने की जददोजहद में सबकुछ भूल गए हैं। कई बार तो लगता है कि क्या ये वाकई हमारे लोग हैं या कोई डरे हुए बहरुपिए। यह सचमुच दुखद ही नहीं बेहद शर्मनाक है। इसमें भी सत्ता, मीडिया और न्यायतंत्र ने मिलकर दलित-बहुजनों के लिए एक बेमेल खिचड़ी बना डाली है जो न फैंकी जाती है न खाई जाती है। यह हैरत की बात है कि जिन समूहों ने मंडल का कमंडल बना दिया था आज वे भी उसमें हिस्सेदारी मांग रहे हैं और उनकी मांगों पर प्रायोजित कार्यक्रम हो रहे हैं। जब उनसे बहुजन एकता की बात की जाती है वे चुपके से सवर्ण हो जाते हैं और फिर उनके जातीय आतंकी गतिविधियों का सिलसिला न रुकने का और न ही टूटने का नाम ले रहा है।

यह तब और भी ज्यादा टीस देता है जब कुकर्म करने वाले वर्ग ही सरकार से पिछड़े होने का प्रमाण-पत्र मांगने लग जाते हैं।

भगाणा की घटना ऐसी ही सामाजिक-सांस्कृतिक और धार्मिक आतंकी घटना का हिस्सा है जो दलितों-पिछडों पर सदियों से होता आया है। इसका अंत होना चाहिए। इसका अंत राजनैतिक, सामाजिक-सांस्कृतिक और धार्मिक इच्छाशक्ति में निहित है। इसकी कुछ-कुछ झलक हमें अमेरिकी डायवर्सिटी सिद्धांत में दिखती है जिसे भारतीय संदर्भ में बहुजन का 'भागीदारी सिद्धांत' कहा जा सकता है जिसमें मोटे तौर पर मनुष्य के जीवन-यापन के मूल घटकों जैसे सरकारी-गैर-सरकारी नौकरियां, उद्योग और व्यवसाय, फिल्म और मीडिया, शिक्षा, ठेके आदि में सभी वर्गों की हिस्सेदारी अथवा प्रतिनिधित्व सुनिश्चित किया जाए। यहां तक कि जिस प्रकार जंगल और पहाड जैसे प्राकृतिक संसाधनों पर सरकार अपनी दावेदारी पेश कर रही है, उसी तरह देश की सारी जमीनों पर सरकार का नियंत्रण होना जरूरी है। अन्यथा वह दिन दूर नहीं जब दलितों-पिछडों को खेतों के आसपास भी फटकना मुश्किल होगा। इस तरह के अन्याय-अत्याचार की घटना को इसी की पूर्व-पीठिका में देखा जाना चाहिए।

बहुजन डायवर्सिटी कथित तौर पर केवल महिला सशिक्तकरण तक का उबाउ और अव्यवहारिक मामला नहीं है। यहां व्यक्ति, परिवार, समाज और विभिन्न सामाजिक-धार्मिक वर्ग एक-दूसरे से गुंथे हुए है, छिटके हुए नहीं। यहां एक जिम्मेदारी है कथित स्वतंत्रता की आड़ में एक वर्ग की उच्छृंखलता नहीं। समाज में उपरी तौर परोसी गई महिला स्वतंत्रता और सशक्तिकरण महिलाओं के एक वर्ग की बेलगाम उच्छृखंलता में तब्दील होते नजर जा आ रहे हैं जिनका खामियाजा समाज की कमजोर, दलित-पिछडी महिलाओं को भुगतना पड़ रहा है। भागणा और ऐसी ही अन्यानेक घटनाएं इससे अलग नहीं हैं। उपरी तौर पर देखने पर यह केवल बलात्कार की एक साधारण-सी घटना दिखती है लेकिन इसकी गहराई में अनेक तरह की पीड़ाओं, मासूमियतों-मजबूरियों और लगातार गहरे होते अन्याय की एक लंबी काली लकीर दिखाई देती है जिसको पूरी तरह साफ किए बिना पीड़ितों को ठोस न्याय मिलना मुश्किल है। अब हमें इस ठोस न्याय के लिए ही काम करना है, एक जुट होना है। वरिष्ठ दलित साहित्यकार ओमप्रकश वाल्मीकि जी के शब्दों में बस्स, बहुत हो चुका। अब और नहीं।

(लेखक विशिष्ट दलित साहित्यकार है। संपर्क : 986862563)

भगाणा की उपेक्षित निर्भयाएँ

-डॉ. कमलेश कुमारी

भगाणा गाँव में 23 मार्च 2014 को चार दलित लड़कियों के साथ जाट समुदाय के दंबग लड़कों द्वारा किए गए सामूहिक बलात्कार की आवाज को न तो हरियाणा प्रशासन ने सुना और न ही देश की राजधानी दिल्ली के तानाशाहों ने तव्वजों दी। गांव के सरपंच राकेश और उसके अंकल सहित दबंग जाट लड़कों ने इन मासूम कलियों को अपनी हवस का शिकार बनाकर गाँव से 170 किलोमीटर दूर पंजाब के भटिंडा रेलवे स्टेशन पर मरने के लिए छोड़ दिया। जहां हरियाणा सरकार सहित पूरे देश में शहिदे आज़म भगत सिंह का जन्मदिवस मनाया जा रहा था वहीं इस प्रताड़ित परिवार भगाणा गांव से निष्कासित कर दिया गया था।

इस घटना के प्रति प्रशासन और समाज के बुद्धिजीवियों और समाज सुधारकों का ऐसा उपेक्षा पूर्ण व्यवहार हमें सोचने पर मजबूर करता कि 'कहीं इसमें जातीय पूर्वाग्रह के तत्व तो काम नहीं कर रहे हैं?' अगर इस अमानवीय घटनाक्रम के पूरे प्रकरण पर गौर करें, तो हमें इसमें हिंदूवादी वर्ण-व्यवस्था की मानसिकता साफ देखने को मिलती है। भारतीय समाज में इस तरह की घटनाओं का बढ़ता हुआ ग्राफ और उसके प्रति प्रशासन की संवेदनहीनता विश्व के समक्ष हमें अपराधी की श्रेणी में ला खड़ा करती है।

चूंकि भारत एक लोकतांत्रिक देश है। किंतु विभिन्न समुदायों और धर्मों में विभक्त होने के कारण यह लोकतंत्र और देश की प्रगति में सबसे बड़ा अवरोधक है। 'देश का संविधान सबके लिए बराबर है। ' यह बात सुनने में जितनी अच्छी लगती है व्यवहार में यह उतनी विपरीत हो गई है। आजादी के 67 वर्षों के बाद भी यहाँ का बहुसंख्यक वर्ग गरीबी और भेदभाव की व्यवस्था से जूझ रहा है। देश के हर गाँव में आज भी सदियों पुरानी सामंतवादी व्यवस्था गांव के विजातीय लोगों पर बेखौफ अत्याचार कर रही है। समाज का निम्न तबका धीरे-धीरे जागरूक हो रहा है। वह बाबा साहेब के मूल मंत्रों को आत्मसात कर, इस आतताई व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठा रहा है। मगर अफसोस उसकी इस आवाज को दबाने के लिए समाज का गैर-दलित समुदाय दलित समुदाय की बहन-बेटियों का आए दिन अपहरण, बलात्कार और हत्या जैसे संगीन अपराधों को अंजाम दे रहा है। उसके इस कुकृत्य में प्रशासन भी सहयोग दे रहा है।

दलित समुदाय इस बात को पूरी तरह से समझता है कि इस देश में वह केवल एक वोटर है जो केवल सरकार बनाने में इस्तेमाल किया जाता है। इसके अलावा वह हिंदू समाज में आज भी मनुवादी कानून व्यवस्था में जीवन जीने को विवष है। जब अंग्रेज भारत को छोड़कर जा रहे थे, तो उन्होंने प्रत्येक समुदायों और धर्मों के प्रतिनिधियों को गोलमेज सम्मेलन के लिए आमंत्रित किया। बाबा साहेब दलितों के प्रतिनिधि बनकर गए, तो गांधी हिंदुओं के। जब अलग निर्वाचन क्षेत्र की बात आई तो बाबा साहेब ने स्वयं को हिंदुओं से अलग निर्वाचन क्षेत्र की मांग की, जिसको तात्कालिन सरकार ने स्वीकृति दे दी। किंतु गांधी दलितों को हिंदू धर्म का अंग बताते हुए अलग निर्वाचन क्षेत्र की मांग के विरोध में आमरण अनशन पर बैठ गए।

पूना पैक्ट के तहत इस मांग को खारिज कर दिया गया। सदियों से गुलामी का जीवन जीने वाले इस बहुसंख्यक समुदाय के लिए एक स्वर्णिम युग की शुरुआत से पहले ही उसके लिए अंधकार युग प्रारंभ हो गया। गांधी ने आजाद भारत में हमें अप्रत्यक्ष रूप से हिंदुओं का गुलाम बना दिया। आज दलितों पर जो प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से हमले किए जा रहे हैं, इसकी नींव पूना पैक्ट समझोते के दौरान रख दी गई थी। वैश्वीकरण के दौर में दलितों ने हर क्षेत्र में प्रगति की है। उसने अपनी बौद्धिकता का परचम हर क्षेत्र में फहराया है। राष्ट्रीय संसाधनों में उसको उसकी जनसंख्या के हिसाब से कोई भागेदारी नहीं दी है। राष्ट्र की अकूत संपत्ति पर आज भी सवर्ण समुदाय काबिज है जबकि दलितों को कुछ सरकारी नौकरियों पर ही सब्र करना पड़ रहा है। गांव में आज भी पढ़ा-लिखा दलित समुदाय सजातीय समुदायों को स्वीकार्य नहीं है। मजबूरन वह परिवार औने-पौने दामों में अपनी संपत्ति को बेचकर निर्वासित होने को अभिशप्त है। आज भी गांवों में दलितों की बहू-बेटियाँ सुरक्षित नहीं है।

भगाण गांव की बलात्कार पीड़ित किशोरियाँ भी इसी सामंतवादी मानसिकता की शिकार हुई है। यहां भेदभाव की यह तस्वीर बिलकुल साफ दिखाई देती है कि एक तरफ 16 दिसंबर 2012 की बलात्कार पीड़ित निर्भया के लिए संपूर्ण राष्ट्र तिलमिला उठा था। इस बलात्कार कांड के विरोध में पूरा मीडिया, प्रशासन, स्कूल-कॉलेज के छात्र, महिला आयोग, सभी सरकारी और गैर-सरकारी समाज सुधारक संस्थाओं ने व्यापक रूप से विरोध किया, जिसकी गूंज रायसीना से लेकर पूरे भारत और विदेशों तक पहुंच गई। जिसके परिणास्वरूप तत्कालिन कानून व्यवस्था में परिर्वतन किया गया और नई दिल्ली के साकेत में एक फास्ट ट्रैक कोर्ट का गठन किया गया, जहां केवल बलात्कार पीड़िता को जल्द से जल्द न्याय दिलाने और दोषियों को जल्द से जल्द सजा देने का प्रवाधान किया गया है।

इस दौरान अनेक स्वयं सेवी संस्थाओं ने अपने विचार रखे और इन विचारों में जो एक सबसे महत्वपूर्ण था विचार था, वह था, ''महिलाओं की कोई जाति नहीं होती।'' मगर भगाणा कांड की निर्भयाओं के प्रति समाज, मीडिया और प्रशासन के भेदभाव पूर्ण और उपेक्षित रवैये ने इस विचार की कलई खोल कर रख दी है। सवर्ण समुदाय से संबंध रखने वाली निर्भया के लिए जहां समाज और प्रशासन ने संवेदनशीलता का परिचय देते हुए पीड़िता के परिवार को अनेक सुविधाएं और आर्थिक सहायता दी, वहीं गांव से निष्कासित भगाणा कांड की पीड़िताओं के परिवार और पीड़ित किशोरियों के लिए कोई आश्रय और आर्थिक मदद तो दूर की बात है उनके बलात्कारी आज भी गांव में खुले घूम रहे हैं। ये निर्भयाएं इंसाफ के लिए दिल्ली की कड़ी धूप और उमस में जंतर-मंतर पर संसद और रायसीना हील की तरफ ताक रहीं हैं। लगता है रायसीना हील का सीना पत्थर हो चुका है और मीडिया तंत्र चुनावी दंगल में कूद गया है, ऐसे में पेशेवर मीडिया का मानवीय सरोकारों से कोई लेना देना नहीं और यहां तो मामला ही दूसरा है, दलितों को जब मानव ही नहीं माना जाता तो उनके सरोकारों को भला कैसे मानवीय सरोकार माना जाए!

हरियाणा राज्य में विभिन्न जातियों और धर्मों के लोग रहते हैं। यह संपूर्ण राज्य जाट लैंड के नाम से जाना जाता है। यहां का प्रत्येक समुदाय खाप पंचायत के नियमों का पालन करता है। लगभग 52 गांवों की खाप पंचायत स्वयं को भारत के सविधान से ऊपर का दर्जा देती है। ये खाप पंचायतें स्वयं के इतिहास को छह सौ वर्ष पुराना मानती हैं और वर्षों से चली आ रही परंपराओं को सख्ती से पालन करने का फरमान जारी करती हैं। यही सामंतवादी और फाँसीवादी विचारधारा देश के अनेक बड़े राज्यों जैसे उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, बिहार, राजस्थान और गुजरात आदि में यथावत जारी है।

जनसंख्या की आधी आबादी सदियों से उपेक्षित और भेदभावपूर्ण जीवन जी रही है। जैसा कि भारत एक पितृसत्तात्मक समाज है। यहां महिलाएं परिवार से लेकर समाज तक भेदभाव का शिकार होती आ रही है। दलितों के समान ही महिलाएं शोषण और उपेक्षा सहती आ रही हैं। इधर दलित विमर्श, आदिवासी और महिला विमर्श पर पढे-लिखे और बुद्धिजीवी वर्ग में काफी कुछ लिखा और पढ़ा जा रहा है। बाबा साहेब ने संविधान में महिलाओं को विशेषाधिकार दिए हैं। उसी के तहत महिलाओं को नौकरियों, विधानसभा और संसद में 33 प्रतिशत आरक्षण देने की बात उठ रही है। लेकिन जब इस आरक्षण में भी दलित महिलाओं को अलग से आरक्षण की बात उठी तो इस बात का विरोध पुरुषों के साथ सवर्ण महिलाओं ने भी किया, जसाकि सवर्ण महिलाएं स्वयं साामंतवाद की पोशक है। और वे भी दलित महिलाओं अपने समकक्ष खड़ा करना नहीं चाहती चूंकि दलित महिलाएं तो उनके लिए कामगार मजदूर है भला उसे इस तरह के विषेशाधिकार क्यों दिएं जाएं। चूंकि जहां महिलाएं दोयम दर्जे का भेदभाव सहन करती हैं वहीं दलित और आदिवासी महिलाएं तीसरे दर्जे

तक भेदभाव का शिकार होती हैं। उनके साथ हो रहे अन्याय के पक्ष में केवल उसके समुदाय विदेश की महिलाएं ही आगे आती हैं, इसका ताजा-ताजा उदाहरण से हम भगाणा कांड की पीड़ित किशोरियों और निर्भया कांड की तुलना करके कर सकते हैं।

मेरा यहां इन सब बातों और घटनाओं के बारे चर्चा करने का एकमात्र उद्‌देश्य यही है कि जब तक सबको संविधान के अनुसार उनकी संख्या के हिसाब से समान रूप से प्रगति और विकास के अवसर उपलब्ध नहीं कराएं जाएंगे तब तक यह शोषक और शोषित की कुप्रथा जारी रहेगी। और यह सब डाईवर्सिटी का नियम लागू करने से सम्भव हो सकेगा। जब सबको समान अनुपात में राष्ट्र की संपत्ति में समान वितरण किया जाएगा तो वह दिन दूर नहीं जब भारत विकास में अमेरिका को भी पीछे छोड़ देगा। जैसा कि अमेरिका ने अपने यहां डाईवर्सिटी को सन् साठ के दशक लागू कर किया था। यही वजह है कि आज अमेरिका विश्व में सामाजिक, आर्थिक, व्यापारिक, प्रोद्योगिकी इत्यादि हर क्षेत्रों में सबसे आगे है।

(लेखिका दलित साहित्यकार हैं। संपर्क : 9013251417)

हरियाणा का दलित आंदोलन और वेदपाल तंवर

–प्रमोद रंजन

पिछले महीने हरियाणा की राजनीति में उफान लाने वाली दो घटनाएं हुईं. 5 अगस्त को प्रदेश के पूर्व उपमुख्यमंत्री चंद्रमोहन उर्फ चांद मोहम्मद की पत्नी रहीं अनुराधा बाली उर्फ फिजा की लाश मिली और इसी दिन राज्यमंत्री गोपाल कांडा के एयरलाइंस में काम करने वाली गीतिका शर्मा ने मंत्री पर प्रताडना का आरोप लगाते हुए खुदकुशी कर ली. जाट वर्चस्व वाले हरियाणा में इन दोनों मामलों में शक की सूई गैरजाट नेताओं चंद्रमोहन विश्नोई (विश्नोई) गोपाल कांडा (सोनार) की ओर रही. मीडिया को दौलत, सत्ता और सेक्स के संबंधों को खंगालने का खूब मौका मिला. यह उचित भी था, आखिर जो बिकेगा, वही तो दिखेगा!

लेकिन उत्तर भारत का मीडिया इतनी सीधी और सरल रेखा पर नहीं चलता.

इसी दौरान हरियाणा में एक और बडी हलचल चल रही थी, जिसके कारण सूबे के सत्ता संस्थानों में भारी खलबली थी. हिसार से महज 19 किलोमीटर दूर स्थित भगाणा गांव के दलितों ने जाटों के खिलाफ विद्रोह का आगाज कर दिया था. सामाजिक वहिष्कार का विरोध करते हुए वे हिसार स्थित उपायुक्त कार्यालय तथा दिल्ली के जंतर-मंतर पहुंच गये थे. (देखें, फारवर्ड प्रेस, अगस्त, 2012 की कवर स्टोरी 'हरियाणा में दलित दमन') और लगभग दो महीने से उन्होंने हरियाणा सरकार की नाक में दम कर रखा था. फिजा और गीतिका शर्मा की मौत के दिनों में भी उनका आंदोलन जारी था लेकिन मीडिया को इसकी सुध न थी। आंदोलनकारी परिवार हिसार उपायुक्त कार्यालय में अपने गाय, गोरूओं, घोड़ों के साथ जमे थे जबकि दिल्ली के जंतर-मंतर पर अर्धनग्न होकर प्रदर्शन कर रहे थे। 21 वीं सदी में जाति आधारित दमन की इस खबर के लिए बड़ा बाजार मौजूद था लेकिन खबरों के दुकानदारों को इसे बेचने में कोई रूचि नहीं थी।

अंततः हरियाणा के इस दलित आंदोलन का पटाक्षेप एक राजपूत वेदपाल तंवर की गिरफ्तारी से हुआ। यह पिछले एक महीने में हरियाणा की राजनीतिक दृष्टि से तीसरी बड़ी घटना थी. लेकिन इसे मीडिया की नजरों से तो ओझल रहना ही था, जब

दलितों के आंदोलन में ही मीडिया की कोई रूचि नहीं थी तो भला इस आंदोलन की हिमायत कर रहे व्यक्ति की उसके लिए क्या अहमियत हो सकती थी?

वेदपाल सिंह तंवर से मेरा परिचय मई, 2012 में उस समय हुआ था, जब मैं तत्कालीन सेना प्रमुख जनरल वीके सिंह के उम्र विवाद पर कवर स्टोरी (देखें, फारवर्ड प्रेस, जून, 2012 'सेना के भीतर युद्ध') पर काम कर रहा था. उस समय तंवर का फोन नंबर देते हुए हरियाणा के मेरे एक सीनियर पत्रकार साथी ने बताया था कि 'वीके सिंह के पक्ष में जो राजपूत रैलियां हो रही हैं, उसका कर्ताधर्ता यही हैं'। इस बीच सेना के कुछ बड़े अधिकारियों से मेरी बात हो चुकी थी और मैं इस निर्णय पर पहुंच चुका था कि वीके सिंह विवाद वास्तव में ब्राह्मण-राजपूत संघर्ष की ही एक कडी है, जिसमें एक ओर रक्षा मंत्रालय पर काबिज ब्राह्मण लॉबी है तो दूसरी ओर वीके सिंह व उनके कुछ विश्वस्त राजपूत, गैर ब्राह्मण व गैर खत्री-सिख सेना-सरदार। हाल के दिनों में सेना प्रमुख बनने के बाद सिख जनरल विक्रम सिंह द्वारा वीके सिंह के विश्वस्तों को उनके पदों से हटाने तथा उनके विरोधियों पर कृपा बरसाने से यह बात और साफ हो गयी है। दूसरी ओर वीके सिंह ने अन्ना के मंच से पूर्व सैनिकों का देश की कमान संभालने के लिए आह्वान करके अपनी राजनीतिक मंशा का भी संकेत कर दिया है।

बहरहाल, 'राजपूत संघर्ष समिति के संयोजक कुंवर वेदपाल तंवर' में मेरी क्या दिलचस्पी हो सकती थी? इसलिए फोन पर बातचीत में मैंने उनसे वीके सिंह के पक्ष में हिसार और भिवानी में आयोजित राजपूत रैलियों के फोटोग्राफ चाहे, जिनसे मेरी रिपोर्ट के उपरोक्त तथ्य स्थापित होते थे।

तंवर ने बताया कि 'फोटोग्राफ मेरे इमेल पर हैं'। मैंने तस्वीरें फारवर्ड कर देने की गुजारिश की तो उन्होंने जवाब में एक मोबाइल फोन का नंबर दे डाला। मैंने पूछा क्या इस नंबर पर फोन करके मुझे तस्वीर मांगनी है तो उन्होंने कहा कि नहीं यह मेरे इमेल का पासवर्ड है। मैं इंटरनेट नहीं चलाता, आप मेरे ईमेल से तस्वीरें निकाल लें। मैं हैरान रह गया। उन दिनों पूरे देश को वीके सिंह प्रकरण मथ रहा था और इंटरनेट की सोशल नेटवर्किंग साईटें जनरल द्वारा की गयी कथित तख्ता पलट की कोशिशों के कारण हंगामा बरपा हुआ था। और, वीके सिंह का यह करीबी आदमी, उनके पक्ष में रैलियां आयोजित करने वाला मुख्य शख्स इतनी मासूमियत से एक अपरिचित पत्रकार को अपने इमेल का पासवर्ड दे रहा है! बहरहाल, मेरी पत्रकारिकता बुद्धि ने पासवर्ड मिलते ही उनका इमेल एकाउंट खंगालने के लिए उकसाया।

उस कवर स्टोरी के छपने के तुरंत बाद तंवर का फोन आया। 'भाई साहब, आपकी पत्रिका देखकर ऐसा लगा कि आप दलितों की हिमायत करते हो। यहां हरियाणा में दलितों के साथ बड़ा जुल्म हो रहा है. पास के ही एक गांव (भगाणा) में दबंगों ने दलितों का बहिष्कार कर दिया है। मैं इन दिनों उनकी ही लडाई लड रहा हूं।

बडी कृपा होगी अगर आप यहां आकर खुद सारा हाल देखें'। उसके बाद कुछ ही दिन बाद भागाना के दलितों के बहिष्कार की एक छोटी खबर किसी हिंदी अखबार ने नेट संस्करण पर दिखी और मैंने अपनी टीम के साथ हरियाणा जाना तय किया. हमने तय किया कि हम तंवर से सबसे अंत में मिलेंगे पहले भगाणा के पीडितों से मिलेंगे उसके बाद मिर्चपुर जाएंगे। लेकिन हम एक बार फिर आश्चर्यचकित रह गये जब हमने पाया कि मिर्चपुर के दलित आज तक अपने गांव नहीं लौट सके हैं और तंवर ने पिछले दो सालों से लगभग 30 दलित परिवारों को स्थानीय जाटों व पुलिस-प्रशासन के तमाम विरोध के बावजूद अपने फार्म हाउस में पनाह दे रखी है।

किस्सा-कोताह यह कि, न सिर्फ भगाणा गांव के दलितों का आंदोलन बल्कि मिर्चपुर में जिंदा जला दिये गये बाप-बेटी को न्याय की लड़ाई भी यह तंवर ही पर्दे के पीछे से लड रहे थे। इस लडाई ने दलितों के बीच एक नया युवा नेतृत्व पैदा किया था, उनमें अपने अधिकारों के लिए जागरूकता लायी थी लेकिन आर्थिक संबल तंवर का ही थे।

अब मेरे सामने सवाल था कि यह तंवर वास्तव में है कौन? जाटों से ऐसी खुली लड़ाई लेने के पीछे इसकी कैसी राजनीतिक मंशा है? वेदपाल तंवर ने अपनी जिंदगी की शुरुआत एक ट्रैक्टर ड्राइवर के रूप में की, हरियाणा के गिट्टी खदानों में वह मजदूर यूनियन का नेता बना और बाद में खदानों का ठेका लेकर खूब पैसा बनाया लेकिन हरियाणा में जाटों का वर्चस्व उन्हें खलता रहा। वर्ष 2008 में हरियाणा का खरक गांव आंदोलन, जो दो राजपूत लडकों की रहस्यमयी मौत के बाद फूट पड़ा था, में तंवर ने बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया। एक दिन प्रदर्शन के दौरान पुलिस ने गोली चलाई जिसमें चार लोगों की मौत हो गयी। तंवर का कहना है कि तत्कालीन राज्य सरकार (तत्कालीन मुख्यमंत्री, भूपेंद्र सिंह हुड्डा) के इशारे पर उन पर मुकदमा हुआ और उन्हें जेल भेज दिया गया। लगभग 9 महीने वह जेल में रहे। इसी बीच तंवर का इकलौता बेटा एक सड़क दुर्घटना में मारा गया। तंवर का विश्वास है कि उनके बेटे की दुर्घटना में मौत नहीं हुई बल्कि जाटों ने उसकी हत्या की है. इस दुर्घटना में उनके साले के बेटे की भी मौत हो गयी थी।

जेल से छूटने के बाद, बेटे की हत्या से गमजदा तंवर को हरियाणा से तडीपार घोषित कर दिया गया। एक साल तक वे हरियाणा से बाहर अपने रिश्तेदारों के यहां भटकते रहे। जब वे वर्ष 2010 में हरियाणा लौटे तो मिर्चपुर कांड हो चुका था। तंवर ने मिर्चपुर के दलितों का संबल लेकर अपने पुत्र की हत्या का बदला लेने की ठानी। उसके बाद से हरियाणा में जाटों के विरुद्ध उनका संघर्ष शुरू हुआ, जिसकी परिणति में उनका पहले से ही बरबाद हो चुका व्यापार और भी तबाह हो गया। बचे-खुचे पैसे (जो अब भी काफी बचे हैं) के सहारे वे दलितों की लडाई लड रहे हैं और हरियाणा में एक गैर जाटों का राजनीतिक मोर्चा बनाने की कोशिश में हैं।

दिल्ली के जंतर-मंतर पर अन्ना ने 29 जुलाई से अनशन शुरू किया था. यह अनशन ठीक उस जगह के बगल में हो रहा था, जहां भगाणा के वहिष्कृत दलित लगभग एक पखवाड़े से धरना पर बैठे थे। अनशन के पहले ही दिन तंवर अन्ना के आंदोलन को अपना समर्थन देने हिसार से चलकर आए थे। उस दिन शाम में उनका फोन आया—'भाई साहब, आप मीडिया वालों को अन्ना टीम का समर्थन नहीं करना चाहिए। मैं बहुत दुःखी होकर यहां से लौट रहा हूं। अन्ना के मंच पर (जाट) 'खाप पंचायतें' बैठी हैं. ये सिर्फ बडे लोगों की बात करने वाले लोग हैं। यह अरविंद केजरीवाल खुद हिसार का है, लेकिन दलितों के उपर जुल्म पर ये लोग एक शब्द भी बोलने को तैयार नहीं हैं'। 'खाप पंचायत' से तंवर का आशय हरियाणा के खाप पंचायतों के प्रतिनिधियों के अन्ना के मंच पर मौजूद होने से था। दरअसल, हरियाणा की कई कुख्यात खाप पंचायतों ने बकायदा बयान जारी कर अन्ना के 'भ्रष्टाचार विरोधी' आंदोलन को अपना समर्थन दिया था।

यही तंवर, जिनकी शह पर भगाणा के दलित अपने स्वाभिमान की लड़ाई लड़ रहे हैं और जिन्होंने मिर्चपुर के दलितों के लिए न्याय की अनवरत लड़ाई लडी है, एक बार फिर पिछले 16 अगस्त से जेल में हैं। आरोप है, कि उन्होंने अपने फार्म पर रह रहे दलितों में से एक को सांप के डस लेने पर उसका अंग्रेजी इलाज नहीं करवाया और उसे देशी दवाएं दीं, जिससे उसकी मौत हो गयी! जाहिर है, फिजा और गीतिका शर्मा के हत्यारों को पकड़ने में नाकाम रही हरियाणा पुलिस की यह 'कामयाबी' हास्यास्पद ही है। वेदपाल तंवर की गिरफ्तारी के बाद भगाणा गांव के दलितों का आंदोलन भले ही मृतप्राय हो गया है लेकिन इस प्रकरण ने स्पष्ट रूप से यह संकेत कर दिया है कि हरियाणा की दलित समस्या सिर्फ सामाजिक नहीं है, वहां दलित-दमन में प्रशासन और सरकार प्रत्यक्ष सहयोगी की भूमिका में हैं।

(फारवर्ड प्रेस के सितंबर, 2012 अंक से साभार)

(लेखक फारवर्ड प्रेस के कार्यकारी सम्पादक हैं। सम्पर्क : 9811884495)

गांव की पूरी संरचना बदलनी होगी

–अरुण कुमार त्रिपाठी

राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में स्थित कनावनी गांव के बगल में रहते हुए हत्या, तोड़फोड़ और दमन की घटना की दहशत कोई भी महसूस कर सकता है। लेकिन उस पर चर्चा और स्थितियों में सुधार की चिंता आमतौर पर उन लोगों में नहीं देखी गई जो राजनीति और समाज की चिंता में दिनरात डूबे रहते हैं। यह जानना अपने में रोचक है, कि कनावनी गांव से सौ दो सौ मीटर की दूरी पर ही देश के कई नामी बुद्धिजीवी और पत्रकार रहते हैं। लेकिन उनकी खबरों, टिप्पणियों में न तो इस घटना पर विशेष चिंता दिखाई दी और न ही किसी तरफ से हस्तक्षेप की पहल। जबकि उनसे कहीं ज्यादा जिम्मेदार भूमिका स्कूल की उस प्रिंसिपल की रही जिसने गैर दलितों के हमले से दलित छात्रों को बचा लिया। बल्कि चुनाव आचार संहिता की हिफाजत करने और मोदी की सेवा करने में लगे मीडिया को यह सवाल ज्यादा बड़ा लगा कि कनावनी में पंचायत कराने आए अनुसूचित जाति और जनजाति आयोग के अध्यक्ष पीएल पूनिया अपनी गाड़ी पर लालबत्ती लगाकर क्यों आए थे। पुलिस संरक्षण में खामोशी से सांस ले रहा कनावनी गांव ऊपर से तो शांत दिख रहा है, लेकिन इस आशंका से कोई इनकार नहीं कर सकता कि वहां कभी भी हिंसा का लावा फूट सकता है।

दलित उत्पीड़न की घटना चाहे राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र की हो, हरियाणा की हो या फिर उत्तर प्रदेश की, समाज की प्रतिक्रियाएं लगभग एक सी होती हैं। प्रशासन और कानून अपना काम करता है। और उसकी गति पर सिफारिश, दबाव, रिश्वत और दोनों पक्षों की सक्रियता का असर रहता है, जबकि समाज आमतौर पर भुला देने समझौता कराने और सामान्य स्थिति बहाल करने की कोशिश में रहता है। इस बीच दमन करने वाले और दमन झेलने वाले पक्ष अपनी थोड़ी- थोड़ी जीत पर संतोष कर लेते हैं। पूर्वी उत्तर प्रदेश में दलित उत्पीड़न की एक घटना का अंतिम अध्याय कचेहरी में समझौते के साथ लिखा गया। कचेहरी में सवर्ण समाज के व्यक्ति अनूसूचित जाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम के तहत जेल जाने की तैयारी में थे और दलित

समाज उनके समर्थन में समझौता करने पहुंचा हुआ था। मतलब समझौता पहले हो चुका था लेकिन कानून की अनिवार्यता थी कि अभियुक्त को अदालत में पेश होने पर जेल जाना ही होगा। हालांकि यह मामला दो साल पुराना था। और इस दौरान कभी गिरफ्तार करने पुलिस नहीं पहुंची। एक तो स्टे का असर था। और स्टे खारिज हो जाने के बाद भी पुलिस ने मामले पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया क्योंकि दोनों पक्षों में अनौपचारिक समझौता हो चुका था। सवर्ण समाज के लोग इस बात से संतुष्ट थे कि पीट दिया और बाद में समझौता भी कर लिया। जबकि दलित समाज बिना कुछ कहे यह व्यक्त कर रहा था कि चलो वह जमाना गया जब प्रधान जी हमें पीटकर पाक साफ बच जाते थे।

दलित परिवारों पर होने वाले अत्याचार की घटनाएं अनगिनत हैं और वे अक्सर अदालत से बिना सजा दिलाए किसी समझौते में अपना उपसंहार कर लेती हैं। लेकिन घटना होने से पहले समाज किसी समझौते की स्थिति में नहीं है। वह या तो सह रहा है या उबल रहा है। गांव का दलित समाज राजनीतिक और आर्थिक बदलाव से अपने मानवाधिकार और नागरिक स्वाभिमान पाने को आतुर है तो दूसरी तरफ पिछड़ा वर्ग और सवर्ण समाज तरह तरह की गोलबंदी से या तो उसे रोकने या अपनी सामंती सोच और दबंगईको अपने अस्तित्व से जोड़कर उसकी हिफाजत करने में लगा है। वयस्क मताधिकार, राजनीतिक चेतना के प्रसार, बहुजन राजनीतिक उभार, दलितों के शिक्षित व समर्थ बनने और कानूनी स्थितियों के सख्त होने के साथ दलितों पर सामान्य सवर्णअत्याचार करने से डरने लगा है। लेकिन धन और जाति की राजनीतिक ताकत से संपन्न दबंग व्यक्ति अभी भी उससे बाज नहीं आ रहा है। इसकी वजह साफ है कि धर्म समर्थित जाति और राजनीतिक समर्थित आर्थिक स्थितियां दोनों मिलकर गांव में उस अभिजात्य वर्ग को बनाए रखना चाहती हैं जो पारंपरिक समाज और आधुनिक समाज के भ्रष्टाचार का मजबूत गठजोड़ बना सकें। इसलिए यह महज संयोग नहीं है कि दलितों पर अत्याचार की घटनाओं के पीछे या तो जमीन पर अवैध कब्जा करने का विवाद होता है या फिर सरकारी योजनाओ से मिलने वाली रिश्वत की लूट में हिस्सा बंटाने का झगड़ा। स्वाभिमान और सम्मान का मामला आनुसांगिक होता जा रहा है। आजकल स्वाभिमान और सम्मान पर चोट इसलिए की जाती है ताकि जाति उसके माध्यम से बनने वाली राजनीति सत्ता कायम रहे।

भ्रष्टाचार चाहे जमीन के आवंटन का हो, चाहे सरकारी योजनाओं के क्रियान्वयन का हो या फिर राजनीतिक सत्ता के वितरण और विकेंद्रीकरण का हो, इनके घोटाले और गड़बड़ियों दलितों पर अत्याचार के कारण बने हुए हैं। इन्हें रोकने का तरीका सिर्फ समतावादी चेतना से ही नहीं संभव है। समतावादी चेतना कभी सामंती भ्रष्टाचार की कीचड़ में अपने को गंदला करती रहती है तो कभी आधुनिक राष्ट्र-राज्य की

कल्याणकारी योजनाओं की मलाई खाकर बीमार हो जाती है। समता और भाईचारे की चेतना को ईमानदारी और प्रतिबद्धता की नदी में रोज स्नान कराने की जरूरत है। नदी का यह स्नान किसी पाप पुण्य के ब्राह्मणवादी विधान के तहत नहीं बल्कि शुद्ध मानवतावादी नजरिए से होना चाहिए।

लेकिन इसी के साथ जाति की सामुदायिक चेतना में जकड़े गांवों को व्यक्तिगत सम्मान और मानवाधिकार की आधुनिक चेतना से लैस करना होगा। इतना ही नहीं गांवों के आर्थिक ढांचे का पुनर्निर्माण करना होगा और उसके भीतर उन तमाम दलित और पिछड़े कारीगरों को सम्मानजनक स्थान दिलाना होगा जिनके उत्पादन के साधन दबंग जातियों की दया पर निर्भर करते हैं। भूमि सुधार नए सिरे से करने होंगे, तालाबों और चारागाहों को नए सिरे से व्यवस्थित करना होगा। ग्राम सभा की जमीनों के पट्टों को ईमानदारी से वितरित करना होगा और सामुदायिक संसाधनों के सार्वजनिक उपयोग के बारे में नई लोकतांत्रिक चेतना बनानी होगी। यह मामला महज सामुदायिक चेतना के आधार पर हल नहीं होगा। इसके लिए व्यक्तिगत अधिकारों को भी अहमियत देनी होगी। भारतीय समाज में आज भी व्यक्ति अपनी राजनीतिक और आर्थिक हैसियत सार्वजनिक संसाधनों के दुरुपयोग और अनाधिकृत उपयोग के माध्यम से जताता है। यह स्थिति महज गांवों में ही नहीं महानगरों तक में व्याप्त है। बारात अगर निकलेगी तो सड़क जाम करेगी, जगराता होगा तो बीच सड़क पर रास्ता रोक कर होगा और धार्मिक स्थल सरकारी जमीन पर अनाधिकृत कब्जा करके ही बनेंगे। इस मानसिकता से पूरा भारतीय समाज ग्रसित है। यह मानसिकता शहरों में महज बर्दाश्त करने तक सीमित होकर रह जाती है जबकि गांवों में हिंसक समाधान तक चली जाती है।

दलितों अत्याचार एक तरफ उनके पारंपरिक रहन सहन और विश्वासों के कारण हो रहे हैं दूसरी तरफ उनके शिक्षित होने और आधुनिक चेतना से संपन्न होने के प्रयासों को निशाना बनाया जा रहा है। अगर हिसार में बिश्नोई समाज के लोगों ने दलित युवक को शिकारी होने का आरोप लगाकर मार डाला तो उसी तरह दुलीना में मरे जानवरों की खाल निकालते समय दलित युवक को जला दिया गया था। दूसरी तरफ स्कूल पढ़ने जा रही धानुक परिवार की नाबालिग लड़कियों के साथ जाट युवकों ने इसलिए बलात्कार किया क्योंकि वे शिक्षित होने का प्रयास कर रही थीं। यह मामला तो पश्चिम बंगाल के चुन्नी कोटाल जैसा है जहां विश्वविद्यालय में शिक्षा ग्रहण करने गई चुन्नी कोटाल को सवर्ण उत्पीड़न से तंग आकर आत्महत्या कर लेनी पड़ी थी। कनावनी गांव में भी दबंग जाति के लोगों ने सिद्धार्थ स्कूल की इमारत ढहा दी और दूसरा हमला आधुनिक कालोनी के रामकृष्ण इंस्टीट्यूट में पढ़ रहे दलित बच्चों पर करने गए। यह अत्याचार बहुविध हैं। जहां दलितों को परंपरा से जुड़े होने के कारण अत्याचार सहना पड़ रहा है तो कहीं आधुनिक होने की कीमत चुकानी पड़ रही है। यह भारतीय समाज का भयानक चक्रव्यूह है और इसे महज राजनीतिक

सत्ता से तोड़ना आसान नहीं लगता। इसके लिए एक व्यापक सांस्कृतिक चेतना की जरूरत है और चेतना की वह क्रांति कम से कम हिंदी इलाके में डॉ. भीमराव आंबेडकर और डॉ. राममनोहर लोहिया से समन्वय से होगी। पर वह काम न तो समाजवादी दलों ने किया न ही आंबेडकरवादी दलों ने। उन्होंने इन विचारों की छौंक से अपनी राजनीति तो चमकाई लेकिन यह भूल गए कि उस राजनीति को टिकाऊ बनाने के लिए बदलाव के विचार के मर्म तक जाना होगा। वह मर्म डॉ. आंबेडकर की जाति प्रथा के विनाश और डॉ. लोहिया के जाति और योनि के कटघरों को समाप्त करने के नजरिए में है। इन दृष्टिकोणों का महत्व भारत के लिए कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो से कम नहीं है। लेकिन विडंबना यह है कि हमारी राजनीति उस विचार को समाज से स्तर पर ले जाने की बजाय परिवारवाद और सत्ता के राजनीतिक और आर्थिक भ्रष्टाचार में इतनी उलझी हुई है कि उसे समाज को बदलने का काम सरकार बनाने और गिराने के मुकाबले दो कौड़ी का लगता है। पूरी राजनीति धन जमा करने और उपभोक्तावादी बनाने की दौड़ में लगी हुई है। इस दौरान उसे न तो मतदाताओं के सम्मान की चिंता है न ही नागरिकों के। उसे आंतरिक लोकतंत्र को मजबूत करने की भी चिंता नहीं है। जाहिर है नया समाज गांवों को बदल कर ही बनेगा और गांवों के बदलने का मतलब जाति और जमीन के रिश्तों को बदल कर समतावादी चेतना और भाईचारा कायम करने से है। स्पष्ट तौर पर इस अभियान में जातिगत समूहों से ज्यादा व्यक्ति की गरिमा और अधिकारों की चिंता करनी होगी और तब स्त्री के अधिकारों का सवाल सबसे ऊपर होगा। क्योंकि अत्याचार में सबसे आसान शिकार उन्हीं को बनाया जाता है। यानी जो भी सांस्कृतिक क्रांति होगी वह महज जातिगत विमर्शों तक केन्द्रित रही तो अधूरी रहेगी उसे नर नारी संबधों में भी मौलिक बदलाव करना होगा। इस मामले में डॉ. लोहिया का नर-नारी समता का सिद्धांत बहुत कारगर सिद्ध होगा।

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार हैं। सम्पर्क : 9818801766)

जातिय शोषण के उन्मूलन में विविधता की भूमिका

–शीलबोधि

हरियाणा-जिसने तेजी से प्रगतिशील और उन्नत राज्य की छवि बनाई थी अब धूमिल हो चुकी है। अब राज्य को खाप पंचायतों के मध्यकालीन कुख्यात निर्णय और दलित उत्पीड़न के लिए जलता हुआ घर कहा जा रहा है। हरियाणा में प्रगति के साथ प्रगतिशील समाज निर्मित न हो सकने के पीछे क्या कारण हैं? इन कारणों का सामने आना जरूरी है। यह जरूरी इसलिए भी है कि इसके बिना सही मायनों में प्रगति को प्रगति कहा नहीं जा सकेगा। मुट्ठी भर लोगों के हाथ में ताकत व सत्ता आ जाने से समाज समृद्धवान नहीं बनता। विकास के लिए जरूरी न्यायपूर्ण सामाजिक व आर्थिक संरचना होनी चाहिए। विकास का वितरण न्यायपूर्ण होना जरूरी है। समाज में परस्पर सहयोग से न केवल वस्तुएं बल्कि सेवाएं भी उत्पन्न होती हैं। जब तक वस्तु और सेवाओं की उपलब्धता सहज व सरल नहीं होती है, तब तक बौद्धिक और स्वतंत्र समाज का विकास नहीं हो सकता है। हाल में ही, हरियाणा के भगाणा और उत्तर प्रदेश के कनावनी में दलित उत्पीड़न के खिलाफ जो प्रतिकार और प्रतिरोध के स्वर सामने आये हैं, उनके मूल में किसी न किसी रूप में विषम संसाधनों के वितरण की सामाजिक व्यवस्था है और ज़मीन है। ये घटनाएं आकस्मिक नहीं है, इनकी जड़ों में समाज का इतिहास और दर्शन है, जिससे समाज का मनोविज्ञान बना है। इसलिए इनको हल्के से देखना देश को कमजोर होते देखना है।

भगाणा और कनावनी में जमीन दलित और गैर दलित जातियों के बीच विवाद का प्रमुख कारण बनी है। जहां जमीन सीधे तौर पर संघर्ष का कारण नहीं भी हैं, वहां भी कृषि आधारित भारतीय ग्रामीण अर्थव्यस्था होने के नाते ज़मीन पर सभी ग्रामीणों की निर्भरता है। ज़मीन पर निर्भर दो वर्ग हैं एक जो ज़मीन का मालिक है जिसे हम भू-स्वामी कहते है और दूसरा वर्ग वह है जिसके पास ज़मीन नहीं है जिसे भूमिहीन श्रमिक कहते हैं। दोनों ही प्रकार के वर्ग भूमि पर निर्भर हैं लेकिन दोनों का भूमि से लाभ प्राप्त करने का आधार विषमतापूर्ण है। जिस श्रमिक के अधिकतम श्रम सहयोग से पैदावार होती है, उसे न्यूनतम आगत (return) प्राप्त

होती है तथा जिस भू-स्वामी श्रम सहयोग भू-उत्पादन में न्यूनतम होता है, वह केवल भू-स्वामी होने के नाते अधिकतम आगत प्राप्त करता है। इससे समाज में अधिकतम उत्पादन आगत प्राप्त करने वाला वर्ग मालिक के रूप में स्थापित हो गया है। यही मालिक वर्ग अधिकतम श्रम सहयोग देने वाले श्रमिक वर्ग को यथासंभव न्यूनतम उत्पादन आगत का भुगतान करता है, इस कारण से एक नौकरजात वर्ग को जबरन खड़ा किया है। ज़मीन पर निर्भरता के अपने अलग आर्थिक समीकरण हैं, लेकिन आर्थिक समीकरणों से सामाजिक समीकरण उत्पन्न नहीं होते हैं बल्कि सामाजिक समीकरण आर्थिक समीकरण को जन्म देते हैं। यह बात इस तथ्य से भी साफ है कि भारतीय समाज में जातियां अमीर और गरीब हैं। इस तरह से मालिक जाति और नौकर जाति का एक विभाजन दिखाई देना सामाजिक व्यवस्था की देन है। सामाजिक व्यवस्था कुछ विशेष नीति निर्देशक सिद्धांतों का पालन करती है, जो धार्मिक पुस्तक और धार्मिक पुस्तक के अधिकारिक प्रवक्ताओं की ओर से प्रचारित और प्रसारित होते हैं। वर्ण व जाति की व्यवस्था के आधार पर उत्पन्न सामाजिक व्यवस्था में जो मालिक जातियां है वे नौकर जातियों को उपभोग की वस्तु मानती हैं। यहां केवल उपभोग और उपयोग की मानसिकता है, यहां ऐसी कोई दूसरी मान्यता नहीं है, जो यह राय रखती हो कि उपयोग या उपभोग की वस्तुओं या जातियों का भी विकास होना चाहिए। उन्हें भी आवश्यक अधिकारों की जरूरत है।

जैसे कि पहले भी कहा गया है कि ज़मीन पर वास्तविक काम भले ही भूमिहीन लोग करें लेकिन केवल ज़मीन का मालिक होने के कारण भू-स्वामी ज़मीन से उत्पन्न अधिकतम आर्थिक लाभ को अपने पास ही रखता है। जमींदार ज़मीन से उत्पन्न लाभ का न्यायपूर्ण वितरण मजदूरी या वेतन के रूप में ज़मीन पर वास्तविक रूप से कार्य करने वाले श्रमिकों के बीच नहीं करता है। इससे स्थिति यह उत्पन्न हो जाती है कि गांव में जो लोग भू-स्वामी होते हैं, वे न केवल ज़मीन के मालिक होते हैं बल्कि वे ऐसी स्थिति पैदा किये रहते हैं कि वे भूमिहीन लोगों के भी मालिक हैं। इस प्रकार यहां पूंजीवाद का अलग और अनोखा रूप दिखाई देता है जिसमें भू-स्वामी भूमिहीनों का शोषण इसलिए करता है कि भूमिहीन और भूमिहीन की भावी पीढ़ियां हमेशा सस्ती श्रम लागत के रूप में आसानी से उपलब्ध होते रहें।

इन परिस्थितियों में गांव में रहने वाली श्रमिक जातियों के पास काम बहुत होता है लेकिन अधिकार नहीं होते हैं। एक न्यायसंगत न्यूनतम पारिश्रमिक का अधिकार भी नहीं होता है। यहां तक कि भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त शोषण के विरुद्ध संघर्ष का अधिकार भी व्यवहारिक रूप से नहीं होता है। भगाणा गांव में बहिष्कार की घटना इसका अच्छा उदाहरण है। आर्थिक व सामाजिक सम्पन्नता का फायदा लेने वाली जातियां के पास कमजोर जातियों की उन्नति का कोई विमर्श नहीं है। बल्कि उलटे होता यह है कि उनके पास एक मजबूत सामाजिक सैद्धांतिकी होती है, जो

सामाजिक व आर्थिक अन्याय को जायज ठहराती है। इस सैद्धांतिकी से सामाजिक आर्थिक संपन्न भारतीय जिसके लिए सरल शब्द सवर्ण है, के पैर के नीचे दस वास्तविक क्रियाशील श्रमसाध्य भारतीय शरीर होते हैं। तब तक कोई परेशानी नहीं थी जब तक शोषित को पता नहीं था कि उसका शोषण हो रहा है, लेकिन जब दस शोषित भारतीयों में अहसास होता है कि वे एक सम्पन्न सवर्ण भारतीय के पैर के नीचे नहीं बल्कि बराबरी के जीवन के हकदार हैं, संघर्ष शुरू होता है। भगाणा में यही अहसास वास्तविक संघर्ष का उत्प्रेरक तत्त्व है। भगाणा में गांव की सरकारी ज़मीन जिसका उपयोग दलित परिवार अपने दैनिक कार्य के लिए करते थे, गांव के जाटों द्वारा साजिश के तहत कब्जा ली गई ज़मीन के विरुद्ध दलित समाज उठ खड़ा हुआ। शोषितों को लगा कि अब समाज की व्यवस्था धर्म शास्त्रों द्वारा निश्चित और निर्णित नहीं होती है बल्कि भारतीय संविधान द्वारा निश्चित और निर्णित होती हैं, और यदि कोई अरचन आये तो भारतीय लोकतंत्र में कई ऐसी संस्थाएं हैं जो न्याय की लड़ाई में सहायक होती हैं। मीडिया जिसे आमतौर लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ कहा जाता है, न्याय की लड़ाई में उनका साथ देगा। न्यायालय उनके पक्ष में सहारा बनेंगे, देश का सुप्रीम कोर्ट स्वतः संज्ञान लेगा जैसा कि उसने अनेक मामलों में किया, कम से कम उनकी फरियाद तो सुनेगा। भगाणा के कमजोर समाज की आवाज़ इतनी कमजोर पड़ गई है कि 'बहिष्कार और बलात्कार' का शिकार होने के बावजूद उनकी कोई त्वरित सुनवाई नहीं हो सकती है। मीडिया गूंगी और न्याय अंधा होकर मूक खड़ा है और हम अपने नीति-निर्धारकों को सोशल कन्शंस पर जीरो पा रहे हैं। सुप्रीम को दो साल से न्याय के लिए भटकती जनता के लिए आदेश है कि हाईकोर्ट में जाइए, यहां वक्त कहां है। क्रिकेट पर मामला हो तो फरियाद सुनी जा सकती है। क्या देश दलित से कहना चाहता है कि 'ऐ बेबस तू जब अपने जख्मों के दर्द से तडपकर करहाता है, तो उसकी लय सुनकर बड़ा मजा आता है।'

मामला यह नहीं है कि भगाणा के 'बहिष्कार व बलात्कार' केस में कोई कार्यवाही नहीं हुई है। एफआईआर दर्ज हो चुकी है, बेशक उसके लिए भी संघर्ष करना पड़ा। गिरफ़्तारी हो चुकी है लेकिन केवल छह लोगों की जबकि मुख्य-मुख्य आरोपी खुलेआम घूम रहे हैं। बलात्कार के बाद मेडिकल जांच हो चुकी है, देरी से ही सही, जिसमें चार लड़कियों के साथ नहीं बल्कि दो लड़कियों के साथ बलात्कार की पुष्टि हुई है। सत्र न्यायालय में केस चल रहा है, फास्ट ट्रेक कोर्ट में नहीं, न्याय मिलने में वर्षों लगेंगे, कितने वर्ष पता नहीं। राजनीति में राष्ट्रीय युवा जोश की काग्रेस सांस नहीं लेगी, मामला गिरहेबान में झांकने का है। दिल्ली, यू.पी. और हरियाणा के कॉलेजों के विद्यार्थी मानते है, अरे इनके साथ तो ऐसा होता ही रहता है। कैंडल मार्च और धरना प्रदर्शन की इन कमजोर हरकतों को नहीं पता है कि अखबारों में खबर का आधार जाति भाईयों द्वारा तैयार कर परोसा जाता है और तुम्हारा जाति भाई अखबारों

में नहीं है, है भी तो औकात में नहीं है।

परेशानी का अंत पेशानी पर बल डालने पर भी नहीं नजर आ रहा है। दलितों के क्लर्क है लेकिन वे कमजोर है, उनको सहारा देने वाला अफसर नहीं है, यदि है तो कमजोर है। दलितों का अफसर कमजोर है क्योंकि दलितों की राजनीति कमजोर है। राजनेता और राजनीति सशक्त होगी तो अफसर सशक्त होगा, अफसर सशक्त होता तो क्लर्क सशक्त होगा। दलित अपना वोट खुद को सशक्त करने के लिए नहीं डालते बल्कि क्षणिक लाभ या आनंद के लिए वोट की कीमत तय कर अपने लिए दुख खरीद लेते हैं। भगाणा में इतना बड़ा कांड हुआ और गोहना व मिर्चपुर कांड के बाद भी दलित नेताओं का कोई सम्मिलित स्वर सुनाई नहीं दिया। उनका दर्द सिर्फ इतना है कि हुड्डा ने उन्हें अपनी रैली में नहीं बुलाया है, इसलिए वे आपके बुलावे पर यहां आ गए।

इतिहास में दर्ज है कि गुप्त काल में ब्राह्मण ने महायानी बौद्ध भिक्खू बनकर गुप्त शासकों पर धीरे-धीरे अपना ब्राह्मण धर्म लाद दिया था और अंतिम दौर के गुप्त शासन तथा उसके बाद के शासकों को प्रेरित कर दान व वेतन नकद मुद्रा का भुगतान न करके दान व वेतन में भूमि दान दे दी जाए। बस यही से भारत में आर्थिक विषमता की न भर पाने वाली खाई पैदा हो गई। भूमि राज्य की न होकर राजाधिकारी व पुरोहितों के कब्जें में आ गई और पीढ़ी दर पीढ़ी की मजकियत हो गई। जो जोतदार थे वे पहले राज्य की जमीन को जोतते थे और एक निश्चित रकम का भुगतान राज्य को करते थे अब भू-स्वामियों के नौकर और दया के पात्र हो गए। इसके बाद एक बड़ा बहुजन समाज आत्मनिर्भर नहीं रह सका और सदा-सदा के लिए बलात्कार और शोषण का शिकार बनकर रह गया। संविधान लागू होने के बाद लोकतंत्र की ढांचे पर पर सवार सामंती रोज अभी भी अपने सामंती कोट में ही विराजमान है। लेकिन शोषित समाज शिक्षा का प्रतिशत बढ़ने के कारण उनके द्वारा अवसरों के दोहन की कोशिशें भी बढ़ी हैं। शोषण के उन्मूलन के रूप में उनके बीच से न्यूनतम प्रतिनिधित्व की आवाज उठने लगी है।

भारत का संविधान अवसर की सामनता का मूल्य नागरिकों के सामने संवैध ाानिक मूल्य के रूप में रखता है लेकिन जब तक समाज की विविधता को नहीं देखा जाएगा तब तक अवसर की समानता का मूल्य समाज में लागू भी नहीं हो पायेगा। शासकों का एक बड़ा वर्ग देश की विविधता की अनदेखी कर बड़ा लाभ उठा रहा है जबकि बहुसंख्यक समाज आर्थिक विषमता और अवसरों की अनौपलबधता के कारण पीड़ित है। साधन संपन्न लोगों से इतर जो साधनहीन बहुजन वर्ग है, उसके हितों पर जब तक ध्यान नहीं दिया जाएगा, और शासन व प्रशासन के साथ आय के अन्य स्रोतों में जब तक विविधतामय भारत का अक्स नज़र नहीं आयेगा तब तक हम आत्मनिर्भर और मजबूत भारत नहीं देख पायेंगे।

शोषण के अनेक रूपों में जो दबंगता दिखाई देती है, उसका कारण है कि दबंग लोगों का प्रतिनिधित्व अनेक स्तरों पर इतना अधिक है कि उनके विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं हो सकती है। असीमित प्रतिनिधित्व के कारण सवर्ण दबंग लोगों के हाथ में आय के अधिकतम स्रोतों पर कब्जा है, इसलिए वे अवसरविहीन लोगों पर शोषण और बलात्कार की कार्यवाहियों को अंजाम देते है। इंसाफ उनकी मुट्ठी में होता है। सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र के लिए आय के विभिन्न स्रोतों में जब तक डाइवर्सिटी के सिद्धांत को लागू नहीं किया जायेगा तब तक बहुजन समाज की निर्भरता शोषक और दबंग लोगों पर बनी रहेगी।

शोषण के विरुद्ध भगाणा और कनावनी के अन्याय के खिलाफ हमारी आवाज में एकजुटता के कारण सरकार से मदद और न्यायालय से इंसाफ देर सबेर मिल भी जाए, तब भी बेइंसाफी और अन्याय की ये कोशिशें मरने वाली नहीं हैं। अन्याय और शोषण की कोशिशों को मृत्युदंड तभी संभव है जब आय के विभिन्न सरकारी व गैर सरकारी स्रोतों में हर स्तर पर विविधतामय समाज नजर आये ताकि एक जाति की दूसरी जाति पर आर्थिक निर्भरता को परस्पर सहयोग के रूप में परिणिति मिल सके। तब हम कह सकेंगे कि हमने अपनी आजादी के मूल्य को हासिल कर लिया है।

(लेखक दलित साहित्यकार हैं। सम्पर्क : 8860951090)

भगाणा बलात्कार कांड : मीडिया के विवेक के समक्ष चुनौती

–एच एल दुसाध

2012 की सर्दियों के बाद एक बार फिर राष्ट्रीय राजधानी बलात्कार के विरुद्ध मुखर है। लेकिन तब और अब में काफी फर्क है। तब दिल्ली में एक पैरा मेडिकल छात्रा के साथ 16 दिसंबर की रात चलती बस में दुष्कर्म की एक रोंगटे खड़ी कर देनेवाली घटना हुई थी। दुष्कर्मियों ने बुरी तरह जख्मी पीड़िता और उसके मित्र को निर्वस्त्र कर चलती बस से बाहर फेंक दिया था। तब 'निर्भया' के बलात्कार और उसकी हत्या के बाद दिल्ली के मध्यम वर्ग के युवाओं में तीव्र प्रतिक्रिया हुई थी। उन्होंने बलात्कारियों को फांसी दो, फांसी दो की मांग करते हुए एकाधिक बार दिल्ली के विजय चौक को तहरीर चौक में तब्दील किया था। तब मीडिया उसकी आवाज में आवाज मिलाते हुए बलात्कार जैसे जघन्य अपराध के खिलाफ जनाक्रोश पैदा करने में विराट भूमिका अदा की थी। उसकी सक्रियता के फलस्वरूप रायसीना हिल्स से राजघाट, कोलकाता से कोयम्बटूर और श्रीनगर से चेन्नई तक लोग विरोध प्रदर्शन के लिए उमड़ पड़े। उसका प्रभाव पड़ा। महिलाओं के खिलाफ यौन अपराध की रोकथाम के लिए कानून में कई संसोधन हुए। महिलाओं की असुरक्षा एवं उनके खिलाफ बढती यौन हिंसा का प्रतीक बनकर उभरी 'निर्भया' के नाम पर महिलाओं की सुरक्षा लिए बजट में 1000 करोड़ के विशेष फंड का प्रावधान बना तथा उसके उसके परिवारजनों को फ्लैट सहित लाखों का आर्थिक मुआवजा मिला। बहरहाल 2012 के सवा साल बाद दिल्ली बलात्कार की जिस घटना को लेकर नए सिरे से उतप्त हुई है, वह दिल्ली नहीं, हरियाणा के हिसार जिले के भगाणा गाँव की है।

जिस वर्ष दिल्ली में निर्भया काण्ड हुआ था, उसी वर्ष भगाणा के जाटों ने गाँव के सभी दलित परिवारों का बहिष्कार किया था। उनके बहिष्कार के विरोध में चमार जैसी अपेक्षाकृत मजबूत दलित जातियों के 80 परिवार हिसार के मिनी सचिवालय में खुले आसमान के नीचे शरण ले लिए, किन्तु उसी गांव के दलितों की एक दुर्बल जाति, धानुक लोग गाँव में ही बने रहने का फैसला किये। इन्ही धानुक

परिवारों की चार लड़कियों को भगाणा के जाट जाति के दबंगों ने 23 मार्च को अगवा कर दो दिनों तक सामूहिक बलात्कार किया। आठवीं और नौवीं क्लास में पढनेवाली इन लड़कियों का कसूर बस इतना था कि वे पढना चाहती थीं जिसके लिए उनके अभिभावकों ने इजाजत दे रखी थी। यह जाटों के लिए बर्दाश्त के बाहर की बात थी। लिहाजा उन्होंने इन लड़कियों को सजा देकर दलित समुदाय को उसकी औकात बता दिया। घटना के प्रकाश में आने के बाद जहाँ सरकारी डाक्टरों ने मेडिकल जांच में अनावश्यक बिलम्ब कर घोर असंवेदनशीलता का परिचय दिया वहीँ पुलिस ने किसी तरह एफआईआर तो दर्ज कर लिया, पर किसी दोषी का नाम दर्ज नहीं किया। हारपाछ कर पीड़ित परिवार दो सप्ताह पूर्व राष्ट्रीय राजधानी पहुंचे और जंतर-मंतर पर बैठ कर इंसाफ की गुहार लगाने लगे। वे छुट्टा घूम रहे आरोपियों को अबिलम्ब गिरफ्तार करनेयफास्ट ट्रैक कोर्ट गठित कर मामले की छः महीने में सुनवाई करने तथा चारों बलात्कार पीड़ितों एवं गाँव के प्रत्येक बहिष्कृत परिवार को गुडगाँव या फरीदाबाद में चार-चार सौ गज का आवासीय भूखंड सहित एक-एक करोड़ का मुआवजा देने की मांग कर रहे हैं। उनकी यह भी मांग है कि पीड़ित लड़कियों के लिए लिए सरकार शिक्षा की व्यवस्था करे तथा शिक्षित होने के बाद उन्हें सरकारी नौकरी दे। पीड़ित बच्चियों को इंसाफ दिलाने की मुहिम में दिल्ली के भारी संख्यक छात्र, शिक्षक, लेखक, कलाकार, सोशल एक्टिविस्ट, युवक-युवतियां जुड़ गए हैं। किन्तु जिस तरह 2012 की सर्दियों में युवाओं की सक्रियता के फलस्वरूप निर्भया को इंसाफ दिलाने के लिए शहर-शहर, गाँव-गाँव, बस्ती-बस्ती में लोग मुखर हुए, वैसा इस बार नहीं हो रहा है तो उसका प्रधान कारण मीडिया है।

जहाँ तक हाल के दिनों में यौन हिंसा के विरुद्ध मीडिया की भूमिका का सवाल है, वह काबिले तारीफ रहा है। ऐसा नहीं कि उसने निर्भया कांड को ही अंजाम तक पहुंचाया, अप्रैल 2013 में दिल्ली में ही बलात्कार की शिकार बनाई गयी पांच वर्ष की बच्ची और उसके परिवार को न्याय दिलाने के लिए जो विरोध प्रदर्शन हुए, उसमें भी उसकी भूमिका अग्रणी रही। पीड़ित बच्ची के मामले में लोगों में दिसंबर-2012 जैसा स्वतः स्फूर्त प्रचंड गुस्सा नहीं था। यह चैनेल थे जिनमें आमजन की अपेक्षा कहीं ज्यादे रोष था। चैनलों ने ही मुख्यमंत्री, गृहमंत्री, पुलिस अधिकारियों इत्यादि के इस्तीफे की मांग पहले उठाई। उनके ऐसा करने के बाद आन्दोलनकारी जनता भी इस्तीफे की मांग उठाने लगी। हालांकि अप्रैल 2013 में बलात्कार के विरुद्ध उठी विरोध की लहरें दो-तीन दिनों बाद ही शांत हो गयीं थी, पर लोगों के जेहन आज भी मीडिया, विशेषकर इलेक्ट्रोनिक मीडिया की भूमिका ताजी है। बहरहाल निर्भया कांड में असाधारण भूमिका का निर्वहन करने वाली मीडिया दलित महिलाओं के यौन हिंसा के मामले में खुद के साथ इंसाफ न कर सकी। यही कारण है कि सुप्रीम कोर्ट के पूर्व चीफ जस्टिस अल्तमस कबीर उस पर तल्ख टिपण्णी करने से खुद को नहीं

रोक पाए। गत वर्ष उन्होंने पश्चिम बंगाल में एक दस वर्ष की दलित लड़की के साथ हुई दुष्कर्म की घटना पर मीडिया की भूमिका पर सवाल उठाते हुए कहा था-'16 दिसंबर की घटना कोई अलग मामला नहीं है। यह ऐसे कई मामलों में से एक है। कुछ मामलों में यह अलग प्रकरण असाधारण अवश्य था, पर अनूठा नहीं। अगले दिन के अखबारों में यह वारदात पहले पृष्ठ पर थी, लेकिन दस साल की उम्र की दलित लड़की से गैंगरेप और उसे जलाने की घटना अखबारों के भीतरी पृष्ठों पर मात्र पांच-दस लाइनों में सिमट कर रह गयी। निर्भया के परिवार को सरकार और दूसरों से आर्थिक मदद मिली, लेकिन उस दलित लड़की या उसके परिवार की सुध लेनेवाला कोई नहीं। '

पूर्व न्यायमूर्ति के उपरोक्त कथन के बाद मीडिया से उम्मीद थी कि वह भगाणा जैसे बलात्कार कांड की अनदेखी नहीं करेगी, पर वैसा हो गया, जबकि इस घटना को हाईलाईट करना उसका अत्याज्य कर्तव्य बनता था। क्योंकि यह घटना निर्भया कांड से ज्यादा गुरुतर है। कारण, दिल्ली गैंग रेप के पीछे यौन कुंठा प्रधान कारक रही, जबकि भगाणा बलात्कार कांड को अंजाम देने वाले लोग सिर्फ यौन कुंठा के शिकार नहीं हैं। वे ऐसी घटनाओं को अंजाम देकर एक उभरते समाज का मनोबल तोड़ने तथा अपने टूटते प्रभुत्व को स्थापित करने का मनोवैज्ञानिक सुख लूटते हैं। ऐसी घटनाएँ अशक्त पर सशक्त समुदाय के हमले का सूचक हैं। ऐसी घटनाओं के कारण ही 21वीं में भी भारत मध्ययुग के असभ्य व बर्बर समाज के रूप में देखा जाता है।

वैसे तो दलितों को भगाणा कांड से मुक्कमल निजात शक्ति के सभी स्रोतों में वाजिब भागीदारी से ही मिल सकती है। किन्तु मीडिया यदि इस बार निर्भया कांड की भूमिका में अवतरित हो जाय, पीड़ित बच्चियों के साथ वहां के समस्त बहिष्कृत परिवारों को इंसाफ मिलने का मार्ग प्रशस्त हो जायेगा। इसका सन्देश देश भर में फैले छोटे-मोटे असंख्य भगाणों तक जायेगा जहां रोज-रोज दलित उत्पीड़न की छोटी-बड़ी घटनाएं होती रहती हैं। काबिले गौर है कि इन पंक्तियों के लिखे जाने के दौरान दिल्ली बॉर्डर पर नोएडा कें कनावनी गाँव में दबंगों ने दलित बस्ती तहस-नहस कर दी है। इस बर्बर कांड के बाद दलित गाँव छोड़कर पलायन शुरू कर दिए। अगर मीडिया इन घटनाओं को मानव सभ्यता का कलंक मानती है तो उसे हर हाल में भगाणा के पीड़ितों को इंसाफ दिलाने के लिए सामने आना चाहिए।

प्रकाशित : देशबन्धु, 3 मई, 2014

(लेखक बहुजन डाइवर्सिटी मिशन के राष्ट्रीय अध्यक्ष हैं। सम्पर्क : 9696252469)

दलित उत्पीड़न का कैसे हो प्रतिकार!

–एच एल दुसाध

वैसे तो दलित-उत्पीड़न राष्ट्र के जीवन के दैनंदिन जीवन का अंग बन चुका है। फिर भी रह-रहकर कुछ ऐसी घटनाएँ हो जाती हैं कि इस समस्या पर नए सिरे से विचार करना लाजिमी हो जाता है। हाल के दिनों में अल्प अन्तराल के मध्य ऐसी ही दो घटनाएँ सामने आईं हैं। पहली घटना हरियाणा के हिसार जिले के भगाणा गाँव की है जहाँ 2012 में जाटों द्वारा वहां के तमाम दलित परिवारों का बहिष्कार कर दिया गया था जो अब भी जारी है। बहिष्कार के विरोध में सौ के करीब चमार, खाती इत्यादि जैसी अपेक्षाकृत मजबूत जातियों के लोग तो अपने परिवार और जानवरों सहित हिसार के मिनी सचिवालय में खुले आसमान के नीचे आश्रय ले लिए, किन्तु धानुक जैसी कमजोर दलित जाति के लोगों ने गाँव में ही टिके रहने का निर्णय लिया। इन्ही धानुक जातियों की चार लड़कियों को भगाणा के दबंगों ने 23 मार्च को अगवा कर दो दिनों तक सामूहिक बलात्कार किया। आठवीं और नौवीं क्लास में पढनेवाली इन लड़कियों का कसूर सिर्फ इतना था कि वे पढना चाहती थीं और उनके अभिभावकों ने उन्हें इसकी इजाजत दे रखी थी। वहां की दलित महिलाओं को अपने हरम में शामिल मानने की मानसिकता से पुष्ट जाटों को यह मंजूर नहीं था। लिहाजा उन्होंने इन लड़कियों को सजा देकर दलितों को उनकी औकात बता दी। स्थानीय प्रशासन से हताश-निराश पीड़ित परिवार दो सप्ताह पहले दिल्ली पहुंचकर जंतर-मंतर पर बैठकर इंसाफ की गुहार लगाने लगे। देखते ही देखते उनकी मुहिम में दिल्ली के ढेरों छात्र-शिक्षक, लेखक-एक्टिविस्ट, युवक-युवतियां जुड़ गए। वे अभी भगाणा पीड़ितों को न्याय दिलाने में व्यस्त ही थे कि दिल्ली बॉर्डर पर नोएडा के कनावनी गाँव में 29 अप्रैल को एक और बड़ी बारदात हो गयी। वहां दबंगों ने दलितों की बस्ती में जमकर उत्पात मचाया और उनके घरों को तहस-नहस कर दिया। छावनी में तब्दील उस गाँव में पुलिस की उपस्थिति के बावजूद दलित प्राण-भय से पलायन कर गए हैं।

बहरहाल जब-जब भगाणा या कनावनी जैसे कांड होते हैं तो दलितों के साथ-साथ राष्ट्रप्रेम व मानवाताबोध संपन्न हिन्दुओं के खेमे में भी चिंता की लहर दौड़ जाती

है। वे सभा-संगोष्ठियाँ आयोजित एवं घटनास्थल का मुयायना कर असहिष्णु हिन्दुओं के बर्बरोचित कार्य की निंदा करने एवं उनके विवेक को झकझोरने का अभियान चलाते हैं। लेकिन नतीजा शिफर निकलता है। एक अन्तराल के बाद परवर्तित स्थान पर उनकी दलित-विरोधी भावना का पुनः प्रकटीकरण हो ही जाता है। हिन्दू विवेक को झकझोरने का अभियान इसलिए निष्प्रभावी होते रहता है क्योंकि दलितों की मानवीय सत्ता हिन्दू धर्म-शास्त्रों द्वारा अस्वीकृत है। इसलिये शास्त्रों द्वारा मानवेतर रूप में चिन्हित किये गये मानव समुदाय के लोग जब आम लोगों की भांति अपने मानवीय अधिकारों के प्रदर्शन की हिमाकत करते हैं, धर्मनिष्ठ हिन्दू उन्हें उनकी औकात बताने के लिए कुम्हेर, चकवाडा, एकलेरा, नवलपुर, पिन्ट्री देशमुख, सीखरा, बेलछी, पिपरा, भगाणा, कनावनी जैसे कांड अंजाम दे देते हैं। दलित-उत्पीड़न में हिन्दू धर्म की क्रियाशीलता को देखते हुए डॉ. आंबेडकर को कहना पड़ा था-'हिन्दू जातिभेद इसलिए नहीं मानते कि वस्तुतः वे क्रूर हैं या उनके मस्तिष्क में कुछ विकार है। वे जाति-भेद इसलिए मानते हैं कि उनका धर्म जो प्राणों से भी प्यारा है, उन्हें जाति-भेद मानने के लिए विवश करता है। अतः कसूर उन धर्मशास्त्रों का है जिन्होंने उनकी ऐसी मनोवृति कर दी है। 'लेकिन हिन्दुओं के शास्त्र ही जब दलित उत्पीड़न के लिए प्रधान रूप से जिम्मेवार हैं तब तो यह क्रम अनंतकाल तक चलता रहेगा, क्योंकि तमाम कमियों के बावजूद ऐसा नहीं लगता कि हिन्दू आगामी कुछ सौ वर्षो में अपने धर्म-शास्त्रों के प्रति पूरी तरह अनास्थाशील हो जाएँगे। ऐसे में दलित-उत्पीड़न का प्रतिकार कैसे हो?

जहां तक प्रतिकार का प्रश्न है, डॉ. आंबेडकर ने वर्षों पहले उसका मार्गदर्शन कर दिया था। उन्होंने बताया था-'ये अत्याचार एक समाज पर दूसरे समर्थ समाज द्वारा हो रहे अन्याय और अत्याचार का प्रश्न हैं। एक मनुष्य पर हो रहे अन्याय या अत्याचार का प्रश्न नहीं है, बल्कि एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग पर जबरदस्ती से किये जा रहे आक्रमण और जुल्म, शोषण तथा उत्पीड़न का प्रश्न है। ' किस तरह से इस वर्ग कलह से बचाव किया जा सकता है, उसका एकमेव उपाय उन्होंने दलित वर्ग को अपने हाथ में सामर्थ्य और शक्ति इकठ्ठा करना बताया था। वास्तव में डॉ. आंबेडकर ने दलितों को अपने अत्याचारी वर्ग से निजात दिलाने का जो नुस्खा बाताया था वह सार्वदेशिक है। सारी दुनिया में ही जो अशक्त रहे उन पर ही सशक्त वर्ग का अत्याचार व उत्पीड़न होता रहा। सर्वत्र ही ऐसे लोगों को सशक्त बनाकर सबल वर्गों के शोषण-उत्पीड़न से निजात दिलाई गयी। अतः दलितों को भी दुनिया दूसरे उत्पीड़न-मुक्त समाजों की भांति सशक्त बनाकर शोषण-उत्पीड़न से निजात दिलाया जा सकता है। अब जहाँ तक दलितों के सशक्त बनाने का सवाल है आजाद भारत की तमाम सरकारें ही इस काम में लगे रहने का दावा करती रही हैं। पर बात इसलिए नहीं बनी कि देश के योजनाकारों ने दलित अशक्तिकरण की पहचान करने का बुनियादी काम ही नहीं किया। ऐसे में उनके सशक्तिकरण का सम्यक उपाय भी न कर सके।

सभ्यता के हर काल में ही धरती की छाती पर अशक्त समुदायों का वजूद रहा और ऐसा इसलिए हुआ कि जिनके हाथ में सत्ता की बागडोर रही उन्होंने जाति, नस्ल, धर्म इत्यादि के आधार बंटे विभिन्न सामाजिक समूहों और उनकी महिलाओं के मध्य शक्ति के स्रोतों-आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक-का असमान बंटवारा कराया। जो समूह शक्ति के स्रोतों पर जितना कब्जा जमा सका वह उतना ही सशक्त और जो जितना ही इससे वंचित रहा वह उतना ही अशक्त। सारी दुनिया में अश्वेतों, महिलाओं व अन्य वंचित समूहों को शक्ति के स्रोतों से दूर रखकर ही अशक्त बनाया गया। सारी दुनिया की पराधीन कौमों के साथ यही समस्या रही कि विजेताओं ने उन्हें शक्ति स्रोतों से वंचित कर उन्हें शोषित-उत्पीड़ित किया। यदि तमाम विजेता गुलाम बनाए गए लोगों को शक्ति के स्रोतों में वाजिब शेयर दिए होते, दुनिया में कहीं भी स्वतंत्रता संग्राम संगठित करने की शायद जरुरत ही नहीं पड़ती। अमेरिका का स्वाधीनता संग्राम, फ्रांस की राजक्रांति; गांधी-मार्टिन लूथर किंग (जू.)-मंडेला का संघर्ष और कुछ शक्ति के स्रोतों में अपने लोगों को उचित हिस्सेदारी के लिए रहा। सारी दुनिया में सामाजिक परिवर्तन की लड़ाई और कुछ नहीं शक्ति के स्रोतों में अशक्त लोगों को हिस्सेदारी दिलाने की लड़ाई मात्र है।

जिन मानव समुदायों को शक्ति के स्रोतों से वंचित कर अशक्त मानव समुदाय में तब्दील किया गया उनमें किसी की भी स्थिति दलितों जैसी नहीं रही। मानव जाति के सम्पूर्ण इतिहास में किसी भी कौम को शक्ति के तीनों प्रमुख स्रोतों-आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक-से पूरी तरह वंचित नहीं किया गया। दुनिया के अधिकांश वंचित कौमों को आर्थिक गतिविधियों से वंचित कर अशक्त बनाया गया, पर राजनीतिक और विशेषकर धार्मिक क्रियाकलाप तो उनके लिए पूरी तरह मुक्त रहे। दलितों के रूप में विद्यमान विश्व की सर्वाधिक अशक्त कौम को दुःख-मुक्त करने के लिए मध्ययुग संतों और भारतीय रेनेसां उत्तरकाल के असंख्य महानायकों ने मगजपच्ची की पर आंबेडकर की भांति कोई भी उनके अशक्तिकरण के कारणों को सम्पूर्णता में नहीं समझ पाया। इसलिए वे मानवेतरों को शक्तिसंपन्न करने के बजाय उनके उत्पीड़कों के समक्ष हृदय परिवर्तन की गुहार लगाते रहे। यह आंबेडकर थे जिन्होंने दलितों को सशक्त बनाने में सर्वशक्ति लगाया। उनके प्रयासों से सदियों से बंद पड़े शक्ति के कुछ स्रोत दलितों के लिए मुक्त हुए, पर सारे नहीं। कारण, डॉ. आंबेडकर अपने जमाने में भारत के सबसे असहयाय स्टेट्समैन रहे। यदि वे असहाय नहीं होते, शक्ति के चप्पे-चप्पे पर दलितों की हिस्सेदारी सुनिश्चित कर देते। लेकिन आजाद भारत में उनके अनुसरणकारी क्या दलितों की समस्या समझ पाए? लगता है नहीं। यदि वे समझे होते तो शक्ति के शेष बचे स्रोतों (1)-आर्थिक में न्यायपालिका, मिलिट्री, सप्लाई, डीलरशिप, ठेकों-पार्किंग-परिवहन, फिल्म-मीडिया इत्यादिय (2)-राजनीति में पंचायत, शहरी निकाय, संसद-विधानसभा की सीटों के साथ राज्यसभा-विधान परिषद्, मंत्रालयों, उच्च स्तर की नौकरशाही और (3) धार्मिक क्षेत्र में देवालयों की संचालन समिति व पुरोहिती में उनको वाजिब हिस्सेदारी दिलाने का प्रयास करते। पर, आजाद भारत में तो दलितों के लिए शक्ति के सभी स्रोतों में वाजिब हिस्सेदारी की बजाय टुकड़ों-टुकड़ों में हिस्सेदारी की लड़ाई लड़ी जाती रही है। आज कोई निजी क्षेत्र में आरक्षण की लड़ाई लड़ रहा है तो कोई प्रमोशन में आरक्षण की लड़ाई में अपनी उर्जा खपा रहा है। किन्तु आर्थिक-राजनीतिक और धार्मिक जैसे शक्ति तीन प्रमुख स्रोतों के चप्पे-चप्पे पर लड़ाई से वे आंखे मूंदे हुए है। यही कारण है दलित शक्ति के स्रोतों में मुक्कमल हिस्सेदारी से वंचित हैं। परिणामस्वरूप वे भगाणा और कनावनी में हिन्दू पराक्रम के सामने असहाय व लाचार नजर आ रहे हैं।

प्रकाशित : राष्ट्रीय सहारा, 7 मई, 2014

दिल्ली बनाम भगाणा गैंग रेप कांड

–एच एल दुसाध

2012 की सर्दियों के बाद एक बार फिर राष्ट्रीय राजधानी बलात्कार के विरुद्ध मुखर है। लेकिन तब और अब में काफी फर्क है। तब दिल्ली में एक पैरा मेडिकल छात्रा के साथ 16 दिसंबर की रात चलती बस में सामूहिक बलात्कार की एक रोंगटे खड़ी कर देनेवाली घटना हुई थी। दुष्कर्मियों ने बुरी तरह जख्मी पीड़िता और उसके मित्र को निर्वस्त्र कर चलती बस से बाहर फेंक दिया था। तब 'निर्भया' के बलात्कार और उसकी हत्या के बाद दिल्ली के मध्यम वर्ग के युवाओं में तीव्र प्रतिक्रिया हुई थी। उन्होंने बलात्कारियों को फांसी दो, फांसी दो की मांग करते हुए एकाधिक बार दिल्ली के विजय चौक को तहरीर चौक में तब्दील किया था। तब मीडिया उनकी आवाज में आवाज मिलाते हुए बलात्कार जैसे जघन्य अपराध के खिलाफ जनाक्रोश पैदा करने में विराट भूमिका अदा की थी। उसकी सक्रियता के फलस्वरूप रायसीना हिल्स से राजघाट, कोलकाता से कोयम्बटूर और श्रीनगर से चेन्नई तक लोग विरोध प्रदर्शन के लिए उमड़ पड़े थे। बहरहाल 2012 के सवा साल बाद दिल्ली सामूहिक बलात्कार की जिस घटना को लेकर नए सिरे से उतप्त हुई है, वह दिल्ली नहीं, हरियाणा के हिसार जिले के भगाणा गाँव की घटना है।

जिस वर्ष दिल्ली में निर्भया काण्ड हुआ था, उसी वर्ष भगाणा के जाटों ने गाँव के सभी दलित परिवारों का बहिष्कार किया था। उनके बहिष्कार के विरोध में चमार आदि जैसी अपेक्षाकृत मजबूत दलित जातियों के 80 परिवार हिसार के मिनी सचिवालय में खुले आसमान के नीचे शरण ले लिए, किन्तु उसी गांव के दलितों की एक दुर्बल जाति, धानुक लोग गाँव में ही बने रहने का फैसला किये। इन्ही धानुक परिवारों की चार लड़कियों को भगाणा के जाट जाति के दबंगों ने 23 मार्च को अगवा कर दो दिनों तक सामूहिक बलात्कार किया। आठवीं और नौवीं क्लास में पढनेवाली इन लड़कियों का कसूर बस इतना था कि वे पढना चाहती थीं जिसके लिए उनके अभिभावकों ने इजाजत दे रखी थी। यह जाटों के लिए बर्दाश्त के बाहर की बात थी। लिहाजा उन्होंने इन लड़कियों को सजा देकर दलित समुदाय को उसकी औकात

बता दिया। घटना के प्रकाश में आने के बाद जहाँ सरकारी डाक्टरों ने मेडिकल जांच में अनावश्यक बिलम्ब कर घोर असंवेदनशीलता का परिचय दिया वहीं पुलिस ने किसी तरह एफआईआर तो दर्ज कर लिया, पर किसी दोषी का नाम दर्ज नहीं किया। हार-पाछ कर पीड़ित परिवार गांव छोड़कर राष्ट्रीय राजधानी पहुंचे और जंतर-मंतर पर बैठ कर इंसाफ की गुहार लगाने लगे। पीड़ित बच्चियों को इंसाफ दिलाने की उनकी मुहिम में धीरे-धीरे दिल्ली के भारी संख्यक छात्र, शिक्षक, लेखक, कलाकार, सोशल एक्टिविस्ट, युवक-युवतियां जुड़ गए। किन्तु जिस तरह 2012 की सर्दियों में मध्यम वर्ग के युवाओं की सक्रियता के फलस्वरूप निर्भया को इंसाफ दिलाने के लिए शहर-शहर, गाँव-गाँव, बस्ती-बस्ती में लोग मुखर हुए, वैसा इस बार नहीं हो रहा है तो उसका प्रधान कारण मीडिया है। निर्भया कांड में असाधारण भूमिका का निर्वहन करने वाली मीडिया तथा बुद्धिजीवी वर्ग भगाणा सामूहिक बलात्कार काण्ड पर लगभग चुप्पी साधे हुए हैं, जबकि इस घटना को हाईलाईट करना उनका अत्याज्य कर्तव्य बनता था। क्योंकि यह निर्भया कांड से ज्यादा गुरुतर घटना है।

बलात्कार एक वैश्विक समस्या है जिसके पीछे मुख्यतः 'यौन-कुंठा' की क्रियाशीलता रहती है। दुर्भाग्य से विशेष सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक कारणों से हिंदी पट्टी में यौन-कुंठा एक महामारी का रूप अख्तियार किये हुए है। इस महामारी के कारण ही यहां की मेट्रो सिटी दिल्ली में बंगलुरु, मुंबई, कोलकाता इत्यादि के मुकाबले हर वर्ष दुष्कर्म की कई गुना ज्यादे घटनाएँ दर्ज होती हैं। दुर्भाग्य से 2012 में इसी दिल्ली में 16 दिसंबर की रात सिनेमा देखकर अपने ब्वाय फ्रेंड के साथ घर लौट रही निर्भया का सामना चलती खाली बस में एक खास किस्म के लोगों से हो गया था। सामान्यतया झुग्गी-झोपड़ियों में पले-बढ़े साधारण आर्थिक पृष्ठभूमि के ऐसे लोगों को अमीरों की भांति यौन-कामना की पूर्ति के लिए अय्याशगाहें नसीब नहीं होतीं। ऐसे लोग मोबाईल में ब्लू फिल्में और अश्लील नाच-गाने देख कल्पना में नारी-सानिंध्य का आनंद लेने का आदी होते हैं। बसों के ऐसे स्टाफ में रात होते ही दारू और औरत की चाहत हिलोरे मारने लगती है। ऐसे लोगों की चपेट में कोई नारी आ जाये तो बेशर्मी से आँखें फाड़-फाड़ उसके शरीर का एक्सरे करने से बाज नहीं आते और थोड़ा सा मौका मिल जाये तो उसकी देह-स्पर्श का स्पर्श सुख भी लूट लेते हैं। थोड़ा और ज्यादा अवसर हो तो ऐसे लोग उसकी देह लूटने तक की जोखिम उठा लेते हैं। ऐसे ही लोगों ने उस दिन निर्भया के साथ दरिंदगी की हदें पार कर लिया था।

किन्तु दिल्ली के विपरीत भगाणा सामूहिक बलात्कार काण्ड को अंजाम देने के पीछे भिन्न मनोविज्ञान क्रियाशील रहता है। ऐसे कांड के एक्टर भी यौन-कुंठा से मुक्त नहीं होते। पर भगाणा जैसे कांड को योजनाबद्ध तरीके से अंजाम देने के पीछे उनका उनका मकसद एक ऐसे मानव समुदाय को उसकी औकात बताना रहता

है जिसकी सत्ता हिन्दू धर्म शास्त्रों द्वारा मनुष्य नहीं, मनुष्येतर प्राणी के रूप में ही स्वीकृत है। ऐसे दैविक सर्वस्वहारा अस्पृश्य जब आम लोगों की तरह अपने मानवीय अधिकारों का इस्तेमाल करते हैं, दैविक अधिकार संपन्न हिन्दू इन मानवेतरों का मनोबल ध्वस्त करने के लिए भगाणा जैसे कांड अंजाम दे देते हैं। दिल्ली गैंग रेप जैसे कांड कमोवेश दुनिया में हर जगह होते रहते हैं। पर थोड़े-थोड़े अंतराल पर भगाणा जैसे कांड विश्व के एकमात्र जाति समाज, भारत में होते हैं, अन्य किसी सभी समाज में नहीं। डॉ। आंबेडकर ने ऐसी घटनाओं को एक मनुष्य पर दूसरे मनुष्य के अत्याचार के रूप नहीं, बल्कि एक निर्बल समाज पर दूसरे समर्थ समाज के आक्रमण और जुल्म, शोषण तथा उत्पीड़न के रूप में चिन्हित किया है। दिल्ली गैंग रेप के कारण दुनिया में भारत की छवि एक दुष्कर्मी देश के रूप में स्थापित नहीं होती, किन्तु भगाणा जैसे कांडों के कारण इसे मध्य युग में वास कर रहे एक बर्बर व असभ्य मुल्क के रूप में देखा जाता है।

कुल मिलाकर सुनियोजित तरीके से अंजाम दिया गया भगाणा गैंग रेप दिल्ली गैंग रेप के मुकाबले बहुत गंभीर मामला है। दिल्ली दुष्कर्म कांड से पीड़िता और उसका परिवार प्रभावित होता है जबकि भगाणा का परोक्ष असर दलितों के रूप में विद्यमान यूरोप के कई देशों की मिलित विशाल आबादी पर पड़ता है। बहरहाल निर्भय कांड के खिलाफ जो राष्ट्रमय इंसाफ की मांग उठी थी, उसका असर हुआ। महिलाओं के खिलाफ यौन अपराध की रोकथाम के लिए कानून में कई संशोधन और उनकी सुरक्षा के लिए बजट में निर्भया के नाम पर 1000 करोड़ के विशेष फंड का प्रवधान हुआ। यही नहीं दोषियों को फँसी से लेकर उम्र-कैद तक को कठोरतम सजा मुकर्रर हुई एवं निर्भया के परिवारजनों को फ्लैट और लाखों का आर्थिक मुआवजा भी मिला।

इस कांड के पीड़ितों की मांग है कि छुट्टा घूम रहे बलात्कारियों की अबिलम्ब गिरफ्तारी हो तथा फास्ट ट्रैक कोर्ट गठित कर मामले की छः महीने के अन्दर सुनवाई पूरी हो। बलात्कार पीड़ित बच्चियों तथा पलायित परिवारों के लिए एक-एक करोड़ रुपये के साथ गुड़गांव या फरीदाबाद में चार-चार सौ गज का आवासीय भूखण्ड सुलभ कराया जाय। इसके साथ बलात्कार पीड़ित बच्चियों को बेहतर शिक्षा और शिक्षा के बाद सरकारी नौकरी की व्यवस्था की जाय। दिल्ली गैंग रेप के मुकाबले भगाणा मामले की गंभीरता को देखते हुए दलित समाज को उम्मीद रहेगी कि सरकार और न्यायपालिका भगाणा पीड़ितों को इन्साफ दिलाने में कोई कोताही नहीं करेगी।

प्रकाशित : देशबन्धु, 10 मई, 2014

मानवेतरों को तब्दील करना होगा सबसे शक्तिशाली कौम में

—एच एल दुसाध

वैसे तो दलित-उत्पीड़न राष्ट्र के जीवन के दैनंदिन जीवन का अंग बन चुका है। फिर भी रह-रहकर ऐसी कुछ घटनाएँ हो जाती हैं कि इस समस्या पर नए सिरे से विचार करना लाजिमी हो जाता है। हाल के दिनों में अल्प अन्तराल के मध्य दो ऐसी घटनाएँ सामने आईं हैं। पहली घटना हरियाणा के हिसार जिले के भगाणा गाँव की है जहाँ 2012 में जाटों द्वारा वहां के तमाम दलित परिवारों का बहिष्कार कर दिया गया था जो अब भी जारी है। बहिष्कार के विरोध में सौ के करीब अपेक्षाकृत चमार जैसी मजबूत दलित जातियों के लोग अपने परिवार और जानवरों सहित हिसार के मिनी सचिवालय में खुले छत के नीचे आश्रय ले लिए और आज भी वहीं रह रहे हैं। किन्तु धानुक जैसी कमजोर दलित जाति के लोगों ने गाँव में ही टिके रहने का निर्णय लिया। इन्ही धानुक जातियों की चार लड़कियों को भगाणा के दबंगों ने 23 मार्च को अगवा कर दो दिनों तक सामूहिक बलात्कार किया। आठवीं और नौवीं क्लास में पढनेवाली इन लड़कियों का सिर्फ इतना था कि वे पढना चाहती थीं और उनके अभिभावकों ने उन्हें इसकी इजाजत दे रखी थी। वहां की दलित महिलाओं को अपने हरम में शामिल मानने की मानसिकता से पुष्ट जाटों को यह मंजूर नहीं था। लिहाजा उन्होंने इन लड़कियों को सजा देकर दलितों को उनकी औकात बता दी।

इस हृदय विदारक घटना के बाद जब किसी तरह लडकियां उनके अभिभावकों को मिली, वे उनकी मेडिकल जांच के लिए जिला अस्पताल पहुंचे जहाँ डाक्टरों जांच में अनावश्यक बिलम्ब कर घोर असंवेदनशीलता का परिचय दिया। उधर पुलिस वालों ने नाम के वास्ते एफआईआर तो दर्ज कर ली किन्तु दोषियों का नाम दर्ज नहीं किया। स्थानीय प्रशासन से हताश निराश पीड़ित परिवार दो सप्ताह पहले दिल्ली पहुंचकर जंतर-मंतर पर बैठकर इंसाफ की गुहार लगाने लगा। इनकी मांग है कि छुट्टा घूम रहे बलात्कारियों की अबिलम्ब गिरफ्तारी होयफास्ट ट्रैक कोर्ट गठित कर छः महीने के अन्दर मामले की सुनवाई हो तथा बलात्कार पीड़ितों एवं गाँव के समस्त बहिष्कृत परिवारों को गुडगाँव या फरीदाबाद में चार-चार सौ गज का आवासीय भूखंड और

एक-एक करोड़ रूपये मुआवजे के तौर पर दिए जांय। इसके साथ ही उनकी उनकी मांग है कि पीड़ित लड़कियों के लिए शिक्षा की बेहतर व्यवस्था हो तथा शिक्षा पूरी करने के बाद उन्हें सरकारी नौकरी दी जाय।

देखते ही देखते भगाणा बलात्कार कांड के पीड़ितों इंसाफ दिलाने की मुहिम में दिल्ली के ढेरों छात्र-शिक्षक, लेखक-एक्टिविस्ट जुड़ गए। किन्तु मीडिया की उदासीनता के कारण उसका असर 2012 के 16 दिसंबर को घटित निर्भया कांड जैसा नहीं हुआ। तब निर्भया को इन्साफ दिलानेवालों के सुर में सुर मिलाते हुए मीडिया ने घटना को इतना हाईलाईट किया कि रायसीना हिल्स से लेकर राजघाट, कोलकाता से कोयम्बटूर, कश्मीर से चेन्नई तक के लोग उस मुहिम में शामिल हो गए। उसके फलस्वरूप महिलाओं के खिलाफ यौन अपराध की रोकथाम के लिए जहाँ कानून में कई संशोधन हुए वही 'निर्भया' के नाम पर महिलाओं की सुरक्षा के लिए बजट में हजार करोड़ का प्रावधान भी हुआ। किन्तु मीडिया को भगाणा की घटना पर ज्यादा जोर इसलिए देना चाहिए था क्योंकि यह 'निर्भया कांड' से ज्यादा गुरुतर मामला है। निर्भया काण्ड के पीछे जहां मुख्य रूप से 'यौन कुंठा' की क्रियाशीलता रही, वहीं भगाणा कांड के पीछे यौन कुंठा के साथ एक उभरते समाज के मनोबल को तोड़ने तथा अपने प्रभुत्व को नए सिरे से स्थापित करने का मनोवैज्ञानिक सुख लूटने का सुचिंतित प्लान था। ऐसी ही घटनाओं के कारण 21वीं सदी में भी अन्तरराष्ट्रीय जगत में भारत की छवि बर्बर व असभ्य राष्ट्र के रूप में पुख्ता होती है।

राष्ट्रीय राजधानी के छात्र-शिक्षक, बुद्धिजीवी इत्यादि भगाणा पीड़ितों को न्याय दिलाने की चिंता में व्यस्त थे कि दिल्ली बॉर्डर पर नोएडा के कनावनी गाँव में 29 अप्रैल को एक और बड़ी बारदात हो गयी। वहां दबंगों ने दलितों की बस्ती में जमकर उत्पात मचाया और उनके घरों को तहस-नहस कर दिया। साथ ही गाँव के स्कूल और ऑफिसों को भी जेसीबी से ढहा दिया। इतना ही नहीं दबंगों ने कई राउंड फायरिंग भी किया जिसमें एक युवक की मौत हो गयी। छावनी में तब्दील उस गाँव में पुलिस की उपस्थिति के बावजूद दलित प्राण-भय से पलायन कर गए हैं।

बहरहाल जब-जब भगाणा या कनावनी जैसे कांड होते हैं तो दलितों के साथ-साथ राष्ट्रप्रेम व मानवाताबोध संपन्न हिन्दुओं के खेमे में भी चिंता की लहर दौड़ जाती है। वे सभा संगोष्ठियाँ आयोजित एवं घटनास्थल का मुयायना कर असहिष्णु हिन्दुओं के बर्बरोचित कार्य की निंदा करने एवं उनके विवेक को झकझोरने का अभियान चलाते हैं। लेकिन नतीजा शिफर निकलता है। एक अन्तराल के बाद परवर्तित स्थान पर उनकी दलित-विरोधी भावना का पुनः प्रकटीकरण हो ही जाता है। हिन्दू विवेक को झकझोरने का अभियान इसलिए निष्प्रभावी होते रहता है क्योंकि दलितों की मानवीय सत्ता हिन्दू धर्म-शास्त्रों द्वारा अस्वीकृत है। इसलिये शास्त्रों द्वारा मानवेतर रूप में चिन्हित किया गया मानव समुदाय जब आम लोगों की भांति अपने मानवीय अधिकारों के प्रदर्शन की हिमाकत करता है, धर्मनिष्ठ हिन्दू उन्हें उनकी औकात बताने के लिए कुम्हेर,

चकवाडा, एकलेरा, नवलपुर, पिन्ट्री देशमुख, सीखरा, बेलछी, पिपरा, भगाणा, कनावनी जैसे कांड अंजाम दे देते हैं। दलित-उत्पीडन में हिन्दू धर्म की क्रियाशीलता को देखते हुए डॉ। आंबेडकर को कहना पड़ा था-'हिन्दू जातिभेद इसलिए नहीं मानते कि वस्तुतः वे क्रूर हैं या उनके मस्तिष्क में कुछ विकार है। वे जाति-भेद इसलिए मानते हैं कि उनका धर्म जो प्राणों से भी प्यारा है, उन्हें जाति-भेद मानने के लिए विवश करता है। अतः कसूर उन धर्मशास्त्रों का है जिन्होंने उनकी ऐसी मनोवृति कर दी है। 'लेकिन हिन्दुओं के शास्त्र ही जब दलित उत्पीड़न के लिए प्रधान रूप से जिम्मेवार तब तो यह क्रम अनंतकाल तक चलता रहेगा, क्योंकि तमाम कमियों के बावजूद ऐसा नहीं लगता कि हिन्दू आगामी कुछ सौ वर्षो में अपने धर्म-शास्त्रों के प्रति पूरी तरह अनास्थाशील हो जाएँगे। ऐसे में दलित-उत्पीड़न का प्रतिकार कैसे हो?

जहां तक प्रतिकार का प्रश्न है, डॉ। आंबेडकर ने वर्षों पहले उसका मार्गदर्शन कर दिया था। उन्होंने इस मुद्दे पर दलित समुदाय को बताया था-'ये अत्याचार एक समाज पर दूसरे समर्थ समाज द्वारा हो रहे अन्याय और अत्याचार का प्रश्न हैं। एक मनुष्य पर हो रहे अन्याय या अत्याचार का प्रश्न नहीं है, बल्कि एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग पर जबरदस्ती से किये जा रहे आक्रमण और जुल्म, शोषण तथा उत्पीड़न का प्रश्न है। किस तरह से इस वर्ग कलह से अपना बचाव किया जा सकता है, इसका विचार करना आवश्यक है। इस वर्ग कलह से अपना बचाव कैसे होगा, इस प्रश्न का निर्णय करना मैं समझता हूँ मेरे लिए कोई असंभव नहीं है। यहाँ इकठ्ठा हुए आप सभी लोगों को एक ही बात मान्य करनी पड़ेगी और वह यह कि किसी भी कलह में, संघर्ष में, जिनके हाथ में सामर्थ्य होती, उन्ही के हाथ में विजय होती है। जिनमें सामर्थ्य नहीं उन्हें अपनी विजय की अपेक्षा रखना फिजूल की बकवास है। इसके समर्थन में अन्य कोई आधार खोजने की बात ही फिजूल है। इसलिए तमाम दलित वर्ग को अब अपने हाथ में सामर्थ्य और शक्ति इकट्ठा करना बहुत जरुरी है।' दलितो पर हो रहे शोषण-उत्पीड़न का प्रतिकार के लिए बल संचित करने का सुझाते हुए उन्होंने आगे कहा था—'मनुष्य समाज के पास तीन प्रकार का बल होता है। एक है मनुष्य-बल। दूसरा है धन-बल और तीसरा है मनोबल। मनुष्य बल की पुष्टि से आप अल्पसंख्यक ही नहीं, संगठित भी नहीं हैं। धन-बल की दृष्टि से देखा जाय तो आपके पास थोड़ा-बहुत जनबल तो है भी लेकिन धनबल तो बिलकुल ही नहीं है। सरकारी आकड़ों के अनुसार देश की कुल आबादी में 55 प्रतिशत जो जनसंख्या गरीबी रेखा से नीचे जीवान बिता रही है, उसका 90 प्रतिशत अंश दलित वर्ग का ही है। मानसिक बल की तो उससे भी बुरी हालत है। सैकड़ो साल से हिन्दुओं द्वारा हो रहे जुल्म, छि-थूक, मुर्दों की भांति बर्दाश्त करने के कारण प्रतिकार करने की आदत पूरी तरह नष्ट हो गयी है। आप लोगों के आत्म-विश्वास, उत्साह और महत्वाकांक्षा की चेतना का मूलोच्छेद कर दिया गया है। हम भी कुछ कर सकते हैं इसका विचार ही किसी के मन में नहीं आता।' मतलब साफ है बाबासाहेब ने

हिन्दुओं के अत्याचार से बचाने लिए एकमेव उपाय उन्होंने दलित वर्ग को अपने हाथ में सामर्थ्य और शक्ति इकठ्ठा करना बताया था।

वास्तव में डॉ। आंबेडकर ने दलितों को अपने अत्याचारी वर्ग से निजात दिलाने का जो नुस्खा बाताया था वह सार्वदेशिक है। सारी दुनिया में ही जो अशक्त रहे उनपर ही सशक्त वर्ग का अत्याचार व उत्पीड़न होता रहा। सर्वत्र ही ऐसे लोगों को सशक्त बनाकर सबल वर्गों के शोषण-उत्पीड़न से निजात दिलाई गयी। किन्तु हिन्दुओं के बर्बर अत्याचार से निजात दिलाने के लिए दलितों को सशक्त बनाने जैसा परमावश्यक कार्य ठीक से हुआ ही नहीं। जबकि ऐसा करना अन्य समाजों की अपेक्षा ज्यादा कारगर होता। कारण, जो हिन्दू समाज अस्पृश्यों के विरुद्ध बराबर ही आक्रमणात्मक रहता है, उसकी एक बहुत बड़ी मनोवैज्ञानिक कमजोरी भी है। यह समाज सुदूर अतीत से ही सख्त का भक्त रहा है और अब भी है। अपनी इस कमजोरी के कारण वह हाथी, भालू, बाघ, सिंह, गधा, घोड़ा, बन्दर, सूअर, सांप, चूहा, उल्लू इत्यादि जैसे असंख्य पसु-पक्षियों तक में देवी-देवताओं को आरोपित कर पूजा करता रहा है। इसी कारण वह विदेशागत लोगों का अनुग्रह जय करने के लिए बराबर दास सुलभ आचरण करता रहा है और आज भी कर रहा है। अपनी इस स्वभावगत कमजोरी के कारण ही यह मनुष्येतरों में जो पद प्रतिष्ठा व धन -बल इत्यादि से संपन्न हैं, उनके साथ बंधुत्वपूर्ण व्यवहार करने में कोताही नहीं करता। अतः इसमें कोई दो राय नहीं कि अस्पृश्यों को सशक्त बनाकर हिन्दुओं को समतापूर्ण व्यवहार के लिए विवश किया जा सकता। इसके लिए जरुरी है कि राष्ट्र अस्पृश्यता मोचन के दूसरे रास्ते पर विचार करे।

जिस अस्पृश्यता के कारण दलित दुनिया के सबसे घृणित मनुष्य-प्राणी के रूप में चिन्हित हुए हैं, डॉ। आंबेडकर की भाषा में उसका दूसरा नाम बहिष्कार है। यह बहिष्कार मात्र सार्वजनिक स्थलों के उपयोग तक सीमित नहीं रहा। विदेशागत आर्यों द्वारा प्रवर्तित वर्ण-व्यवस्था के अर्थशास्त्र के तहत दलित सदियों से ही शक्ति के तमाम स्रोतों(आर्थिक, राजनीतिक धार्मिक-सांस्कृतिक इत्यादि) से बहिष्कृत रहे।

ब्अवश्य ही डॉ। आंबेडकर के ऐतिहासिक संघर्षों के फलस्वरूप भारतीय राज्य के हस्तक्षेप से कुछ हद तक इनका बहिष्कार दूर हुआ है। यदि शक्ति इन स्रोतों से पूरी तरह इनका बहिष्कार दूर कर दिया जाय तो निश्चय ही दीन-हीन बहिष्कृत समुदाय अशक्त से सशक्त में तब्दील हो जायेगा। वैसे में सख्त का भक्त हिन्दू-समाज उन्हें मान-सम्मान देने के लिए स्वतः ही आगे आयेगा।

बहरहाल इस मोर्चे पर काम करने के लिए सबसे पहले हमें गौर से देखना होगा कि बाबा साहेब आंबेडकर के प्रयासों से उनका कहाँ-कहाँ बहिष्कार दूर हुआ। सबसे पहले शक्ति के स्रोतों में आर्थिक को लिया जाय। इस क्षेत्र में मात्र सरकारी नौकरियों के जरिये होने वाली आय में बहिष्कार दूर हुआ किन्तु जमीन सहित व्यवसाय-वाणिज्य के क्षेत्र में उनकी अस्पृश्यता दूर नहीं हुई, जबकि आंबेडकर चाहते थे। उन्होंने राज्य और अल्पसंख्यक में भूमि-वितरण का ऐसा ठोस उपाय बताया था

जिससे दलित भूमिहीनता की समस्या से काफी हद तक मुक्त हो जाते। किन्तु प्रधानमत्री पंडित नेहरु ने यह कहकर उनके क्रांतिकारी प्रस्ताव को खारिज कर दिया था कि इसके लिए उन्हें डिक्टेटर बनना पड़ेगा। उन्होंने व्यवसाय वाणिज्य में अस्पृश्यता दूर करने के लिए 1942 में अंग्रेजी राज के दौरान दलितों के लिए ठेकों में आरक्षण की मांग की थी जो 2009 में मायावती ने उत्तर-प्रदेश में लागू किया जिसे 2012 में अखिलेश सरकार ने खत्म भी कर दिया। बहरहाल आर्थिक क्षेत्र में नौकरी को छोड़ दिया जाय तो कुछ अपवादों को छोड़कर दलित मिलिट्री और न्यायपालिका सहित निजी क्षेत्र की नौकरियों, सप्लाई, डीलरशिप, ठेकों, पार्किंग-परिवहनय फिल्म-मीडिया इत्यादि से अबतक लगभग बहिष त ही हैं.आज कल गैर-सरकारी संगठन समाजसेवा के सुख के साथ आर्थिक स्वच्छंदता का उपभोग करने के नए स्रोत बने गए हैं.ऐसे संगठनों के लिए प्रति वर्ष हजारों करोड़ का अनुदान मिलता है लेकिन दलित इस अनुदान से बहिष्कृत हैं। इसी तरह राजनीति में ग्राम पंचायत, शहरी निकाय, संसद-विधान सभा की सीटों पर अवसर मिला, पर मत्रिमंडल, विधान परिषद् और राज्य सभा इत्यादि में इनकी अस्पृश्यता पूर्ववत है। जिस क्षेत्र का बहिष्कार ही दलितों घृणित मनुष्य-प्राणी बनाने के लिए सबसे अधिक जिम्मेवार है, वह है धार्मिक क्षेत्र। इससे तो इस सीमा तक बहिष त रहे कि मंदिर में जाकर अपने कष्टों के निवारण के लिए भगवान् के समक्ष प्रार्थना करने का उनके सामने जरा भी अवसर नहीं रहा। यदि मंदिरों में पुरोहित के रूप में सदियों से इनको अवसर सुलभ रहता शायद तमाम बहिष्कार से ये मुक्त होते। अतः यदि देवालयों में पुरोहित के रूप में इन्हें पर्याप्त अवसर मिलने लग जाय तो इनके प्रति हिन्दू साईक में चमत्कारिक बदलाव आ सकता है।

उपरोक्त तथ्यों के आईने में दलितों की स्थिति का आकलन करने पर यह बात बिलकुल साफ हो जाती है कि यह समुदाय शक्ति के स्रोतों में नाम मात्र का ही अवसर पाया है। इसलिये ही वह अशक्त है जिससे शक्ति संपन्न हिन्दुओं को इन्हें शोषित-उत्पीड़ित करने कोई दिक्कत ही नहीं होती। अतः जो लोग थोड़े-थोड़े अन्तराल पर घटित होनेवाले भगाणा, कनावनी कांडों को लेकर दलितों के लिए आंसू बहाते हैं उन्हें चाहिए कि वे संगठित होकर शक्ति के समस्त स्रोतों से उनका बहिष्कार पूरी तरह खत्म करने के लिए दबाव बनायें। भारी अफसोस के साथ कहना पड़ता है कि दलितों के खिलाफ अंजाम दिए गए असंख्य वारदातों में उनका आंसू पोछने के लिए जो संगठन सामने आते रहे हैं, उनके लक्ष्य मुख्यतः दलितों की दुर्दशा को भुनाना रहा है। इस काम में एनजीओ और अकादमिक संस्थायें एक दूसरे से होड़ लताती रही हैं। अब जरुरत इस बात की है कि सब कुछ भूलकर शक्ति के समस्त स्रोतों से अस्पृश्यों का मुक्कमल बहिष्कार दूर करने की इमानदार लड़ाई शुरू हो, यही भगाणा कांड का सन्देश है।

प्रकाशित : स्वराज खबर, 7 मई, 2014

हिन्दू पराक्रम का कैसे हो प्रतिकार

–एच एल दुसाध

वैसे तो दलित-उत्पीड़न राष्ट्र के जीवन के दैनंदिन जीवन का अंग बन चुका है। फिर भी रह-रहकर ऐसी कुछ घटनाएँ हो जाती हैं कि इस समस्या पर नए सिरे से विचार करना लाजिमी हो जाता है। हाल के दिनों में अल्प अन्तराल के मध्य दो ऐसी घटनाएँ सामने आईं हैं। पहली घटना हरियाणा के हिसार जिले के भगाणा गाँव की है जहाँ 2012 में जाटों द्वारा वहां के तमाम दलित परिवारों का बहिष्कार कर दिया गया था जो अब भी जारी है। बहिष्कार के विरोध में सौ के करीब अपेक्षाकृत चमार, खाती इत्यादि जैसी मजबूत दलित जातियों के लोग अपने परिवार और जानवरों सहित हिसार के मिनी सचिवालय में खुले छत के नीचे आश्रय ले लिए और आज भी वहीं रह रहे हैं । किन्तु धानुक जैसी कमजोर दलित जाति के लोगों ने गाँव में ही टिके रहने का निर्णय लिया। इन्ही धानुक जातियों की चार लड़कियों को भगाणा के दबंगों ने 23 मार्च को अगवा कर दो दिनों तक सामूहिक बलात्कार किया। आठवीं और नौवीं क्लास में पढनेवाली इन लड़कियों का सिर्फ इतना था कि वे पढना चाहती थीं और उनके अभिभावकों ने उन्हें इसकी इजाजत दे रखी थी। वहां की दलित महिलाओं को अपने हरम में शामिल मानने की मानसिकता से पुष्ट जाटों को यह मंजूर नहीं था। लिहाजा उन्होंने इन लड़कियों को सजा देकर दलितों को उनकी औकात बता दी।

इस हृदय विदारक घटना के बाद जब किसी तरह लडकियां उनके अभिभावकों को मिली, वे उनकी मेडिकल जांच के लिए जिला अस्पताल पहुंचे जहाँ डाक्टरों जांच में अनावश्यक बिलम्ब कर घोर असंवेदनशीलता का परिचय दिया। उधर पुलिस वालों ने नाम के वास्ते एफआईआर तो दर्ज कर ली किन्तु दोषियों का नाम दर्ज नहीं किया। स्थानीय प्रशासन से हताश निराश पीड़ित परिवार दो सप्ताह पहले दिल्ली पहुंचकर जंतर-मंतर पर बैठकर इंसाफ की गुहार लगाने लगा। इनकी मांग है कि छुट्टा घूम रहे बलात्कारियों की अबिलम्ब गिरफ्तारी होयफास्ट ट्रैक कोर्ट गठित कर छः महीने के अन्दर मामले की सुनवाई हो तथा बलात्कार पीड़ितों एवं गाँव के समस्त बहिष्कृत परिवारों को गुडगाँव या फरीदाबाद में चार-चार सौ गज का आवासीय भूखंड और एक-एक करोड़ रूपये मुआवजे के तौर पर दिए जांय। इसके साथ ही उनकी उनकी मांग है कि पीड़ित लड़कियों के लिए शिक्षा की बेहतर व्यवस्था हो तथा शिक्षा पूरी करने के बाद उन्हें सरकारी नौकरी दी जाय।

देखते ही देखते भगाणा बलात्कार कांड के पीड़ितों इंसाफ दिलाने की मुहिम में दिल्ली के ढेरों छात्र-शिक्षक, लेखक-एक्टिविस्ट जुड़ गए। किन्तु मीडिया की उदासीनता के कारण उसका असर 2012 के 16 दिसंबर को घटित निर्भया कांड जैसा नहीं हुआ। तब निर्भया को इन्साफ दिलानेवालों के सुर में सुर मिलाते हुए मीडिया ने घटना को इतना हाईलाईट किया कि रायसीना हिल्स से लेकर राजघाट, कोलकाता से कोयम्बटूर, कश्मीर से चेन्नई तक के लोग उस मुहिम में शामिल हो गए। उसके फलस्वरूप महिलाओं के खिलाफ यौन अपराध की रोकथाम के लिए जहाँ कानून में कई संशोधन हुए बही 'निर्भया' के नाम पर महिलाओं की सुरक्षा के लिए बजट में हजार करोड़ का प्रावधान भी हुआ। किन्तु मीडिया को भगाणा की घटना पर ज्यादा जोर इसलिए देना चाहिए था क्योंकि यह 'निर्भया कांड' से ज्यादा गुरुतर मामला है। निर्भया काण्ड के पीछे जहां मुख्य रूप से 'यौन कुंठा' की क्रियाशीलता रही, वहीं भगाणा कांड के पीछे यौन कुंठा के साथ एक उभरते समाज के मनोबल को तोड़ने तथा अपने प्रभुत्व को नए सिरे से स्थापित करने का मनोवैज्ञानिक सुख लूटने का सुचिंतित प्लान था। ऐसी ही घटनाओं के कारण 21वीं सदी में भी अन्तरराष्ट्रीय जगत में भारत की छवि बर्बर व असभ्य राष्ट्र के रूप में पुख्ता होती है।

राष्ट्रीय राजधानी के छात्र-शिक्षक, बुद्धिजीवी इत्यादि भगाणा पीड़ितों को न्याय दिलाने की चिंता में व्यस्त थे कि दिल्ली बॉर्डर पर नोएडा के कनावनी गाँव में 29 अप्रैल को एक और बड़ी बारदात हो गयी। वहां दबंगों ने दलितों की बस्ती में जमकर उत्पात मचाया और उनके घरों को तहस-नहस कर दिया। साथ ही गाँव के स्कूल और ऑफिसों को भी जेसीबी से ढहा दिया। इतना ही नहीं दबंगों ने कई राउंड फायरिंग भी किया जिसमें एक युवक की मौत हो गयी। छावनी में तब्दील उस गाँव में पुलिस की उपस्थिति के बावजूद दलित प्राण-भय से पलायन कर गए हैं।

बहरहाल जब-जब भगाणा या कनावनी जैसे कांड होते हैं तो दलितों के साथ-साथ राष्ट्रप्रेम व मानवाताबोध संपन्न हिन्दुओं के खेमे में भी चिंता की लहर दौड़ जाती है। वे सभा संगोष्ठियाँ आयोजित एवं घटनास्थल का मुयायना कर असहिष्णु हिन्दुओं के बर्बरोचित कार्य की निंदा करने एवं उनके विवेक को झकझोरने का अभियान चलाते हैं। लेकिन नतीजा शिफर निकलता है। एक अन्तराल के बाद परवर्तित स्थान पर उनकी दलित-विरोधी भावना का पुनः प्रकटीकरण हो ही जाता है। हिन्दू विवेक को झकझोरने का अभियान इसलिए निष्प्रभावी होते रहता है क्योंकि दलितों की मानवीय

सत्ता हिन्दू धर्म-शास्त्रों द्वारा अस्वीकृत है। इसलिये शास्त्रों द्वारा मानवेतर रूप में चिन्हित किया गया मानव समुदाय जब आम लोगों की भांति अपने मानवीय अधिकारों के प्रदर्शन की हिमाकत करता है, धर्मनिष्ठ हिन्दू उन्हें उनकी औकात बताने के लिए कुम्हेर, चकवाडा, एकलेरा, नवलपुर, पिन्ट्री देशमुख, सीखरा, बेलछी, पिपरा, भगाणा, कनावनी जैसे कांड अंजाम दे देते हैं। दलित-उत्पीडन में हिन्दू धर्म की क्रियाशीलता को देखते हुए डॉ। आंबेडकर को कहना पड़ा था-'हिन्दू जातिभेद इसलिए नहीं मानते कि वस्तुतः वे क्रूर हैं या उनके मस्तिष्क में कुछ विकार है। वे जाति-भेद इसलिए मानते हैं कि उनका धर्म जो प्राणों से भी प्यारा है, उन्हें जाति-भेद मानने के लिए विवश करता है। अतः कसूर उन धर्मशास्त्रों का है जिन्होंने उनकी ऐसी मनोवृति कर दी है। 'लेकिन हिन्दुओं के शास्त्र ही जब दलित उत्पीड़न के लिए प्रधान रूप से जिम्मेवार तब तो यह क्रम अनंतकाल तक चलता रहेगा, क्योंकि तमाम कमियों के बावजूद ऐसा नहीं लगता कि हिन्दू आगामी कुछ सौ वर्षो में अपने धर्म-शास्त्रों के प्रति पूरी तरह अनास्थाशील हो जाएँगे। ऐसे में दलित-उत्पीड़न का प्रतिकार कैसे हो?

जहां तक प्रतिकार का प्रश्न है, डॉ। आंबेडकर ने वर्षों पहले उसका मार्गदर्शन कर दिया था। उन्होंने इस मुद्दे पर दलित समुदाय को बताया था-'ये अत्याचार एक समाज पर दूसरे समर्थ समाज द्वारा हो रहे अन्याय और अत्याचार का प्रश्न हैं। एक मनुष्य पर हो रहे अन्याय या अत्याचार का प्रश्न नहीं है, बल्कि एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग पर जबरदस्ती से किये जा रहे आक्रमण और जुल्म, शोषण तथा उत्पीड़न का प्रश्न है। किस तरह से इस वर्ग कलह से अपना बचाव किया जा सकता है, इसका विचार करना आवश्यक है। इस वर्ग कलह से अपना बचाव कैसे होगा, इस प्रश्न का निर्णय करना मैं समझता हूँ मेरे लिए कोई असंभव नहीं है। यहाँ इकठ्ठा हुए आप सभी लोगों को एक ही बात मान्य करनी पड़ेगी और वह यह कि किसी भी कलह में, संघर्ष में, जिनके हाथ में सामर्थ्य होती, उन्ही के हाथ में विजय होती है। जिनमें सामर्थ्य नहीं उन्हें अपनी विजय की अपेक्षा रखना फिजूल की बकवास है। इसके समर्थन में अन्य कोई आधार खोजने की बात ही फिजूल है। इसलिए तमाम दलित वर्ग को अब अपने हाथ में सामर्थ्य और शक्ति इकट्ठा करना बहुत जरुरी है। 'दलितो पर हो रहे शोषण-उत्पीड़न का प्रतिकार के लिए बल संचित करने का सुझाते हुए उन्होंने आगे कहा था—

'मनुष्य समाज के पास तीन प्रकार का बल होता है। एक है मनुष्य-बल। दूसरा है धन-बल और तीसरा है मनोबल। मनुष्य बल की दृष्टि से आप अल्पसंख्यक ही नहीं, संगठित भी नहीं हैं। धन-बल की दृष्टि से देखा जाय तो आपके पास थोड़ा-बहुत जनबल तो है भी लेकिन धनबल तो बिलकुल ही नहीं है। सरकारी आकड़ों के अनुसार देश की कुल आबादी में 55 प्रतिशत जो जनसंख्या गरीबी रेखा से नीचे जीवान बिता

रही है, उसका 90 प्रतिशत अंश दलित वर्ग का ही है। मानसिक बल की तो उससे भी बुरी हालत है। सैकड़ो साल से हिन्दुओं द्वारा हो रहे जुल्म, छि-थूक, मुर्दों की भांति बर्दाश्त करने के कारण प्रतिकार करने की आदत पूरी तरह नष्ट हो गयी है। आप लोगों के एटीएम विश्वास, उत्साह और महत्वाकांक्षा की चेतना का मूलोच्छेद कर दिया गया है। हम भी कुछ कर सकते हैं इसका विचार ही किसी के मन में नहीं आता। 'मतलब साफ है बाबासाहेब ने हिन्दुओं के अत्याचार से बचने लिए एकमेव उपाय उन्होंने दलित वर्ग को अपने हाथ में सामर्थ्य और शक्ति इकठ्ठा करना बताया था।

वास्तव में डॉ। आंबेडकर ने दलितों को अपने अत्याचारी वर्ग से निजात दिलाने का जो नुस्खा बाताया था वह सार्वदेशिक है। सारी दुनिया में ही जो अशक्त रहे उनपर ही सशक्त वर्ग का अत्याचार व उत्पीड़न होता रहा। सर्वत्र ही ऐसे लोगों को सशक्त बनाकर सबल वर्गों के शोषण-उत्पीड़न से निजात दिलाई गयी। किन्तु हिन्दुओं के बर्बर अत्याचार से निजात दिलाने के लिए दलितों को सशक्त बनाना अन्य समाजों की अपेक्षा ज्यादा कारगर हो सकता है। कारण, जो हिन्दू समाज अस्पृश्यों के विरुद्ध बराबर ही आक्रमणात्मक रहता है, उसकी एक बहुत बड़ी मनोवैज्ञानिक कमजोरी भी है। यह समाज सुदूर अतीत से ही सख्त का भक्त रहा है और अब भी। अपनी इस कमजोरी के कारण वह हठी, भालू, बाघ, सिंह, गधा, घोड़ा, बन्दर, सूअर, सांप, चूहा इत्यादि तक में देवी-देवताओं को आरोपित कर पूजा करता रहा है। इसी कारण वह विदेशागत लोगों का अनुग्रह जय करने के लिए बराबर दास सुलभ आचरण करता रहा है और आज भी कर रहा है। अपनी स्वभावगत कमजोरी के कारण ही मनुष्येतरों में जो पद प्रतिष्ठा व धन -बल या अन्य किसी बल से संपन्न हैं, उनके साथ बंधुत्वपूर्ण व्यवहार करने में कोताही नहीं करता। अतः इसमें कोई दो राय नहीं कि अस्पृश्यों को सशक्त बनाकर हिन्दुओं को समतापूर्ण व्यवहार के लिए विवश किया जा सकता है।

अब जहाँ तक दलितों के सशक्तिकरण का सवाल है आजाद भारत में तमाम सरकारें ही इस काम में लगे रहने का दावा करती रही हैं। पर बात इसलिए नहीं बनी देश के योजनाकारों ने उनकी अशक्ति कारण के कारणों की ठीक पहचान ही नहीं कि इसलिए उनकी सशक्तिकरण का सम्यक उपाय भी न कर सके। काबिले गौर है कि सारी दुनिया में ही सभ्यता के हर काल में धरती की छाती पर अशक्त समुदायों का वजूद रहा और ऐसा इसलिए हुआ कि जिनके हाथ में सत्ता की बागडोर रही उन्होंने जाति, नस्ल, धर्म इत्यादि के आधार बंटे विभिन्न सामाजिक समूहों और उनकी महिलाओं के मध्य शक्ति के स्रोतों-आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक- का असमान बंटवारा कराकर ही अशक्त समूहों को जन्म दिया। परिष्कृत भाषा में शक्ति के स्रोतों में सामाजिक और लैंगिक विविधता का असमान प्रतिबिम्बन कराकर ही

अशक्त सामाजिक समूहों को जानम दिया। जो समूह शक्ति के स्रोतों पर जितना कब्जा जमा सका वह उतना ही सशक्त और जो जितना ही इससे वंचित रहा वह उतना ही अशक्त। सारी दुनिया में अश्वेतों, महिलाओं व अन्य अल्पसंख्यक अशक्त समूहों की समस्या पर ध्यान दे तो पाएंगे कि उनको शक्ति के स्रोतों से दूर रखकर ही अशक्त बनाया गया। सारी दुनिया की पराधीन कौमों के साथ यही समस्या रही कि विजेताओं ने उन्हें शक्ति स्रोतों से वंचित कर उन्हें कष्ट में डाला। यदि सारी दुनिया के विजेता गुलाम बनाए गए लोगों को शक्ति के स्रोतों में वाजिब शेयर दिए होते, दुनिया में कही भी स्वतंत्रता संग्राम ही सगठित नहीं होता। अमेरिका का स्वाधीनता संग्राम, फ्रांस की राज क्रांतियगांधी, मार्टिन लूथर किंग (जू.) मंडेला का संघर्ष और कुछ शक्ति के स्रोतों के असमान बंटवारे के विरुद्ध रहा। शक्ति के स्रोतों में सभी तबकों को न्यायोचित हिस्सेदारी दिलाने के लिए ही ब्रितानी अवाम ने 500 सालों के सुदीर्घ संग्राम के बाद संसदीय प्रणाली की ईमारत खड़ी की। सदियों से सार्री दुनिया में सामाजिक परिवर्तन की लड़ाई और कुछ नहीं शक्ति के स्रोतों में अशक्त लोगों को हिस्सेदारी दिलाने की लड़ाई मात्र है।

जिन मानव समुदायों को शक्ति के स्रोतों से वंचित कर अशक्त मानव समुदाय में तब्दील किया गया उनमें किसी की भी स्थिति दलितों जैसी नहीं रही। मानव जाति के सम्पूर्ण इतिहास में किसी भी कौम को शक्ति के तीनों प्रमुख स्रोतों-आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक-से पूरी तरह वंचित नहीं किया गया। मार्क्स के सर्वहाराओं सहित दुनिया के अधिकांश वंचित कौमों को आर्थिक गतिविधियों से वंचित कर अशक्त बनाया गया पर राजनीतिक और विशेषकर धार्मिक क्रियाकलाप तो उनके लिए पूरी तरह मुक्त रहे। अमेरिका के नीग्रो स्लेवरी में जिन कालों का दलितों की भांति ही पशुवत इस्तेमाल हुआ, उनके लिए पूजा-पाठ अब्राहम लिंकन के उदय पूर्व भी कभी निषिद्ध नहीं रहा। यही कारण है जिस मार्टिन लूथर किंग (जू।)के मूवमेंट ने अश्वेतों की तकदीर बदल दी वे बड़े धर्माधिकारी थे जिससे उनकी आवाज बड़ी आसानी से लोगों तक पहुँच गयी। आर्थिक और राजनीति के क्षेत्र से हजारों साल से बहिष्कृत भारत के दलितों के लिए मार्टिन लिथर की भांति धर्माधिकारी बनना तो दूर देवालयों में पहुँच कर सर्वशक्तिमान ईश्वर के सामने अपने कष्टों के निवारण के लिए प्रार्थना करने तक का कोई अवसर नहीं रहा। धार्मिक शक्ति के केंद्र से दलितों का बहिष्कार ही उन्हें अस्पृश्यता की खाई में धकेलने के लिए मुख्य रूप से जिम्मेवार है। हिन्दुओं ने देख लिया कि जब दलित परमपिता परमेश्वर के घर से ही बहिष्कृत हैं तो हम उन्हें अपने करीब क्यों आने दें।

मध्ययुग संतों और भारतीय रेनेसां के असंख्य महानायकों सहित ढेरों अन्य आधुनिक चिंतकों ने दलितों की समस्या पर मगजपच्ची की पर आंबेडकर की भांति कोई भी उनके अशक्तिकरण के कारणों को सम्पूर्णता में नहीं समझ पाया। इसलिए

वे मानवेतरों को शक्ति के स्रोतों में मुक्कमल हिस्सेदारी दिलाने की लड़ाई नहीं लड़ सके। गुलाम भारत में जहां तमाम स्वतंत्रता संग्रामी अंग्रेजों के कब्जे में पड़ी आर्थिक और राजनीतिक शक्ति हिन्दुओं के लिए छीनने में व्यस्त थे वहीं आंबेडकर बड़ी मुश्किल हालात में मानव जाति के सबसे अशक्त समूहों को शक्ति से लैस करने व्यस्त थे। उनके प्रयासों से सदियों से बंद पड़े शक्ति के कुछ स्रोत दलितों के लिए मुक्त हुए, पर सारे नहीं। स्मरण रहे डॉ। आंबेडकर अपने जमाने में भारत के सबसे असहयाय स्टेट्समैन रहे। यदि वे असहाय नहीं होते, शक्ति के सभी स्रोतों में दलितों की हिस्सेदारी सुनिश्चित कर देते। लेकिन आजाद भारत में उनके बड़े से बड़े अनुसरणकारी क्या दलितों की समस्या समझ पाए? मुझे लगता है नहीं। यदि वे दलितों की समस्या समझे होते तो शक्ति के शेष स्रोतों में उनको हिस्सेदारी दिलाने का प्रयास करते। पर आजाद भारत में तो शक्ति के सभी स्रोतों की बजाय टुकड़ों-टुकड़ों में हिस्सेदारी की लड़ाई लड़ी जा रही है। कोई निजी क्षेत्र में आरक्षण की लड़ाई लड़ रहा है तो प्रमोशन में आरक्षण की लड़ाई में अपनी उर्जा खपा रहा है। यही कारण है दलित शक्ति के स्रोतों में मुक्कमल हिस्सेदारी से वंचित हैं। परिणामस्वरूप वे भगाणा और कनावनी में हिन्दू पराक्रम के सामने असहाय व लाचार नजर आ रहे हैं। बहरहाल दलित ही नहीं पिछड़े, अल्पसंख्यक और महिलाओं के शक्ति समस्त स्रोतों में वाजिब शेयर दिलाने के लिए डाइवर्सिटी से बेहतर कोई विचार तो शायद भारत भूमि पर आया नहीं। किन्तु अफसोस के साथ कहना पड़ता है कि डाइवर्सिटी जैसे अचूक हथियार का इस्तेमाल करने में दलित समाज अभी भी खुलकर सामने नहीं आ रहा है।

प्रकाशित : स्वतंत्र खबर, 14 मई, 2014

❑❑❑

प्रथम संस्करण : 2014

ISBN : 978-81-87618-46-1

बहुजन डाइवर्सिटी मिशन के लिए
द्वारा
प्रकाशक : **दुसाध प्रकाशन**
प्लाट नं. 23/बी, मकान नं. 2/1467
डाइवर्सिटी हाउस, वार्ड-शंकरपुरवा
आदिल नगर, कल्याणपुर, लखनऊ-226022
E-mail : hl.dusadh@gmail.com
मो. : 9313186503, 9696252469

प्रशासनिक कार्यालय
एफ-196, आया नगर एक्स, फेज-6, नई दिल्ली-110047,
मो. : 9313186503

© प्रकाशनाधीन

मूल्य : 500.00 रुपये

रचना	:	**भगाणा बलात्कार काण्ड**
संपादक	:	एच एल दुसाध–प्रमोद रंजन–जितेन्द्र यादव
आवरण	:	शशिकान्त
शब्दांकन	:	कम्प्यूटेक सिस्टम, शाहदरा, दिल्ली-32
मुद्रक	:	क्विक ऑफसेट, दिल्ली-94